मेवाती का उद्भव और विकास

[राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा पीएच. डी. उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-प्रबन्ध, 1969]

लेखक

डॉ० महावीर प्रसाद शर्मा,

एम० ए०, पीएच० डी०,

प्राध्यापक,

स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग,

राजर्षि महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

भूमिका

डॉ० सत्येन्द्र,

एम. ए, पीएच. डी., डी लिट्,

आचार्य एव अध्यक्ष (भूतपूर्व)

हिन्दी-विभाग,

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

-लोकभाषा प्रकाशन-

कोटपूतली (जयपुर-राज०)

□ (श्रीमती) परमेश्वरी शर्मा
प्रकाशक एवं वितरक
लोकभाषा प्रकाशन,
कोटपूतली (जयपुर-राज)

□ सर्वाधिकार लेखकाधीन

□ प्रथम संस्करण : जनवरी, 1977

□ मूल्य–40-00 रुपये मात्र

□ मुद्रक
श्री महेश मुद्रणालय, शाहपुरा (जयपुर)

Mewati ka Udbhava aur Vikas (Thesis) written by Dr. M. P. Sharma,
Published by Lokbhasha Prakashan, Kotputli (Jaipur) Price Rs 40 00

आभार-अनुक्रम

'मेवाती का उद्भव और विकास' राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा सन् 1969 ई० में पीएच डी. उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है। किंचित परिवर्तित इस शोध-प्रबन्ध की सामग्री-सङ्कलन हेतु मैंने तीन ग्रीष्मावकाश मेवात-प्रदेश के गावों में क्षेत्रकार्य करने में व्यतीत किए हैं। इस अवधि में मैंने अनेक अद्यावधि अनुपलब्ध ग्रन्थों, शिलालेखों, पट्टे-परवानों एवं लोक-साहित्यिक विधाओं का सङ्कलन किया है। मेवाती के नमूने एकत्रित करने हेतु मुझे मेलों-ठेलों, विवाहोत्सवों आदि पर इस क्षेत्र में अनेक बार अनेक जगह जाना पड़ा है। इस बीच मुझे जिन ज्ञात-अज्ञात सज्जनों से सहायता मिली है, मेरा 'प्रह्व' उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता है। फिर भी, मैं स्व० मुंशी रहमत खाँ साहब (नगीना-मेवात), श्री श्योदान खाँ (झिवाणा), श्री पुन्या मीरासी (अलवर), श्री चौधरी मुहम्मद-इस्माइल खाँ, एडवोकेट (अलवर) एवं श्री सुरेन्द्र मेवाती के प्रति आभार प्रकट करना अपना परम पुनीत कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने मुझे हर समय हर सम्भव सहयोग प्रदान करने में कोई कसर नहीं रख छोड़ी। स्व० मुंशी रहमत खाँ साहब तो मेवात के चलते-फिरते 'विश्वकोष' ही थे। खेद है कि, मुंशी जी इस शोध-प्रबन्ध को प्रकाशित रूप में नहीं देख सके।

शोध-कार्य के मध्य आई समस्याओं के समाधान हेतु परमादरणीय विद्वद्वर डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी, स्व० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० बाबूराम सक्सेना, डॉ० उदयनारायण तिवाड़ी, डॉ० कन्हैयालाल सहल, डॉ० हरदेव बाहरी, आचार्य किशोरीदास बाजपेयी, डॉ० मोतीलाल गुप्त, प्रो० नरोत्तमदास स्वामी, श्री सीताराम लालस, श्री अगरचन्द नाहटा, डॉ० नारायणसिंह भाटी आदि विद्वानों ने अपने पत्रों एवं व्यक्तिगत साक्षात्कारों के द्वारा मेरा मार्ग प्रशस्त किया है। मैं आप सभी ज्ञानवृद्धजनों के प्रति अपने हृदय से श्रद्धा एवं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

मेवाती सम्बन्धी सामग्री-सङ्कलन हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने मुझे 500) रु० की राशि प्रदान की है, उसके प्रति प्रस्तुत लेखक आभारी है। मैं उन सभी शोध संस्थानों, शिक्षा-संस्थानों एवं पुस्तकालयों के अधिकारियों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे सहयोग प्राप्त हुआ है। राजस्थान पुरातत्व विभाग, बीकानेर के निदेशक स्व० डॉ० सत्यप्रकाश के प्रति मैं विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने मेवाती सम्बन्धी प्राचीन सामग्री उपलब्ध कराने में सहयोग दिया है।

अपने गुरुवर डॉ० सरनामसिंह शर्मा, आचार्य, हिन्दी-विभाग, रा. वि. वि जयपुर, डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित, आचार्य एवं अध्यक्ष, पूना विश्वविद्यालय,

एवं प्रिंसीपल गुलजारीलाल जैन (फालना) के प्रति श्रद्धापूर्वक आभारी हूँ, जिनका मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद मुझे सदैव मिलता रहा है।

अपने मित्र प्रो० लालबहादुर, अध्यक्ष, भूगोल-विभाग, राजकीय महाविद्यालय कोटपूतली (जयपुर) का विशेष आभारी हूँ, जिनका तन-मन-धन से मिला सहयोग विस्मृत नहीं कर सकूंगा। साथ ही प्रो० वी. के. वर्मा, राजर्षि महाविद्यालय अलवर, श्री बनु लाल गुप्ता, पुस्तकालयाध्यक्ष, श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष, रा. म. वि. कोटपूतली तथा श्री नवलकिशोर गगावत (भूतपूर्व छात्र) का भी आभारी हूँ, जिनका सहयोग इस शोध-प्रबन्ध के प्रस्तुत करने में सराहनीय रहा है।

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के अधिकारियो के प्रति आभार प्रकट करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के परीक्षक महानुभावों (जिनके नाम मैंने अपने प्रयास से ज्ञात किए हैं) की सम्मतियाँ प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की है। साथ ही उन सभी पत्र-पत्रिकाओं के प्रति आभारी हूँ जिनमें प्रकाशित मेरे दर्जनों शोध-लेखों का इस शोध-प्रबन्ध में मैंने उपयोग किया है।

मैं अपने शोध-निदेशक एवं इस प्रबन्ध के भूमिका-लेखक भारतीय लोक-साहित्य के 'ग्रिम', प्रसिद्ध आलोचक एवं साहित्येतिहासकार परम पूज्य गुरुवर डॉ० सत्येन्द्र, आचार्य एवं अध्यक्ष (भूतपूर्व), हिन्दी-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के प्रति ऋणी हूँ, जिनकी प्रेरणा, कृपा, स्नेह, मार्ग दर्शन एवं आशीर्वाद का प्रतिफल ही यह शोध-प्रबन्ध है। गुरुदेव! स्वास्थ्य के असहयोग प्रकट करने पर भी, मेरी सहूलियत के अनुसार घण्टों बैठकर आपने जो मेरा मार्ग-दर्शन किया है, वे क्षण मेरे जीवन की अमूल्य निधि हैं। साथ ही इस ग्रंथ की भूमिका लिखकर जो महत्व प्रदान किया है उसके प्रति मेरा 'मैं' आपका चिर-ऋणी रहेगा।

\+ \+ \+ \+

मेवाती का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन एक महती आवश्यकता थी। मैंने इस आवश्यकता की पूर्ति करने मे तन-मन-धन लगाकर कोई कसर नहीं छोडी है। मैं अपने प्रयत्नो मे कितना सफल हुआ हूँ यह तो विद्वत् समाज ही निर्णय करेगा, किन्तु यदि कुछ सफलता मिली है तो उसका श्रेय मेरे गुरुजनो, तत्सम्बन्धी विद्वानो, मित्रो एवं ज्ञात-अज्ञात सहयोगियो को ही है।

मेवाती का अपना विशेष महत्व है। यह राजस्थानी की ही नहीं अपितु उस सधि-स्थल की बोली है जहाँ ब्रज, बागड़ू और जयपुरी का त्रिवेणी सगम होता है। सधि-स्थल की बोली होने के कारण यह राजस्थानी प्रदेश के लिए प्रवेश-द्वार है तो

ब्रज बागड़ को समझने के लिए सन्निर्देशिका । वस्तुत मेवाती अन्यान्य बोलियो की तरह सम्मिश्रण की स्थिति मे गुजर रही है, फिर भी इसका झुकाव पश्चिम हिन्दी (ब्रज, बागड़, खड़ी बोली) की ओर अधिक है । इस प्रकार यह पछाही हिन्दी से ज्यादा सम्पर्कित है, राजस्थानी से कम । यो कुछ एक ध्वन्यात्मक एव रूपात्मक विशेषताएँ ऐसी अवश्य रही हैं, जिन पर राजस्थानी प्रभाव को नकारा नही जा सकता । अनेक प्रभावो के बावजूद मेवाती एक स्वतन्त्र बोली है, जिसने हिन्दी और राजस्थानी के मध्य सेतुबन्ध का कार्य किया है ।

इस शोध प्रबन्ध मे लोकवाणी को अधिक प्रश्रय मिला है । कारण कि, अनेक कारणो से मेवाती की प्राचीन सामग्री अत्यल्प रूप म ही प्राप्त हो सकी है । जहाँ जहाँ इन पक्तियो के लेखक का विद्वानो से मत-भेद रहा है वहाँ-वहाँ केवल विनम्रता पूर्वक निवेदन ही लक्ष्य रहा है ।

इस प्रबन्ध मे सक्षिप्त सदर्भ-सकेतो का प्रयोग किया गया है, जिनके पूर्णरूप ग्रंथसूची की अनुक्रमणिका मे दे दिए गए हैं । प्रबन्ध को आठ अध्यायो मे विभक्त किया गया है । प्रत्येक अध्याय के अन्त मे उनमे प्रयुक्त सदर्भ सकेत दिए गए हैं । मेवात प्रदेश के मानचित्र में लेखक द्वारा भ्रमण किए गए प्रमुख प्रमुख स्थलो को ही दिखाया गया है ।

मुझे प्रसन्नता है कि रेवरेण्ड मैक्लिस्टर महोदय एव डॉ० सर जार्ज ग्रियर्सन के बाद मेवाती बोली का विशद् भाषा वैज्ञानिक अध्ययन करने का सौभाग्य मिला है । कितना सफल हू, यह विज्ञजनो के समक्ष प्रस्तुत है । प्रस्तुत प्रबन्ध मेरे बाल और किशोर जीवन की प्रेरणा के स्रोत स्व० अग्रज पूज्य श्री कैलाशचन्द्र जी शर्मा को समर्पित करता हूँ ।

अन्त मे, इस ग्रथ की प्रकाशिका एव वितरक श्रीमती परमेश्वरी शर्मा पत्नी) के प्रति आभार प्रकट करना औपचारिकता ही होगी । राजू, राकेश, ज्योति और सजय का आभारी हूँ, जिनके वात्सल्य एव क्रीडा के क्षणो का मेरे कार्यव्यस्त रहन के कारण बलात अपहरण हुआ है । इस प्रबन्ध के मुद्रक, श्री महेश मुद्रणालय, शाहपुरा (जयपुर) एव उसके कर्मचारियो का आभारी हूँ, जिन्होंने बडे धैर्यपूर्वक इसके प्रकाशन मे सहयोग किया है । मुद्रण की भूलें स्वाभाविक हैं । एतदर्थ क्षम्य हूँ ।

विनीत
म० प्र० श०

स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग
राजर्षि महाविद्यालय, अलवर (राज०)
1 जनवरी, 1977

भूमिका

मेवाती राजस्थान की (हरियाणा की भी) एक बोली है। इस शोध-प्रबन्ध के लेखक डॉ० महावीर प्रसाद शर्मा ने राजस्थानी की 73 बोलियाँ गिनायी है। इसके अर्थ हैं कि राजस्थानी के विस्तृत क्षेत्र के लोग तिहत्तर बोली-क्षेत्रों मे बँट कर अपनी-अपनी बोलियो मे अपने निजी बातचीत का काम साधते है। 'बोली' लोगो की अपनी मातृ-भाषा से भी अधिक प्रिय होती है। यही कारण है कि अत्यन्त निजी क्षेत्र मे वह 'बोली' का उपयोग करता है भाषा का नही। यह बोली के महत्व का व्यक्ति पक्ष है। पर उस निजत्व की बोली के माध्यम से सम्बद्ध समाज का स्वरूप भी बोली से ही सिद्ध होता है। एक बोली बोलने वाला मनुष्य-समाज 'बोली' मे परिसीमित भी हो जाता है। यह परीसीमन उस समाज के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को भी सीमाबद्ध करता है। 'बोली' बोलने वाला समाज बोली के सूत्र से सुसबद्ध होते हुए भी अपने प्राकृतिक परिवेश, अपने इतिहास के सूत्रो की श्रृंखला आदि से भी परिसीमित होता है। इन सब की तात्विकता उस समाज के प्रत्येक ग्राम व्यक्ति म परिफलित होती है—अत यह प्रतिफलन 'बोली' मे भी होता है। बोली' का समाजशास्त्रीय और नृतात्विक मूल्य भाषा' से भी अधिक है। किन्तु बोली से समाज परिसीमन ही नही होता, समाज की सामाजिकता से बोली भी परिसीमित होती है। वह सामाजिक सस्कृति को ही वहन नही करती, समाज और उसक घटकों के मन के विविध आयामो के परिणाम भी उसमे व्याप्त मिलते हैं। साथ ही बोली मे बोलने वालो की प्रकृति की रगत भी झलकती है। 'बोली' म एक अनगढता रहती है, वह भाषा की तरह मँजी हुई नहीं होती। ऐसी 'बोली' का महत्व कितनी ही दृष्टियो से तो है ही, भाषा-विज्ञान की दृष्टि से 'बोली' का बोली की तरह वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने का मूल्य भी कम नहीं है।

किसी भी भाषा की बोलियाँ उसके पूरे क्षेत्र के निचले स्तर पर फैली होती हैं, अत प्रकृति और मानव की पारस्परिक मैत्री और सामञ्जस्य से बोलियाँ भी जुडी रहती हैं। प्रत्येक बोली का उस भाषा की भौगोलिक स्थिति मे एक निश्चित स्थान होता है। जो बोलियाँ केन्द्रस्थ हैं वे परिनिष्ठित भाषा की मूल प्रवृत्तियो को भी विशेषत प्रतिबिम्बित कर सकती हैं। जो बोलियाँ सीमा पर है, उनमे रग-बिरगापन विशेष होगा। उसी के अनुसार उनका वैज्ञानिक दृष्टि से और महत्व हो जायेगा। सीमापर स्थित ऐसी कोई भी बोली भाषा की उस रसायन का प्रतीक होती है जो कई तत्वो के प्रभावो से बनती है। यो तो भाषा भी, परिनिष्ठित भाषा भी कितने ही अन्तरग और बहिरग प्रभाव-सूत्रो से बनती है। ये सूत्र इतिहास

से, भूगोल से, साहित्य की परम्परा में, क्षेत्रीय सांस्कृतिक उपादान आदि के सूत्रों से उसे मिलते हैं। सीमा की बोलियों में ये सभी सूत्र तो रहते ही हैं उन बोलियों और भाषाओं की क्रिया-प्रतिक्रिया में भी उनमें और रंग आता है। सीमावर्ती बोलियाँ इसीलिए भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण मानी जाती हैं वहीं उनकी जटिल निर्मित उस वैज्ञानिक अध्ययन को भी कठिन बना देती है। 'मेवाती' ऐसी ही सीमावर्तिनी या सधिस्थलीय बोली है, जो इस प्रबन्ध-लेखक के अनुसार "हरियाणी, ब्रज, डांगी एवं शेखावटी बोलियों से घिरी है।" तो यह जटिल तो है ही। अतः इसका वैज्ञानिक अध्ययन भी सरल नहीं है। फिर भी इसका अध्ययन महत्वपूर्ण भी है। क्योंकि इससे जटिल और विविध बोलियों और भाषाओं के प्रभाव से प्रभावित बोलियों की अंतरंग और बहिरंग प्रक्रियाओं का उद्घाटन होता है।

सीमावर्तिनी या सधिस्थलीय भाषाओं में एक विशेष प्रकार की तरलता मिलती है। इसी तरलता के कारण पार्श्ववर्ती विविध शब्दावली तैरती भी मिलती है और उसके रूप-निर्माण में योगदान भी करती है। सीमावर्तीय या सधिस्थलीय बोलियों पर बहुत कम काम हुआ है। गिने-चुने अनुसंधानों में मेवाती का उद्भव और विकास' भी एक महत्वपूर्ण अनुसंधान है। यह डॉ० महावीर प्रसाद शर्मा द्वारा सम्पन्न किया गया अनुसंधान का प्रतिफल है। यह शोध-प्रबन्ध है।

मेवाती बोली के वैज्ञानिक अध्ययन में एक अड़चन यह थी कि इस बोली में साहित्य का एक-प्रकार से अभाव रहा है। लिखित साहित्य से ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भाषा की स्थिति समझी जा सकती है। विवरणात्मक अध्ययन में इस इस अनुसंधाता को थोड़ी सुविधा इसलिए थी कि वह स्वयं भी इस बोली-क्षेत्र से संबंधित हैं। अतः वह स्वयं भी सूचक का कार्य कर सकता था, फिर भी उन्होंने अन्य प्रामाणिक सूचकों से भी सामग्री एकत्र की है। प्रामाणिक सूचक के चयन में भाषा-वैज्ञानिक आवश्यकता को दृष्टि में रखना ही होता है। इस सामग्री के आधार पर ही उन्होंने मेवाती की कुछ उप-बोलियों की भी चर्चा प्रथम बार की है। बोली के साथ उसकी उप-बोलियों का निर्धारण और उनका भाषा-वैज्ञानिक निरूपण आज के भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन के लिए बहुत ही श्लाघ्य कार्य है, क्योंकि उप बोलियाँ, बोली के स्तर से भी नीचे के स्तर पर उपयोग में आती हैं। आज का भाषा-विज्ञान गहरे से गहरे पैठ कर भाषा की अन्तरंग से अन्तरंग भाषा सर्जक प्रक्रियाओं से परिचित होना चाहता है। उप-बोली से व्यक्ति-बोली ही हो सकती है। यों, 'बोली-द्वीप' भी मिलते हैं, जहाँ कोई एक छोटा समुदाय अन्य बोलियों से घिरा हुआ भी अपनी कोई विशेष बोली ही बोलता है। ऐसे बोली-द्वीपों पर हिन्दी

में अभी बहुत कम ध्यान गया है। इसमे कोई सदेह नही कि 'बोली द्वीपो' का अध्ययन किसी विशेष बोली या उसकी उप-बोलियो के अध्ययन के पश्चात् ही आता है। इस दृष्टि से डॉ० महावीर प्रसाद शर्मा ने भाषा विज्ञान के क्षेत्र मे मेवाती बोली और उसकी उप बोलियो का अधुनातम वैज्ञानिक-तात्विकता के साथ अनुसधान प्रस्तुत कर विशेष योगदान दिया है। इस बात को हम इसी शोध-प्रबन्ध मे पृ० 9 से 14 तक दी गयी तालिका से अच्छी तरह समझ सकते हैं, जिसमे सक्षेप म यह बताया गया है कि मेवाती बोली पर अब तक किस-किस प्रकार का कार्य कब-कब हुआ है। इस तालिका से यह सिद्ध होता है कि प्रस्तुत शोध निश्चय ही आगे का कदम है और बहुत बडा चरण है। क्योकि विद्वान लेखक ने बोली का अध्ययन पूरे ब्यौरेवार, क्षेत्रीय अभ्यास द्वारा प्रामाणिक सामग्री एकत्र कर ही नही किया, वरन् किसी सधिस्थलीय बोली के अध्ययन के भाषा वैज्ञानिक प्रविधि को भी पूर्णतः निर्धारित कर देने मे सफलता प्राप्त की है। इस आधार पर लेखक को सघटनात्मक भाषा-विज्ञान सम्प्रदाय का माना जा सकता है।

डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार 'यह सम्प्रदाय ऐतिहासिक या तुलनात्मक अध्ययन के सम्प्रदाय से मुख्यत इसलिए कुछ अलग है कि यह भाषा को उसके जीवित और वर्तमान रूप म ही ग्रहण करना चाहता है, न कि उसके विगत और मृतरूपो के सदर्भ मे। इसके लिए भाषा का इतिहास नही बल्कि भाषा का भूगोल ही महत्व रखता है। इस सम्प्रदाय की भाषा के इतिहास मे गौण रुचि है।"-
सामान्य भाषा विज्ञान, पृ० 22.

इस ग्रन्थ मे लेखक यो तो भाषा के उद्भव और विकास को प्रस्तुत करने मे इतिहास की शरण मे गया है और बोली की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बतलाने के लिए भी उसे इतिहास चर्चा करनी पडी है। इस प्रयत्न मे जो बहुत कम लिखित सामग्री मिलती है उसका उल्लेख यथा-स्थान प्रमाण के रूप मे किया भी है, किन्तु यह सब मूल शोध के लिए भूमिका-रूप ही माना जा सकता है। यह अनुसधान इन्ही कारणो से विवरणात्मक भाषा-विज्ञान या भाषिकी (LINGUISTICS) क्षेत्र मे ही आता है। मैं डॉ० महावीर प्रसाद शर्मा के इस शोध-प्रबन्ध का स्वागत करते हुए डॉ० शर्मा का अभिनन्दन भी करता हूँ। आशा है हिन्दी-जगत और भाषा-विज्ञान के क्षेत्र मे इस शोध-प्रबन्ध का स्वागत होगा।

A-26/1 विद्यालय मार्ग,
तिलकनगर, जयपुर (राज०)

(डॉ०) सत्येन्द्र

परीक्षकों की सम्मतियाँ

सम्प्रति किसी भाषा के उद्भव एवं विकास के अध्ययन की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं। इनमें से एक पद्धति स्व० जूल ब्लाख की है जिसका प्रयोग उन्होंने मराठी भाषा के विश्लेषण में किया था। इसी पद्धति का अनुगमन डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने अपने 'बंगला भाषा के उद्गम और विकास' में किया है। डॉ० चटर्जी के इस अधिनिबन्ध के आदर्श पर अवधी, मैथिली, भोजपुरी तथा अन्य कई भाषाओं एवं बोलियों के विश्लेषण का कार्य सम्पन्न हुआ है। भाषा विश्लेषण की एक अन्य अभिनव पद्धति भी है जो अमेरिका तथा अन्य पाश्चात्य देशों में प्रचलित है। यह स्वनिमिक (Phonemic) के नाम से प्रख्यात है। शोध-कर्ता (महावीर प्रसाद शर्मा) ने अपने इस अधिनिबन्ध में प्रथम पद्धति का अनुसरण किया है। 'मेवाती के उद्भव और विकास' के विषय यह प्रथम अधिनिबन्ध है और यह स्वागत के योग्य है।

इस अधिनिबन्ध में शोध कर्ता ने मेवाती विषयक सम्पूर्ण सामग्री का संकलन कर उसे व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया है। मेरी दृष्टि में यह प्रथम अधिनिबन्ध है जिसमें अभिनव पाश्चात्य प्रणाली का अनुगमन करते हुए प्रत्येक अध्याय के अन्त में पूर्ण संदर्भ का निर्देश किया गया है। मेवाती विषयक अनेक नवीन तत्वों का, इस अधिनिबंध में समावेश प्रथम बार हुआ है।

डॉ० उदयनारायण तिवारी, डी लिट्,
आचार्य एवं अध्यक्ष, भाषा-विज्ञान विभाग,
जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर

▭ ▭ ▭ ▭

डॉ० सत्येन्द्र के निर्देशन में प्रस्तुत 'मेवाती का उद्भव और विकास' शीर्षक शोध प्रबन्ध प्रस्तोता श्री महावीरप्रसाद शर्मा का विवरणात्मक भाषा-विज्ञान के के क्षेत्र में एक अच्छा प्रयास है। श्री शर्मा ने कई वर्षों के परिश्रम से स्वयं ही सामग्री एकत्र की है और इस प्रकार आधार भूत सामग्री विश्वास के योग्य मानी जा सकती है। ....

निश्चय ही शोधार्थी ने परिश्रम खूब किया है और सामग्री का चयन करने में सावधानी से काम लिया है। .... शोध-प्रबन्ध की भाषिकी अभिव्यक्ति ठीक है और कहीं भी उलझाहट दिखाई नहीं देती।

डॉ० मोतीलाल गुप्त, डी लिट्,
रीडर, हिन्दी विभाग जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर।

विषयानुक्रमणिका

क आभार–अनुक्रम ख भूमिका ग सम्मतियाँ

अध्याय — पृष्ठ संख्या

प्रथम प्रस्तावना—

राजस्थानी बोलियाँ मेवात का क्षेत्र मेवाती पर हुए अध्ययनों का इतिहास एव उनके प्रभाव 1

द्वितीय मेवात प्रदेश : पृष्ठभूमि—

वैदिक पुराणकाल बौद्धकाल मौर्यकाल शककाल मत्स्य प्रदेश विकास के चरण मेवात और मेवाती शब्द–व्युत्पत्ति क्षेत्र सीमा वक्ता सीमा बोलियाँ भेद–कठेर भयाना आरेज नहेड़ा बीधोता खड़ी मेव मेवाती ब्राह्मणी मेवाती सीमा बोलियाँ व्रज बाँगरू अहीरवाटी जयपुरी। 17

तृतीय उद्गम और विकास

उद्गम विकास क्रम ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भाषागत विशेषताएं ध्वनि विकार व्यंजन संयुक्त व्यंजन रूप–विचार मध्यकाल आधुनिककाल मूलपाठ 42

चतुर्थ–ध्वन्यात्मक विकास—

मेवाती–ध्वनियाँ स्वर अनुनासिक स्वर व्यंजन संयुक्त व्यंजन आघात संवृतअक्षर स्वर परिवर्तन स्वर विकास अनुनासिकस्वर स्वत अकारण अनुनासिकता व्यंजन परिवर्तन संयुक्त व्यंजन, लोप आगम प्रतिध्वनित व्यंजन ध्वनि विकास 68

पंचम रूपात्मक विकास—

संज्ञा मूल एव विकृत लिंग लिंग परिवर्तन कारक–विभक्तियाँ सर्वनाम विशेषण मूल एव विकारी तुलनात्मक कोटियाँ सार्वनामिक विशेषण संख्यावाचक क्रिया–धातु मूल एव यौगिक सोपसर्गीय संस्कृत में पुनः गृहीत धातुएँ देशज यौगिक संयुक्त एव सप्रत्यय नामधातुएं ध्वन्यात्मक लौकिक सहायक क्रिया कृदन्तीय रूप पूर्वकालिक कृदन्त क्रियार्थक संज्ञा कर्तृवाचक संज्ञा अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त तात्कालिक कृदन्त वाच्य काल रचना 130

षष्टम–अव्यय— 222

सप्तम प्रत्यय उपसर्ग— 227

अष्टम–शब्द कोष— 238

संक्षिप्त संकेत— 257

सहायक ग्रन्थानुक्रमणिका— 258

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

राजस्थानी भाषा दो प्रदेशों में बोली जाती है। एक राजस्थान तथा दूसरा मालवा। इस विस्तृत भू-भाग में 73 बोलियाँ प्रचलित हैं, जो निम्नलिखित हैं[1] :—

1 अगरवाली, 2. अहीरी, 3. अहीरवाटी, 4 अजमेरी, 5 अलवरी, 6 बाचडी, 7 बागडी-राजस्थानी, 8. बगाला 9 बनजारी, 10 बेतुली, 11 भोपाली, 12. भोयारी, 13 भुआसी, 14. बीकानेरी, 15 चौरासी, 16 छेकरी, 17 ढान्डेरी, 18 ढाडी, 19 ढूँढारी, 20. डिंगल, 21 गाडिया लुहारी, 22 गाडौली, 23 गोडवानी 24 गोजरी, 25 गोल्ला, 26 गुजरी 27 गुज्जरी, 28 गुर्वी, 29 हाडौती, 30 हतिया की बोली 31 जयपुरी, 32 जम्भूवाल गोजरी, 33 जैसलमेरी, 34 झामरल, 35 जोधपुरी, 36 कालबेली, 37. खैराडी, 38 काचीवाडी, 39 खण्डवी, 40. किर, 41. किशनगढी, 42 कोरा-बजारी, 43. लमानी। लबाडी, 44. लश्करी, 45 लोहारी राजस्थानी, 46 महाजनी राजस्थानी, 47 महाराज शाही 48 महेसरी, 49. मालवी, 50 मारवाडी, 51 मारवाडी गोडी, 52. मेजवाडी, 53 माथुरी बजारी, 54 मेवाती, 55 मेवाडी, 56 नागर चोल, 57 नागौरी, 58 नाइकी बजारी, 59. निमाडी, 60 ओसवाली, 61 पल्वी, 62. पटवी, 63 राजस्थानी, 64 राजवाटी, 65 राजहूरी, 66 राजपुतानी, 67 राजवाडी, 68. शेखावाटी, 69 सिपाडी, 70 सोडवाडो, 71 टडा, 72 थली, 73. उज्जैनी।

राजस्थान की इन बोलियों में अधिक से अधिक शोध करने की आवश्यकता है। डा० दीनदयाल गुप्त के अनुसार हमारी अनेक बोलियों, जैसे—बैसवाडी, बघेलखडी, छत्तीसगढी, मालवी, जयपुरी, हाडौती, मारवाडी[2] मेवाती आदि पर गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किये जाने की आवश्यकता है। इन सभी बोलियों में कुछ बोलियों—जैसे-बघेलखडी, छत्तीसगढी, मालवी, जयपुरी, शेखावाटी मारवाडी, हाडौती, मेवाडी आदि-पर तो शोध-कार्य हो चुका है, परन्तु मेवाती अब तक अछूती रही। साथ ही विद्वानों द्वारा उपेक्षित भी। इसी स्थिति ने प्रस्तुत लेखक को मेवाती का गंभीर अध्ययन प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी।

☐ मेवाती का क्षेत्र

यह हरियाना प्रदेश के जिला गुडगाँव की तहसील फिरोजपुर झिरका फिरोजपुर एव नूह में, उत्तर प्रदेश की कोसी, छाता एव मथुरा तहसीलों के पश्चिमी अचलो में, राजस्थान के जिला अलवर की किशनगढ, तिजारा, रामगढ़, गोविन्दगढ, लक्ष्मणगढ,

अलवर तथा मालाखेडा तहसीलो मे एव जिला भरतपुर की कामा एव नगर तहसीलो के पश्चिमोत्तर भाग मे बोली जाती है।

☐ मेवाती पर हुए अध्ययनो का इतिहास एवं उनके प्रभाव

अध्ययन–सुविधा की दृष्टि से मेवाती सम्बन्धी अब तक हुए अध्ययनो को हम निम्नलिखित तीन वर्गों मे प्रस्तुत कर सकते हैं—

1 वे ग्रन्थ जिनमे मेवाती का प्रसगमात्र नामोल्लेख है,
2 वे ग्रन्थ जिनमे मेवाती का सामान्य परिचय है तथा
3 वे ग्रन्थ जिनमे कुछ विशेष वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत है।

(1) भारत मे अंग्रेजी शासन के समय श्रीरामपुर के ईसाई मिशनरियो न स्व-धर्म प्रचार हेतु बाईबिल का अनुवाद भारत की विभिन्न बोलियो म किया था। १६ वी सदी के प्रथम चरण मे इन मिशनरियो की चेष्टा से राजस्थानी बोलियो म बाईबिल के द्वितीय खड (नयेनियम) का मारवाडी, उदयपुरी या मेवाडी बीकानेरी, जैपुरी, हाडोती तथा उज्जैनी या मालवी बोलियो मे अनुवाद हुआ। राजस्थानी भाषा के सबध मे यूरोप के पडितो के कौतूहल का यह प्रथम फल था।[1] परन्तु इस प्रथम प्रयास मे भी मेवाती बोली को स्थान नही मिला।

सन् 1876 मे प्रकाशित डा० एस एच केलाग के 'ए ग्रामर ग्राफ दी हिन्दी लेंग्वेज", पृष्ठ 65 पर राजस्थानी बोलियो मे से मारवाडी, मेवाडी तथा जयपुरी बोलियो का विचार किया गया है। विद्वान लेखक ने हिन्दी की उपभाषाओ के वर्गीकरण मे राजस्थानी बोलियो के अन्तगत मारवाडी, मेवाडी, मरवाडी, जयपुरी एव हाडोती बोलियो को स्वीकार किया है।

स्पष्ट है कि यहाँ भी मेवाती के सम्बन्ध मे कोई विचार नही किया गया। परन्तु एक पाद-टिप्पणी मे राजस्थान की बोलियो की उपबोलियो के वर्णन करते समय जयपुरी के उत्तर-पूर्व मे अलवर की अलवरी बोली का उल्लेख अवश्य किया गया।[4] इसमे भी विवेचनात्मक कोई बात नही कही गई। सन् 1928 म श्री देशराज ने 'मेव और मौलवी' (ए बी प्रेस आगरा) मे मेवाती बोली के नमून प्रस्तुत किये हैं, किन्तु भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से इस पुस्तक म भी कोई तथ्य परक बात नही है।

इसके बाद 'राजस्थानी भाषा की रूपरेखा'[5] (1963) भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी[6] (1954), *हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास*[7] (1955), भाषा विज्ञान और हिन्दी[8], भारतीय भाषा विज्ञान[9] (1959), मालवी एक भाषा शास्त्रीय

अध्ययन[10] (1960), हरियाना प्रान्तीय लोक-साहित्य[11] (1960), हिन्दी भाषा और लिपि का ऐतिहासिक विकास'[12] (1964), तथा 'मैं धरती पंजाब का'[13] आदि पुस्तकें प्रकाश में आईं। इनमे कहीं-कहीं किसी पूर्व लेखक की देखा-देखी मेवाती का नामोल्लेख मात्र हुआ है। अधिक जानकारी देने में ये ग्रन्थ भी असमर्थ हैं। सन् 1901, 1951 1961 एव 1971 की भारतीय जनगणना रिपोर्ट के राजस्थानी भाषा सबधी प्रकरण में मेवाती भाषियो के आकडे दिये गये है। इसके अतिरिक्त इस रिपोर्ट में भी कोई नई बात नहीं कही गई है। स्पष्ट है कि उपर्युक्त सभी ग्रंथों मे मेवाती का नामोल्लेख तो किया गया है, परन्तु तत्सबधी विशेष जानकारी का अभाव ही है।

(2) अब हम उन ग्रंथो को देख लें जिनमे मेवाती का सामान्य परिचय प्राप्त होता है। ऐसे ग्रंथो मे लेखको ने सक्षेप म ही कोई विचार प्रस्तुत कर दिया है, विस्तृत विवरण नहीं। इनमे सर्वप्रथम डा० एल पी तेस्सितोरी का नाम लिया जा सकता है। डा० तेस्सितोरी ने 1914 से 1916 ई० तक अपभ्रंश, गुजराती एव मारवाडी के सदर्भ मे प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का एक ऐतिहासिक व्याकरण प्रस्तुत किया।[14] यह कृति निश्चय ही पुरानी पश्चिमी राजस्थानी तथा गुजराती भाषा तत्व की आधारशिला कही जा सकती है। इसमे यो तो मारवाडी एव गुजराती ही विवेच्य रही हैं, फिर भी सामान्य रूप से मेवाती के उद्‌भव सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण बात भी कह दी गई है। वे कहते हैं कि—"पिंगल अपभ्रंश उस भाषा समूह का शुद्ध प्रतिनिधि नही हैं जिससे प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी उत्पन्न हुई है, बल्कि उसमें ऐसे अनेक तत्व हैं जिनका आदि स्थान पूर्वी राजपूताना मालूम होता है और जो अब मेवाती, जयपुरी और मालवी आदि पूर्वी राजस्थानी बोलियो तथा पश्चिमी हिन्दी म विकसित हो गये हैं। .... " हम यह मान सकते हैं कि पूर्वी राजपूताना की प्राचीन भाषा–वह प्राचीन पूर्वी राजस्थानी हो चाहे प्राचीन पश्चिमी हिन्दी–मूल रूप मे गुजरात और पश्चिमी राजपूताना की भाषा की अपेक्षा गगा-द्वाब की भाषा के अधिक निकट थी।"[15] इसके अतिरिक्त मेवाती के स्वरूप के सम्बन्ध मे वे कोई विशेष जानकारी नही दे पाये। वस्तुतः उनका मूल विषय तो मारवाडी और गुजराती के प्राचीन स्वरूप को व्यक्त करना था, मेवाती का नहीं।

सन् 1925 मे डा० श्यामसुन्दरदास का 'भाषा-विज्ञान' नामक ग्रंथ प्रकाश म आया। इसका 'हिन्दी भाषा का विकास' शीर्षक अन्तिम अध्याय 'हिन्दी शब्द सागर' की प्रस्तावना के रूप मे प्रकाशित हुआ। बाद मे इसे 'हिन्दी भाषा और साहित्य' नामक कृति के पूर्वार्द्ध मे सम्मिलित किया गया। अब यह अलग स्वतत्ररूप मे 'हिन्दीभाषा' नाम से प्रकाशित हो गया है। इस पुस्तक मे राजस्थानी

की बोलियो के सदर्भ मे कहा गया है कि—'मेवाती और मालवी में किसी प्रकार के साहित्य का पता नही चला है। इन भिन्न-भिन्न बोलियो की बनावट पर ध्यान देने से यह प्रकट होता है कि जयपुरी और मारवाड़ी गुजराती से, मेवाती ब्रजभाषा मे और मालवी बुदेल खण्डी से बहुत मिलती जुलती हैं'।[16] इसके अतिरिक्त मेवाती के सम्बन्ध में कोई गभीर विचार नहीं मिलता। स्पष्ट है कि मेवाती के अध्ययन के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी नही हो सका। अग्रिम अध्ययन का अभाव बना ही रहा।

सन 1933 मे डा० धीरेन्द्र वर्मा का 'हिन्दी भाषा का इतिहास' नामक ग्रथ प्रकाश मे आया। इस ग्रथ मे मेवाती के सम्बन्ध मे कुछ सामान्य बातें—जो डा० दास एव डा० ग्रियसन द्वारा कह दी गई थी—प्रस्तुत की गई। मेवाती तथा अहीरवाटी उपभाषाएँ उत्तर राजस्थान मे अलवर राज्य तथा पूर्वी पजाब के दक्षिणी भाग के गुडगाँव जिले के निकटवर्ती प्रदेश मे बोली जाती हैं। मेवाती का साहित्यिक महत्व कभी नही रहा। इसके बोलने वालो की सख्या 16 लाख के लगभग है। मेवाती पर ब्रज भाषा तथा अहीरवाटी पर बागरू या खडी बोली का प्रभाव स्पष्ट है।"[17] सन् 1935 मे उपर्युक्त लेखक का "ब्रजभाषा" नामक ग्रथ प्रकाशित हुआ। इसके परिशिष्ट मे अलवर, भरतपुर एव गुडगाँव की बोलियो के उदाहरण दिये गये हैं। इससे मेवाती की सीमान्त स्थिति का पता अवश्य लगता है, परन्तु मेवाती के सम्बन्ध मे सीधे कोई जानकारी प्राप्त नही होती। अतः भाषा तात्विक जानकारी का यहाँ भी अभाव ही रहा।

ल आंदो एरिया (1940) मे डा० ज्यूल ब्लाख ने विविध भाषाओ एव बोलियो की तुलना करते समय राजस्थानी बोलियो की तुलना भी की है। इसमे जहाँ तहाँ मेवाती सज्ञा एव सर्वनामो को भी प्रस्तुत किया गया है। लेकिन विस्तृत एव गभीर जानकारी का इस ग्रथ मे भी अभाव ही रहा।

"राजस्थानी भाषा और साहित्य" (1960) मे डा० माहेश्वरी ने मेवाती की सीमा, प्रभाव, साहित्यकारो एव कुछ व्याकरणिक तथा ध्वन्यात्मक विशेषताओ को अतिसक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया है क्योकि "यदि विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया जाता तो यह राजस्थानी की विभिन्न बोलियो का ही अध्ययन होता जो यहाँ अभीष्ट न था।"[18] स्पष्ट है कि यहाँ मेवाती का अध्ययन अभीष्ट न था। ऐसी स्थिति मे गभीर अध्ययन का तो प्रश्न ही नही उठता।

अपने 'हिन्दी भाषा की आधुनिक समस्यायें तथा अन्य निबन्ध' नामक निबन्ध सग्रह के 'राजस्थान की साहित्यिक परम्परा' नामक लेख मे डा० 'अरुण' कहते हैं कि "निस्सन्देह वह (मेवाती) मध्यवर्तनी बोली है, इसलिए उसके सम्बन्ध मे किसी विवाद की आवश्यकता नहीं दीख पडती, किन्तु मेरे मत से उसे राजस्थानी

के अन्तर्गत सम्मिलित कर लेने मे भी कोई द्विविधा नही होनी चाहिए।"[19] उक्त कथन मे दो बातें सामने आती हैं। प्रथम तो यह 'मध्यवर्तनी बोली है' और दूसरे यह राजस्थानी के साथ रक्खी जा सकती है। परन्तु पुष्ट प्रमाणो एव उदाहरणो के अभाव मे यह मत भी स्पष्ट नही जान पडता।

'दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास'[20] नामक शोध ग्रथ मे मेवाती के अन्यतम प्रभाव को स्वीकार किया गया है। लेकिन विद्वान लेखक के द्वारा यह वही भी स्पष्ट करने का प्रयास नही किया गया है कि वह प्रभाव किस प्रकार का एव कैसा रहा है। यत्र-तत्र कुछ शब्द-रूपो के प्रयोग के अतिरिक्त कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं होती।

इनके अतिरिक्त 'समितिवाणी' (भरतपुर), कल्पना, (हैदराबाद), 'शोध-पत्रिका' (उदयपुर), भीक' (नूह), विश्वज्योति (पजाब) 'मरुभारती' (पिलानी), 'अरावली' (अलवर), तेज प्रताप' (अलवर) सप्तसिंधु (हरियाणा), 'राजस्थानी' (कलकत्ता) आदि पत्र-पत्रिकाओ मे बिखरी सामग्री उपलब्ध होती है। परन्तु कोई विचारोत्तेजक भाषा वैज्ञानिक सामग्री प्रकाश मे नही आ सकी। मेवाती सम्बन्धी अध्ययन विश्लेषण सम्बन्धी सामग्री का अभाव ही रहा।

(3) कुछ ऐसे भी ग्रथ सामने आये जिनमे मेवाती का विस्तृत, गभीर एव भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार का कार्य करने वालो मे सर्वप्रथम रेव० जी० मैक्लिस्टर महोदय का नाम लिया जा सकता है। उन्होने सन् 1898 मे जयपुर नरेश के प्रोत्साहन से "स्पेमीमैन्स आफ दी डायलेक्ट्स स्पोकन इन दी स्टेट आफ जयपुर" नामक रचना का प्रकाशन करवाया। इस पुस्तक मे जयपुर राज्य मे बोली जाने वाली 15 बोलियो के उदाहरण कहानियो के रूप मे सकलित किये गये हैं। इसमे मेवाती बोली (बीधोता की बोली) की सात कहानियों को भी स्थान मिला है। ये कहानियाँ मेवाती के कोटकासिम क्षेत्र से चुनी गई थी। यह कहने मे कोई सकोच नहीं कि मेवाती सम्बन्धी यह सर्वप्रथम कार्य था। इसमें मेवाती का एक सक्षिप्त व्याकरण भी बोली के उदाहरणो के आधार पर दिया गया। मोटे रूप मे इसमे सजा, सर्वनाम सार्वनामिक-विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण, उपसर्ग एव परसर्गों का सक्षिप्त उल्लेख था। वस्तुतः मैक्लिस्टर महोदय का आशय मेवाती का अध्ययन प्रस्तुत करना नही था, वे तो बोलियो का अध्ययन करने मे प्रवृत्त हुए थे, मेवाती के अध्ययन मे नही। इससे स्पष्ट है कि मेवाती के विशुद्ध अध्ययन का अभाव यहाँ भी बना रहा।

मेवाती बोली का प्रथम वर्णनात्मक अध्ययन सर्व प्रथम सन् 1907–8 मे डा० ग्रियर्सन ने प्रस्तुत किया।[21] डा० साहब का 'लि. स. इ.' भारतीय आर्य

भाषाओं का विश्वकोष कहा जा सकता है। इसमें राजस्थानी बोलियों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा सयोग विषयक स्पष्ट धारणा प्रस्तुत की गई है। यहाँ राजस्थानी बोलियो मे मेवाती का स्थान निर्धारित करते हुए उसके नामकरण, जनसख्या, सीमा-क्षेत्र, सीमान्त भाषाओ, उनके प्रभाव एव वर्गीकरण को प्रस्तुत किया गया। साथ ही मेवाती बोली के गद्य के नमूने के रूप मे एक कहानी भी प्रस्तुत की गई है। इसके साथ 240 शब्दो की एक सूची भी प्रस्तुत की गई है, जिसमे सज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, सख्यावाचक–विशेषण, सयोजक, परसर्ग एव वाक्यविन्यास आदि व्याकरणात्मक जानकारी भी दी गई है। निश्चय ही मेवाती सम्बन्धी अब तक हुए उल्लेखों मे यह सर्वश्रेष्ठ है। सन् 1937 मे प्रकाशित 'ब्रजभाषा व्याकरण' मे डा० वर्मा ने ब्रज और पूर्वी राजस्थानी की तुलना करते हुए मेवाती की विशेषताएँ भी व्यक्त की हैं। साथ ही वे अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं—'इसमे सन्देह नही कि जयपुरी की अपेक्षा पूर्वी राजस्थानी की मेवाती बोली ब्रज के अधिक निकट है।'[22]

इसके बाद सन् 1948 मे डा० मोतीलाल मेनारिया का 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' नामक प्रसिद्ध ग्रथ प्रकाशित हुआ। इसमे राजस्थानी भाषा की प्रमुख बोलियों के सम्बन्ध मे सक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की गई है। विभिन्न बोलियो के गद्य के नमूनो के साथ कुछ व्याकरणिक टिप्पणिया भी दी गई हैं। मेवाती बोली के गद्य एव पद्य दोनो के नमूने सकलित किए गए हैं। साथ ही क्षेत्र, सीमा, प्रभाव एव मेवाती के साहित्य का सक्षिप्त विवरण भी दिया गया है। परन्तु अन्ततोगत्वा यह ग्रथ भी मारवाडी (डिंगल) बोली और उसके साहित्य का अध्ययन मात्र बनकर रह गया है। मेवाती के अध्ययन मे इससे अधिक सहयोग यह नहीं दे सका।

सन् 1949 मे राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर के द्वारा आयोजित 'महाकवि सूर्यमल्ल-आसन' मे डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने राजस्थानी भाषा और साहित्य पर 3 विद्वतापूर्ण भाषण दिये, जिसका अनुवाद 'राजस्थानी भाषा' नाम से इसी वर्ष प्रकाशित भी हुआ। इस ग्रथ मे डा० साहब ने कहा है कि 'राजस्थानी का पुराना साहित्य अधिकतया मारवाडी मे मिलता है—परन्तु और राजस्थानी बोलियों मे साहित्य सर्जन इतना नही हो पाया।"[23] डा० चटर्जी ने डा० ग्रियर्सन के राजस्थानी बोलियो सम्बन्धी वर्गीकरण को भी उचित नही माना है। उनका कहना है कि "राजस्थानी-इस नाम से, ग्रियर्सन ने भौगोलिक सयोग के कारण और कुछ स्थूल विशिष्टताओ के कारण जिन बोलियो या भाषाओं को एकत्र गूथ दिया था, वे सचमुच दो पृथक शाखाओं की हैं—एक, पूर्व की शाखा, जो पछाही हिन्दी से ज्यादा सम्बन्ध रखती है और दूसरी पश्चिम की शाखा, जिसका गुजराती

मे मौलिक सयोग है।"[24] स्पष्ट है कि डा० चटर्जी राजस्थानी को दो भागो मे विभक्त करते हैं पूर्वी एव पश्चिमी। उनके अनुसार 'राजस्थान मालवे की बोलियो को दो ही मुख्य श्रेणियो मे विभाजित करना बेहतर होगा। ग्रियर्सन की। पश्चिमी राजस्थानी) तथा ३ (मध्यपूर्वी राजस्थानी-ढूढाडी) को एक साथ लेकर, केवल उन्हे ही राजस्थानी नाम देना ठीक होगा। इनमे (1) को अब जैसा पश्चिमी राजस्थानी कहना चाहिए और (3) को "पूर्वी राजस्थानी"। बाकी श्रेणियो की भाषाओ को ((2) उत्तरपूर्वी राजस्थानी-मेवाती, अहीरवाटी, (4) मालवी (5) निमाडी) या बोलियो को कितनी दूर तक हम राजस्थानी मे सामिल कर सकते हैं, यह विचारणीय है। अहीरवाटी, मेवाती, मालवी और निमाडी-ये पछाही हिन्दी मे ज्यादा सम्पर्कित हैं या साम राजस्थानी से, इस विषय पर चरम निर्णय अब तक नही निकला है"[25]। डा० चटर्जी का यह कथन मेवाती सम्बन्धी अब तक हुए अध्ययनो के अभाव को स्पष्ट स्वीकार करता है। कारण कि, उचित अध्ययन के अभाव मे मेवाती के स्वरूप-निर्णय की बात अन्तिम रूप से नही कही जा सकती। इससे स्पष्ट है कि डा० चटर्जी ने भी मेवाती सम्बन्धी विचारणीय प्रश्न को चलता कर दिया है। 'शेखावाटी बोली का वर्णनात्मक अध्ययन" (1964) मे भी मेवाती की अनेक विशेषताओ का उद्घाटन किया गया है। ध्वन्यात्मक, रूपात्मक एव अर्थ विचार-सम्बन्धी अनेक खोजपूर्ण बातो का उल्लेख हुआ है। भाषा भूगोल के माध्यम मे तुलनात्मक दृष्टि भी देखी जा सकती है। फिर भी मेवाती की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अभाव बना ही रहा। साथ ही लेखक वर्णनात्मक अध्ययन तक ही सीमित रहे, ऐतिहासिक तक नही। भाषाविज्ञान कोष (1964)[26] मे डा० भोलानाथ तिवारी ने डा० ग्रियर्सन एव चटर्जी के विचारो को सकलित कर उन पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने का प्रयास किया है। यह एक कोष ग्रथ है तथा कोष-ग्रथ की एक सीमा होती है। फिर भी यहाँ मेवाती की उपबोलियाँ, जनसख्या, क्षेत्र, तथा उसके स्थान-निर्धारण सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण सामग्री दी गई है। लेकिन मेवाती बोली के भाषाशास्त्रीय एव ऐतिहासिक पक्ष की ओर कोषकार का ध्यान नही गया है। यह अग्रिम अध्ययन की अपेक्षा रखता है।

श्री सीताराम लालस ने "राजस्थानी शब्द कोष" की विस्तृत भूमिका मे रा भा के वर्गीकरण के प्रसग मे पूर्वोत्तरी बोलियो का भी उल्लेख किया है। यहाँ मेवाती के कुछ व्याकरणात्मक रूपो एव विशेषताओ का उद्घाटन भी किया गया है।[27] परन्तु समग्र रूप से यह कोष 'डिंगल-कोष' बन कर रह गया है। कोषकार प्रस्तुत लेखक को दिये गये अपने पत्र मे कहते हैं, 'मैं मेवात मे काफी समय तक शब्द सग्रह हेतु भ्रमण कर चुका हू-परन्तु मेरा उद्देश्य केवल मात्र प्रान्तीय शब्दो के सग्रह तक ही था।"[28]

मेवाती बोली के संदर्भ मे 'मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन' नामक शोध-प्रबन्ध का उल्लेख करना भी आवश्यक हैं। इस ग्रंथ मे यत्र-तत्र मेवाती बोली की ध्वन्यात्मक विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्ययन में लेखक के समक्ष साहित्य का सकलन मात्र उद्देश्य रहा है और यह बात ठीक भी है कि मत्स्य प्रदेश का अधिकतर साहित्य ब्रजभाषा में ही लिपिबद्ध है। मेवाती बोली के सम्बन्ध मे किञ्चित जानकारी इन शब्दो से अवश्य मिलती है—'भाषा के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि अलवर को छोड़कर शेष प्रान्त की भाषा सामान्य रूप मे ब्रज ही रही हैं। भरतपुर और करौली तो ब्रजभाषा के गढ़ ही रहे हैं। इन स्थानो म यही भाषा साहित्य तथा बोलचाल के काम आती थी। अलवर मे बोली जान वाली भाषा राजस्थानी मे प्रभावित है जिसमें 'काई', 'छै' आदि का प्रयोग है और 'भोरानाथ' को 'भोडान'थ' उच्चारण करते हैं और कहीं कहीं लिखते देखा जाता है। इसका कुछ प्रभाव यहां के गद्य पर भी पड़ा है।"[29] इससे स्पष्ट है कि विद्वान लेखक ने मेवाती बोली क भाषा वैज्ञानिक पहलू को अधिक छूने का प्रयास नही किया है। इसका कारण उनके विषय की अपनी सीमा ही रही है।

'हिन्दी उद्भव, विकास और रूप'[30] तथा ग्रामीण हिन्दी बोलियां'[31] दो महत्वपूर्ण कृतियां प्रकाश मे आई। इन दोनो ही कृतियो मे डा० बाहरी ने मेवाती बोली के नामकरण, सीमा, प्रभाव, परसर्ग, सर्वनाम, क्रिया एव गद्य के नमूने प्रस्तुत किये हैं। ग्रामीण हिन्दी बोलियो' मे तो मेवाती शब्दावली एव वाक्यो का सकलन भी है। मेवाती के सम्बन्ध म डा० साहब का कहना है कि 'पश्चिमी हिन्दी के जानकार के लिए जो राजस्थानी को समझना चाहे, मेवाती एक प्रवेश द्वार का काम देती है।"[32] इससे मेवाती के अध्ययन का महत्व तो स्पष्ट होता ही है साथ ही मेवाती के भाषा वैज्ञानिक पहलू को समझने का भी अवसर मिलता है।

मथुरा जिले की बोलियां' डा० चन्द्रभान रावत का पीएच डी का शोध-प्रबन्ध है। इस ग्रंथ मे मथुरा जिले की बोलियो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मेवाती मथुरा जिल मे भी प्रचलित है अत मेवाती की ध्वन्यात्मक एव रूपात्मक विशेषताओ पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। फिर भी शोध-कर्त्ता के लिए मथुरा जिले की प्रधान बोली 'ब्रज' ही अध्ययन का केन्द्र रही, मेवाती नही।

इनके अतिरिक्त अनेक पत्र-पत्रिकाओ जैसे अलवर गजेटीयर, शोध पत्रिका, मरु भारती, आरावली, तेज, गुडगांव गजेटीयर, सप्तसिंधु आदि देखी जा सकती हैं। विनम्रता के साथ निवेदन है कि प्रस्तुत लेखक ने भी अनेक शोध-लेख प्रकाशित करवाकर मेवाती के अध्ययन के नये आयाम प्रस्तुत किये हैं।

उपर्युक्त अध्ययन को तालिका रूप मे हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

(1) वे ग्रंथ जिनमे मेवाती का प्रसग मात्र नामोल्लेख है—

क्र०	ग्रंथ एव कर्त्ता का नाम	काल ई० मे	उल्लेख का रूप	मूल्याकन
1	2	3	4	5
1	बा द्वि ख (नये नियम) (ईसाई मिश०)	19 वीं शती	—	मेवाती को गौण बोली समझकर उसकी उपेक्षा की गई ।
2	ए ग्रा हि लें (केलाग)	1876	मेवाती का नामोल्लेख नहीं परन्तु पाद टिप्पणी मे इसे 'अलवरी' कहा है ।	इस अध्ययन म मेवाडी एव मारवाडी ही प्रधान रही । मेवाती तो प्राय नगण्य एव उपेक्षित रही ।
3	रा भा रू (पुरुषोत्तम मेनारिया)	1953		
4	मा ग्रा भा हि (चटर्जी)	1954	राजस्थानी बोलियो के प्रसग म नामोल्लेख मात्र ।	विवेचनात्मक सामग्री का सर्वथा अभाव ।
5	हि भा उ वि (उ ना तिवाडी)	1955		
6	भा वि हि (स० प्र० अग्रवाल)	—		
7	भा मा वि (कि दा बाजपेयी)	1959		
8	भा मा अ (वि० उपाध्याय)	1960		
9	हृ प्र लो (श० ला० यादव)	1960		
10	हि भा लि ए बी (त्रिपाठी)	1964		
11	मैं धरती पजाब की (नरेन्द्रधीर) (तृ० सस्क०)	—		
12	सें इ०	1901, 1951, 61, 71		जनसंख्या सम्बन्धी आंकड़ो की सारियकी ।
13	राज० (कलकत्ता, त्रैमा०)	—		—

(2) वे ग्रंथ जिनमें मेवाती का सामान्य परिचय है—

क्र०	ग्रंथ एवं कर्त्ता का नाम	काल ई० में	उल्लेख का रूप	मूल्यांकन
1	2	3	4	5
1	पु रा (तेस्सितोरी, अनु० नामवरसिंह)	1914 16	अपभ्रंश से बोलियों के विकास के संदर्भ में मेवाती का नामोल्लेख।	मेवाती बोली के उद्गम के संबंध में महत्वपूर्ण निर्णय। मेवाती पूर्वी शौरसेनी की पुत्री है तथा किसी प्राचीन पूर्वी राजस्थानी का विकसित रूप है।
2	भा वि (श्यामसुन्दरदास)	1925	हिन्दी की उपभाषाओं के वर्गीकरण के संदर्भ में नामोल्लेख।	मेवाती में साहित्य का अभाव एवं ब्र भा का प्रभाव। गंभीर अध्ययन का अभाव।
3	हि भा इ (धीरेन्द्र वर्मा)	1933	राजस्थानी के वर्गीकरण के संदर्भ में नामोल्लेख।	क्षेत्र, जनसंख्या, सीमा बोलियों के प्रभाव का उल्लेख भाषातात्विक जानकारी का अभाव।
4	ब्र भा (धीरेन्द्र वर्मा)	1935	मेवाती में सीमान्त प्रदेश।	उपर्युक्त।
5	ल भा ए (ज्यूल ब्लाख)	1940	अन्य भाषाओं के साथ तुलना के प्रसंग में नामोल्लेख	मेवाती संज्ञा, सर्वनामादि का यत्र-तत्र प्रयोग। विस्तृत जानकारी का अभाव।
6	रा भा सा (माहेश्वरी)	1960	राजस्थानी बोलियों के वर्गीकरण के प्रसंग में मेवाती का नामोल्लेख।	क्षेत्र, सीमा, प्रभाव साहित्यकार एवं कुछ व्याकरणिक विशेषताओं का संक्षिप्तोल्लेख भाषा वैज्ञानिक सामग्री का अभाव।

1	2	3	4	5
7.	हि. भा. ग्रा म. (ग्ररुण)	—	राजस्थानी बोलियों के वर्गीकरण के प्रसग मे मेवाती का नामोल्लेख।	सीमा, क्षेत्र के साथ सीमा भाषाओं के प्रभाव एवं उसे राज० एव उसे ब्र. भा. की मध्यवर्ती बोली होने का निर्णय। परन्तु ग्रन्य सभी प्रकार के ग्रध्ययन का ग्रभाव।
8	द हि उ वि (श्रीराम शर्मा)	1964	दक्खिनी हिन्दी पर मेवाती के प्रभाव के प्रसग मे नामोल्लेख.	यत्र-तत्र मेवाती रुपो का प्रयोग तथा द. हि. के विकास मे उनका योगदान दिखाया गया है। परन्तु मेवाती के ग्रपेक्षित ग्रध्ययन का ग्रभाव।
9	समि० (ब्रेमा०भरतपुर)	—	मेवाती बोली सबधी लेख।	सामान्य परिचय मात्र तथा गद्य-पद्य के नमूने भी दिये गये हैं।
10	कल्प० (मासिक, हैदराबाद)	—	दक्खिनी हिन्दी सबधी लेख मे मेवाती का प्रभाव।	दक्खिनी के विकास मे मेवाती का योगदान। सामान्य परिचय।
11.	मीक (किफायतुल्ला सह्कि, नूह)	1966	भूमिका मे नामोल्लेख।	राजस्थानी बोलियों मे मेवाती का स्थान, सीमा-क्षेत्र एवं साहित्यिक माधुर्य का उद्घाटन। परन्तु भाषा वैज्ञानिक ग्रध्ययन का ग्रभाव।

(3) वे ग्रथ जिनमें कुछ विशेष भाषा-वैज्ञानिक वर्णन है —

क्र०	ग्रथ एव कर्ता का नाम	काल ई० मे	उल्लेख का रुप	मूल्याकन
1	2	3	4	5
1.	स्पे डा स्टे ज (मेक्लिस्टर)	1898	मेवाती बोली के गद्य के नमूने ।	मेवाती को 'बीघोता की बोली' भी कहा गया । एक सक्षिप्त व्याकरण भी दिया गया है । मेवाती का यह प्रथम वर्णनात्मक अध्ययन है ।
2	लि स इ (ग्रियसन)	1907-8	गद्य के नमून वाक्याश एव शब्दावली ।	सर्व प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन जिसमे क्षेत्र, सीमा, सीमा बोलियाँ उप बोलियाँ व्याकरण एव शब्द-कोष की जानकारी दी गई । परन्तु ऐतिहासिक अध्ययन का अभाव ।
3	ब्र भा व्या (धीरेन्द्र वर्मा)	1937	ब्रज एव पूर्वी राज० की तुलना मे मेवाती का नामोल्लेख ।	मेवाती और ब्र. भा. के साम्य-वैषम्य के प्रसग म व्यनात्मक विशेषताओं का उल्लेख एव उसके ब्रज के अधिक निकट होने की बात । परन्तु अपक्षित अध्ययन का यहाँ भी अभाव रहा ।
4.	रा. भा. सा. (मेनारिया)	1948	राजस्थानी बोलियो के सदर्भ मे मेवाती गद्य एव पद्य के नमूने ।	क्षेत्र सीमा, प्रभाव एव साहित्य सबधी सक्षिप्त जानकारी के साथ कुछ व्याकरणिक विशेषताओं का उल्लेख मात्र ।

1	2	3	4	5
5	रा भा. (चटर्जी)	1949	राजस्थानी भाषा और साहित्य के सदर्भ मे नामोल्लेख ।	यहा डा० ग्रियर्सन के वर्गीकरण का सर्वप्रथम विरोध । मेवाती पछाही हिन्दी के अधिक नजदीक है या प राज० के प्रश्न को विचारार्थ प्रस्तुत किया ।
6.	शे. बो. व म (अग्रवाल	1964	शे बो की सीमा-भाषा होने के नाते मेवाती की ध्वना-कमात्मक एव रूपात्मक विशेषताओ का उल्लेख ।	भाषा भूगोल के मानचित्रो के माध्यम से शेखावाटी एव मेवाती की तुलना । वर्णनात्मक अध्ययन है, परन्तु ऐतिहासिक अध्ययन का अभाव है ।
7.	मा. हि. को (भो०ना०तिवारी)	1964	राजस्थान की उपबोलियो के सदर्भ मे मेवाती का अध्ययन ।	ग्रियर्सन एव चटर्जी के विचारो की आलोचना के आधार पर मेवाती को राज० की बोली स्वीकार किया है ।
8.	रा. म को (लालस)	1962	भूमिका मे राज० भाषा के वर्गीकरण के प्रसग मे वर्णन ।	मेवात प्रान्तीय शब्दो का अर्थ एव किंचित ध्वनात्मक विशेषताओ का उल्लेख ।
9.	म. प्र हि. सा. (मो ला. गुप्ता)		मत्स्य प्रदेश के साहित्य के सदर्भ मे नामोल्लेख ।	यत्र-तत्र अलवर की बोली की ध्वनात्मक विशेषताओं का उल्लेख । सर्वांशत साहित्यिक अध्ययन । भाषा वैज्ञानिक अध्ययन का अभाव ।

1	2	3	4	5
10.	हि उ. वि. म. (बाहरी)	1965	हिन्दी की बोलियो के प्रसग मे मेवाती का भी अध्ययन ।	नामकरण, सीमा, प्रभा व्याकरणिक विशेषताए गद्य के नमूने, शब्दाव एव अन्यार्थ वाक को प्रस्तुत कर सक्षि वर्णनात्मक अध्य किया गया है । ऐतिहासिक अध्यय का अभाव है ।
11.	ग्रा. हि बो. (बाहरी)	1966		
12	म जि बो (च भा रावत)	—	मथुरा जिले की बोलियों के साथ मेवाती बोली का तुलनात्मक अध्ययन ।	बोली भूगोल के द्वा मेवाती की ध्वन्यात्म रूपात्मक एव व्याक रणिक विशेषताओ अध्ययन । परन्तु ऐतिहासिक साम का अभाव ।
13	अ. ग (पाउनट), गु गा. ग तेज०, आरा०, शो प, म मा, आदि पत्र-पत्रिकाए	—	कही-कही स्वतत्र तथा कही-कही राजस्थानी बोलियो के प्रसग म उल्लेख ।	मेवाती के सीमा विस्ता जन-संख्या, प्रभाव ध्वन्यात्मक विशेषता एव लोक साहित्य सबधी विस्तृत जानकारी ।

वर्तमान सदी मे विद्वानो का ध्यान भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन की ओर सर्वाधि गया है । फिर भी मेवाती बोली की ओर समुचित ध्यान नही दिया गया था न तो किसी ने इसके उद्भव और विकास की स्थिति व

☐ **प्रस्तुत अध्ययन** जानने का ही समुचित प्रयास किया, न ही इस *व्याकरण एव शब्द कोष की ओर ही ध्यान दिया गया*

ऊपर अब तक के उल्लेखो के इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से मेवाती का कुछ अनोखा महत्व है। वस्तुतः यह राजस्थानी और ब्रज के सधि-स्थल की बोली है। सधि-स्थलीय बोलियो मे भाषण प्रवृत्तियो के सगठन से होने वाली विविध प्रक्रियाओ की अनोखी गति होती है, जिसे हृदयगम करना वैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है। इसके साथ मेवाती जैसी बोली मे कुछ स्थानीय एव जातीय तत्व भी देखे जाते हैं। यह सधि-स्थलीय भाषा-वैज्ञानिक प्रक्रियाओ को और भी जटिल बना देते हैं। इसमे साहित्य की रचना प्रचुर मात्रा मे नही हुई, अब तक की शोधो से यह प्रतीत होता है। फलतः इसमे 'जडता' अथवा 'स्थिर स्तर' भी नही पनपा। सहज प्रवहमान बोली होने के कारण भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इसका अध्ययन और अधिक आकर्षक माना जायगा। इसी धारणा से हम इस बोली के अध्ययन मे प्रवृत्त हो रहे हैं। इस अध्ययन के लिए हमने मेवाती के प्रकाशित एव अप्रकाशित साहित्य का भी सग्रह किया है। साथ ही इसकी प्रामाणिक व्याकरणिक विशेषताएँ भी प्रस्तुत करना हमारा अभीष्ट रहा है। बोली-कोष की भी उपेक्षा नही की गई है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए लेखक ने मेवात-प्रदेश के गाँव-गाव मे भ्रमण करके जीवन्त सामग्री प्राप्त की हैं। प्रयत्न यह किया गया है कि मेवाती बोली का यह अध्ययन प्रामाणिक हो सके। इसी प्रामाणिकता हेतु मेवाती बोली-क्षेत्र, सीमा-बोलियो तथा उपबोलियो का मानचित्र भी प्रस्तुत किया गया है। अपने अध्ययन को अधिक प्रामाणिक बनाने के लिए क्षेत्र-कार्य पर अत्यधिक ध्यान दिया गया है।

☐ संदर्भ-संकेत

1. से. इ, 1961 (1)
2. शे. बो. अ. (दो शब्द)
3. रा. भा., चटर्जी, पृ० 6–7
4. "These dialects of Rajputana are sometimes still further Subdevided. Thus, according to an enumeration adopted by the Govt. of India in a recent paper, to the north and west of the Marwari, we have the Bekaneri, to the north and east of the Jaipuri, the Alwari, to the south of Harauti, the Ujjaini "— ग्रा हि. लै. केलाग, पृ० 65
5. रा. भा. र पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस।
6. भा. आ भा. हि, चटर्जी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

7 हिं भा उ वि, उ ना तिवारी भारती भण्डार प्रयाग।
8. भा वि हिं, सरयू प्रसाद अग्रवाल राजकमल प्रकाशन दिल्ली।
9 भा मा वि, किशोरीदास वाजपेयी, चौखम्बा, विद्या भवन, वाराणसी–1
10 भा भा अ, चितामणि उपाध्याय, मगल प्रकाशन जयपुर।
11 ह प्रा लो, शकरलाल यादव, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद।
12 हिं भा लि ऐ, सत्यनारायण त्रिपाठी, वि वि प्रकाशन, गोरखपुर।
13 मै ध प, नरेन्द्र धीर
14 एन जी ओ डब्लूयू आर, इन्डियन एण्टीक्वेरी, 1914–16
15 पु रा (अनु० नामवर सिंह) पृ० 6
16 हिं भा, पृ० 68
17 हिं भा इ, पृ० 67
18 रा भा सा, (निवेदन), आधुनिक पुस्तक भवन कलकत्ता
19 हिं भा भा स, पृ० 45
20 द हिं उ वि, श्रीराम शर्मा, हिं सा सम्मलन प्रयाग 1964
21 लि स इ, प्रथम खण्ड भाग 1, तथा नवम् खण्ड, भाग 2
22 ब्र व्या, पृ० 22
23 रा भा पृ० 5
24 वही, पृ० 8
25 वही पृ० 10
26 भा वि को भो ना तिवारी, पृ० 66 335 529 543, 546
27 *रा स को, प्रथम खण्ड पृ० 10*
28 दिनाक 5 दिसम्बर, 1967 के पत्र के उत्तर मे दिनाक 9 दिसम्बर 1967 को दिये दिये गये उत्तर से।
29 म प्र हि. सा दे, डा० मोतीलाल गुप्त प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जयपुर (राज०)
30 हि उ वि रू, किताब महल इलाहाबाद, 1965
31 आ हिं बो, किताब महल इलाहाबाद 1966
32 वही, पृ० 139

□

द्वितीय अध्याय

मेवात-प्रदेश : पृष्ठभूमि

वर्तमान मेवाती बोली प्राचीन उत्तर मत्स्य प्रदेश के एक अश की बोली है ।[1] प्राचीन काल मे राजस्थान के पूर्वोत्तरी अश मे मत्स्यो की आबादियाँ थी । इस जाति का महत्व वैदिक काल से ही देखने मे आता है ।

वैदिक पृष्ठभूमि उत्तर वैदिक साहित्य मे वर्णित जनपदो मे मत्स्य जनपद का भी उल्लेख किया जाता है । वैदिक इन्डेक्स[2] के लेखक के अनुसार पुराकाल मे यह जाति विराट के चारो तरफ आबाद थी । ऋग्वेद मे मत्स्यो के सुदास के साथ शत्रुभाव का भी उल्लेख मिलता है ।[3] शतपथ ब्राह्मण मे अश्वमेधियो की सूची मे ध्वसन् द्वैतवन के 'मत्स्य राजा' (मात्स्य) का उल्लेख है ।[4] कौषीतकी उपनिषद् मे इनका कौरवो एव वसो के साथ वर्णन किया गया है ।

सो वसद् उशीनरेष्यु सवमन् मत्स्येपु-

कुरु पाञ्चालेषु काशिविदेहेष्यिवनि ।[5]

'गोपथ ब्राह्मण' म मत्स्य, साल्व एव वसो का एक साथ उल्लेख हुआ है—

काशि-कौशिल्येषु शाल्व मत्स्येपु सवस उशीनरेषु ।[6]

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि मत्स्य, वस, उशीनर एव शाल्व जनपदो के मध्य कही स्थित था । 'ऐतरेय ब्राह्मण'[7] के अनुसार वस और उशीनर मध्यदेश म स्थित थे । मध्यदेश आर्यावर्त का श्रेष्ठ अश है,[8] परन्तु 'गोपथ ब्राह्मण' मे ये 'उदीच्य खण्ड' के अन्तगत आते हैं ।[9] डा० ओल्डन बर्ग[10] भी इसी को स्वीकार करते हैं । इसलिए मत्स्य जनपद की स्थिति मध्यदेश एव उदीच्य की सीमाओ पर होनी चाहिए । भगवान बुद्ध से पहले, ब्राह्मण ग्रन्थो के युग मे ब्राह्मण सभ्यता का केन्द्र मध्यदेश अर्थात् कुरुपचाल देश और उदीच्य अर्थात् मद्र, केकय, गधार आदि

देश थे । उन प्रान्तो मे तथा अन्तर्वेद की ब्राह्मणादि शिष्ट जातियो मे व्यवहृत भाषा सस्कृत थी ।[11]

मनुजी के अनुसार मध्यदेश हिमालय के दक्षिण मे, विंध्याचल के उत्तर म, विनासा (सिरसा व आसपास का क्षेत्र) के पश्चिम म तथा प्रयाग के पूर्व मे है । महाभारत मे इस प्रदेश को 'सप्तसिंधु प्रदेश' कहा गया है ।[12] बाद के साहित्य मे शाल्व के छः भागो म मत्स्य राजस्थान एव पजाब के विभिन्न स्थानो मे बसे हुए मिलते है । इनकी राजधानी 'विराट' (बैराठ) थी ।[13] मनुस्मृतिकार के अनुसार कुरु-जागल (कुरुक्षेत्र, वर्तमान हरियाणा) मत्स्य (अलवर आदि) एव शूरसेन (मथुरा प्रदेश) जनपदो का सम्मिलित रूप 'ब्रह्मर्षि देश' कहलाता है ।[14] अतः निश्चय रूप म कहा जा सकता है कि वैदिक मत्स्य जनपद सिरसा (हरियाणा) के उत्तर-पश्चिम मे कही आबाद था ।

इस बात पर सदेह करने का कोई कारण नही कि मत्स्यगण बहुत कुछ उसी क्षेत्र मे रहते थे जहाँ महाकाव्यकाल मे मिलते हैं और यह बहुत कुछ आधुनिक अलवर, जैपुर, भरतपुर आदि का ही क्षेत्र था ।[15] 'वैदिक कोष'[16] के लेखक का भी यही मत है । रामायण मे भी मत्स्य जनपद का वर्णन देखने को मिलता है । इसमे कैकेय स अयोध्या तक जाते हुए मत्स्यो की यात्रा का वर्णन है ।[17] महाभारत मे तीन मत्स्य जनपदो का वर्णन मिलता है ।

☐ पुराण काल

1 अपरामत्स्य—चम्बल का क्षेत्र ।
2 कौरवो का सहायक मत्स्य ।
3 *पाडवो का सहायक मत्स्य, जिसकी राजधानी 'विराट' है ।*

महाभारत म मत्स्यो का नाम अधिकतर चेदियो के साथ लिया गया है ।[18] पाचालो के साथ भी मत्स्यो का वर्णन मिलता है, जिनकी सीमा दक्षिण म चम्बल तक थी ।[19] सम्भवत यही अपरामत्स्य कहलाता है और तीसरा मत्स्य वही है जहाँ के राजा विराट की राजधानी 'विराट' (बैराठ) म पाण्डवो न अज्ञातवास किया था । पाण्डवो की विराट यात्रा का वर्णन करते हुए श्री चिंतामणी विनायक वैद्य लिखते है—'कुरुक्षेत्र क दक्षिण की ओर चलने पर हमे पहल शूरसेन देश मिलता है । इसकी राजधानी मथुरा यमुना के किनारे प्रसिद्ध ही है । इसके पश्चिम की ओर मत्स्य देश था, जो जयपुर अथवा अलवर के उत्तर मे था । जब पाण्डव अज्ञातवास के लिए निकले, तब वे गगा के किनारे से नैऋत्य की ओर गय । वे आगे यमुना के दक्षिण तीर के पर्वत और अरण्य को लाँघ कर पाचाल देश के दक्षिण की ओर से और दशार्ण देश के उत्तर की ओर से यकृल्लोम और शूरसेन देश मे शिकार करते

ए और यह कहते हुए कि हम बहलिये हैं विराट देश को गये'।[20] विराट देश ब्रदर्भ देश से ऊपर दिल्ली से दक्षिण तथा मरुदेश (मारवाड) से पूर्व में स्थित ।[21]।

बौद्धकालीन 16 जनपदो में मत्स्य जनपद का भी स्थान था। 'अंगुत्तर निकाय' में इसे ही मच्छ (मत्स्य) जनपद कहा है।[22] 'दीघनिकाय'[23] में मच्छ (मत्स्य) जनपद का वर्णन शूरसेन जनपद के साथ किया गया है। वृहत्संहिता (स० 644) मे मध्यप्रदेश की सूची मे मत्स्य जनपद या प्रदेश का नामोल्लेख है।[24]

□ बौद्धकाल

इस समय सारे उत्तर भारत मे प्राकृत भाषायें प्रचलित थीं, जिनमे अन्तर्वेद (मुख्यतया ब्रह्मर्षि देश या कुरु-पाचाल) की प्राकृत शौरसेनी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी।[25]

महाराज अशोक के बौद्धधर्म मे दीक्षित होने के बाद उन्होंने बौद्धधर्म का प्रचार बड़े मनोयोग के साथ किया। उनकी धर्माज्ञाएँ शिलालेख, एव गुहाभिलेखादि द्वारा प्रायः सर्वत्र, (जहाँ तक महाराज अशोक की राज्य सीमा थी) प्रसारित की गई थी। इन अभिलेखो का भाषावैज्ञानिक दृष्टि से बडा भारी महत्व है। मत्स्य कुरु एव शूरसेन जनपदो मे भी मौर्यवशी शासकों का शासन रहा है।[26] मत्स्य प्रदेश की राजधानी विराटनगर मे प्राप्त शिलालेखों मे मौर्यवश के प्रसिद्ध राजा चन्द्रगुप्त एव उनके पौत्र सम्राट अशोक का पता चलता है। जिनका समय वि० स० पूर्व 193 (ई० सन् से 250 वर्ष पूर्व) माना जाता है।[27] 250 वर्ष के सम्राट अशोक के जो शिलालेख विराट नगर से प्राप्त हुए हैं उन्हे विद्वानो ने बैराट लघु शिलालेख तथा कलकत्ता-बैराट लघुशिलालेख नाम दिया है।[28] 'अशोक के ये अभिलेख मूलत मगध साम्राज्य की केन्द्रीय भाषा मे लिखे गये थे। फिर भी यह समझा गया कि दूरस्थ प्रदेशो की जनता के लिए यह प्रशासन और प्रचार की भाषा थोडी अपरिचित थी। इसलिए अशोक ने इस बात की व्यवस्था की थी कि अभिलेखो के मूलपाठो का विभिन्न प्रान्तो मे आवश्यकतानुसार थोडा बहुत लिप्यन्तर और भाषान्तर कर दिया जाय। यही कारण है कि अभिलेखों के विभिन्न सस्करणो में पाठ-भेद पाया जाता है। पाठ-भेद इस तथ्य का सूचक है कि भारत के विभिन्न भागों मे विभिन्न बोलियाँ थीं जिनकी अपनी भाषागत विशेषताएँ थी।[29] लेकिन मध्य देश की बोली अशोक के शिलालेखों मे नहीं मिलती, इससे स्पष्ट है कि अशोक के दरबार की भाषा पूर्वी प्राकृत ही राज्यभाषा थी और उसका प्रभाव अन्य सभी बोलियो पर पड़ा था। फलतः 'कालसी, तोपरा, बैराट इत्यादि मध्यदेश मे अवस्थित अभिलेखो में प्राच्य-भाषा ने स्थानीय-जन-भाषा को इतने अधिक अश मे ढक लिया है कि इन अभिलेखों

□ मौर्यकाल

से स्थानीय जनभाषा के स्वरूप का स्पष्ट परिचय नहीं मिल पाता।"[30] अतः ये शिलालेख इस तथ्य पर प्रकाश नहीं डालते कि इन स्थानों में कौन-कौन सी बोलियाँ बोली जाती रही होंगी।[31] हाल ही में विराटनगर (बैराठ) के दक्षिण में एक पहाडी पर बौद्धकालीन मठ का भी पुरातत्व विभाग ने उत्खनन किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट हो ही गया है कि 250 ई० पूर्व तक मत्स्य प्रदेश बौद्ध राजाओं के अधिकार में था। यहाँ की जनता भी अधिकतर बौद्ध थी। यही कारण है कि मत्स्य (वर्तमान मेवात) प्रदेश में कोई अति प्राचीन मंदिर आदि ब्राह्मणी सभ्यता के प्रतीक नहीं देखने में आते। लेकिन, उनके बौद्ध धर्म का प्रभाव सातवीं तथा आठवीं सदी तक रहा होगा। कारण कि वि० स० 686 में चीनी यात्री हुएनस्वांग ने भारत में प्रवेश लिया था। वह कश्मीर से चलकर पचनद प्रदेश होता हुआ वैराट गया तथा वहाँ से बौद्धों के प्रधान केन्द्र मथुरा गया था।[32] यहीं से वह मध्यदेश-स्थाण्वीश्वर > थाणेश्वर गया था। थानेश्वर के महाराज श्री हर्ष (वि० स० 662–674) बौद्ध धर्मानुयायी थे। अत निश्चय ही 7 वीं 8 वीं सदी तक मत्स्य कुरु एवं शूरसेन जनपद बौद्ध-धर्म की क्रीडा-भूमि रहे थे।

☐ शक काल

शक लोग मध्य एशिया में निवास करनेवाली सीथियनों की एक शाखा युइची या युथिश जाति के थे। इनका उल्लेख प्राचीन भारतीय ग्रंथों—रामायण, महाभारत, मनुस्मृति एवं पुराणादि में यूनानियों एवं पहलवों के साथ-साथ मिलता है। बहुत जल्दी ही यह जाति भारतीय जन-जीवन में घुलमिल गई थी। श्री मीतल जी इसका कारण उनका अत्याचारी न होना बताते हैं। उनका कहना है कि "शक लोग भारत की संस्कृति से प्रभावित होकर यहाँ के धर्मों के अनुयायी बन गये थे। वे भारतीय जन जीवन में यहाँ तक घुलमिल गये थे कि कुछ काल बाद ही उन्हें भारतीयों से पृथक करना कठिन हो गया था। इस देश की कई महत्वपूर्ण जातियों की नशों में शकों का खून है, किन्तु उसे अब पहचानना बडा कठिन है।"[33] सर्व प्रथम इन शकों ने सिंधु नदी पार कर भारत के पश्चिमी भाग से बढना प्रारम्भ किया था। इन्होंने अवंति के मालवगण को, शूरसेन के शुंगवंशी मित्रों का तथा पश्चिमोत्तर के हिन्दी यूनानियों को पराजित कर उज्जयिनी, मथुरा तथा तक्षशिला में अपने केन्द्र बनाये थे। इनकी उपाधि 'क्षत्रप' होती थी। अधिक शक्तिशाली 'महाक्षत्रप' कहलाते थे। *इस समय मध्यदेशीय शक राजधानी मथुरा थी। नहपान, भौमक,* मावेन आदि शक नेता थे।[34] मथुरा में पुरातत्व की खुदाई में 'मेवक क्षत्रप' का एक सिक्का मिला है। सम्भवत 'मेवात प्रदेश' 'मेवक क्षत्रप' के आधीन रहा हो।

आज प्राचीन मत्स्य प्रदेश की सीमा मे अवश्य कुछ न कुछ अन्तर आ गया है। उसी हिसाब से बोली का प्रदेश भी कुछ इधर-उधर होता रहा है। आधुनिक

मत्स्य प्रदेश विकास के चरण

बोलियो का जो सम्बन्ध प्राचीन जनपदो से बहुत जोडा गया है वह तो ठीक है लेकिन आधुनिक बोलियो के क्षेत्रो को प्राचीन जनपदो के बराबर मान लेना उचित नही जान पडता।[35]

'मत्स्य देश' को ही 'प्राचीन विराट देश' कहा जाता है। 'मत्स्य देश कुरुक्षेत्र म दक्षिण और शूरसेन से पश्चिम मे था। उसमे अलवर राज्य की तहसील अलवर राजगढ, टहला आदि उक्त राज्य के पश्चिमी और दक्षिणी हिस्स तथा अलवर स मिला हुआ जयपुर राज्य का बहुत-सा अ श था। महाभारत के समय उक्त देश का राजा 'विराट' था, जिसके नाम से उक्त दश की राजधानी 'विराट' या विराटनगर कहलाई।'[36]

पुराणो के अनुसार पूर्वकाल मे मधुदैत्य का पुत्र धु धू दैत्य इस प्रदेश का शासक था। उसके नाम मे इस प्रदेश का नाम 'ढूँढार' पडा। धु धूआलय > दुण्डाल > ढुण्ढाड।[37] उसके कुशासन से अप्रसन्न होकर महर्षि उत्तक ने अयोध्या के सूर्यवशी शासक से यहाँ की प्रजा को अत्याचारी राजा के चगुल से बचाने का निवेदन किया। तत्कालीन महाराज वृहदश्व न अपने पुत्र कुवलयाश्व को धुध या धुंधू को मार भगाने के लिए भेजा। इस युद्ध मे धु धू मारा गया और यहाँ सूर्यवशी राजाओ का राज्य हो गया।[38]

किंचित् कालोपरान्त सूर्यवशी शासको से चद्रवशी राजा उपरिचर के पाँच पुत्रो में से एक पुत्र मत्सिल ने इस राज्य को अपने अधिकार मे कर लिया। राजा मत्सिल ने ढूँढार की प्राचीन राजधानी अम्बरीषपुर (अमरसर) को अपनी राजधानी न बनाकर 'मत्स्यपुरी' नामक नया नगर बसाकर अपनी राजधानी बनाई।[39] कुछ लोगो का मत है कि महाभारत के युद्ध के कुछ पूर्व यहाँ राजा विराट के पिता वेणु ने 'मत्स्यपुरी' नामक नया नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया था।[40] सम्भवत वेणु राजा मत्सिल के पुत्र थे। उन्होने अपने पिता की राजधानी को ही अपनी राजधानी बनाया हो। कालान्तर में यही नगर 'माचेडी'[41] नाम से प्रसिद्ध हुआ। राजा मत्सिल या मत्स्य के पौत्र विराट ने विराटनगर बसाकर अपनी राजधानी बनाई। वही विराटनगर' बैराठ' कहलाने लगा। दूसरे पुत्र सुशर्मा ने ने मरहटा (अलवर) को अपनी राजधानी बनाया।

मेवात के मेवो का पूर्व निवास-स्थान मेवाड (मेदपाट > मेवाड) माना जाता है। इन्ही के नाम पर इस प्रदेश का नाम मेवाड पडा है। मेवाड का एक हिस्सा

अब तक 'मेवल' कहलाता है। 'मेवत्त', 'मेदालय' का विकसित रूप है। अब भी मेवाड़ मे देवगढ की ओर तथा मेरवाडा मे इनकी आबादी है। लेकिन मेवाड़ मे कब ? क्यो ? और किसलिए इन्हे हटना पडा ? सब अज्ञान है। हाँ, कुछ विद्वानों का कहना है कि भीलों, गूजरो आदि ने इन्हें वहाँ से खदेड दिया।[42] और ये मेवात मे आ बसे। बाद मे मौर्य, परिहार, क्षत्रप, कुशन, गुप्त, हूण, वैस, पडिहार और बडगूजरो के राज्य का भी इस प्रदेश मे वर्णन मिलता है। गुर्जरो की एक शाखा ने 'सपादलक्ष' प्रदेश को अधिकृत कर लिया था और ये यहाँ की 'खस' जाति के लोगो मे मिल गये।[43] गुर्जर लोग 'सपादलक्ष' से निकल कर गगा के काठे मे होते हुए मेवात और यहाँ से पूर्वी राजपूताना मे जा बसे। बाद मे मुस्लिम शासन के दबाव से इन राजपूतो ने (जो पहले गुर्जर थे) पुन: 'सपादलक्ष' की ओर प्रत्यावर्तन किया और फिर वहीं बस गये। वास्तव मे सपादलक्ष प्रदेश तथा राजपूताना मे निरन्तर यह पारस्परिक आवर्तन-विवर्तन चलता ही रहा है।[44]

बडगूजरो से कछवाहावशी आमेर नरेश काकिल देव ने यह प्रदेश छीन कर अपने कनिष्ठ पुत्र अलघुराय को मेंढ, बैराठ तथा कुडला का इलाका दे दिया था। अलघुराय ने अपने अधिकृत कुडला में 'अलघुपुर' नाम की बस्ती विक्रम की 11 वी सदी मे बसाई जो पीछे अलपुर > अलवुर > अलवर नाम से विख्यात हुई।[45] बाद मे अलवर मेवात की राजधानी रहा। आज मेवात अपनी प्राचीन सीमाओ मे नही समा सका और इसने गुडगाँवा, भरतपुर, मथुरा आदि जिलो के भी कुछ भू-भाग को अपनी सीमा मे ले लिया है।

'मेवात' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वानो म काफी मत भेद रहा है। 'सप्त सिन्धु' (मई १९७०) के अक मे हमने इस विषय पर अत्यन्त गम्भीरता से विचार किया है। निष्कर्षत 'मेवात'

☐ मेवात और मेवाती **शब्द-व्युत्पत्ति** शब्द सस्कृत के कल्पित रूप 'मेदत्रा' (> मेवत्ता > मेवात्ता > मेवात)

से व्युत्पन्न है। 'मेवात' शब्द मे 'ई' प्रत्यय लगाने पर मेवाती (वि०) मेवात का तथा स्त्री० मेवात प्रदेश की बोली होता है।

'मेवाती' बोली का एक नाम बिघौता' की बोली भी है। डा० ग्रियर्सन के अनुसार 'मेव लोगो की भाषा' 'मेवाती' अथवा 'बिघौता' है।[46] यो वर्तमान मे परिस्थितियो को देखते हुए मेवाती को हम 'अलवरी' भी कह सकते हैं। रेवरेण्ड एस. एच केलाग भी इसे 'अलवरी' ही कहते हैं।[47] जिस प्रकार जयपुर की जयपुरी, बीकानेर की बीकानेरी, जैसलमेर की जैसलमेरी, ग्वालियर की ग्वालियरी, उदयपुर की उदयपुरी तथा जोधपुर की जोधपुरी कहलाती है उसी प्रकार अलवर की प्रधान

बोली होने के कारण 'मेवाती' को 'अलवरी' नाम भी यदि दे दिया जाय तो कोई आपत्ति नही होगी।

मेवाती-क्षेत्र

भौगोलिक दृष्टि से इस प्रदेश का-क्षेत्र-विस्तार इस प्रकार कहा जा सकता है—27 अंश 26 कला दक्षिण अक्षांश, अंश 33 कला उत्तरी अक्षांश, 76 अंश 23 कला पश्चिमी देशान्तर तथा 77 अंश 45 कला पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। इसका क्षेत्रफल 4500 हजार वर्गमील है जो अलवर राज्य की अपेक्षा 1315 वर्ग मील एव भरतपुर राज्य की अपेक्षा 2568 वर्ग मील अधिक है।[48] मेजर पाउलेट के अनुसार 'मेवात का प्राचीन प्रदेश भरतपुर के डीग से लेकर रेवाडी के कुछ ऊपरी भाग तक वर्णित किया जाता है। पश्चिम मे रेवाडी से अलवर के ठीक ६ मील पश्चिम तक तथा दक्षिण मे अलवर के बारा सोता तक इसका विस्तार है। पूर्वी भाग म इसका क्षेत्र डीग तक है।'[49]

मेवाती-सीमा

डा० ग्रियर्सन के अनुसार मेवाती अलवर, भरतपुर के उत्तर पश्चिम तथा पजाब के गुडगांव जिले मे बोली जाती है। जयपुर की कोटकासिम तथा नाभा की बावल निजामत मे मेवाती का प्रयोग किया जाता है और यहाँ की मेवाती 'बिधोता की बोली' कहलाती है।[50] इम्पीरियल गजेटियर[51] एव तिजारा के रफ गजेटियर[52] मे भी यही मत मान्य है। वर्तमान मे मेवाती की सीमा इस प्रकार है—'हरियाणा, जिला गुडगांव की तहसील फिरका-फिरोजपुर एव नूह, उत्तर प्रदेश के जिला मथुरा की कोसी एव छाता तहसीलो का पश्चिमी अचल, राजस्थान के जिला अलवर की रामगढ़, तिजारा, किशनगढ, अलवर, लक्ष्मनगढ, गोविन्दगढ तहसीलें तथा जिला भरतपुर की कामा, डीग (पश्चिमी भाग), नगर (पश्चिमी भाग, पहाडी क्षेत्र) तहसीलें आती हैं।[53]

मेवाती-वक्ता

सन् 1901 की जन-गणना के आधार पर मेवाती भाषियों की संख्या 5 92,498 थी।[54] जो इस प्रकार है—

राजपूताना	—	4,78,756
पजाब	—	1,10,409
मध्यभारत	—	3,147
अन्यत्र	—	186
योग		5 92,498

डा० ग्रियर्सन के अनुसार पूर्वोत्तरी राजस्थानी (मेवाती–अहीरवाटी) में वक्ताओं की संख्या 15,70,099 थी, जिसमें मेवाती बोलने वाले 11,21,154 थे[55]। इनमें राजपूताना के जिला अलवर में 7,58,600 भरतपुर में 80,000 कोटकासिम (तब जिला जयपुर में) 17,054 तथा पंजाब के जिला गुड़गाँव में 2,45,500 एवं बावल (नाभा) में 20,000 मेवाती भाषी थे।[56] डा० भोलानाथ तिवारी मेवाती के वक्ताओं की कुल संख्या (डा० ग्रियर्सन के आधार पर) 7,58,600 बताते हैं। जबकि इतने वक्ता तो अलवर ही में बताए गये हैं। अन्यत्र मेवाती के वक्ताओं की संख्या क्या थी, यह संभवतः डा० तिवारी भूल गये हैं।[57]

सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने के साथ ही साथ एक नया मुस्लिम राष्ट्र विश्व में और उभर आया। वह है पाकिस्तान। पाकिस्तान के निर्माण के बाद मेवात से लाखों की संख्या में लोग इस प्रदेश को छोड़कर पाकिस्तान चले गये। यह क्रम बहुत बाद तक जारी कहा जा सकता है। निदान मेवाती के वक्ताओं की संख्या में भी कमी आनी निश्चित थी। 1951 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में मेवाती वक्ताओं की संख्या 1,08,107 रह गई थी।[58] जो पूर्व जनसंख्या से कितनी ही कम है और सन् 1961 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार तो यह संख्या और भी कम हो गई। अब यह केवल 48,427[59] लोगों की बोली रह गई है। यदि अहीरवाटी वक्ताओं की संख्या भी इसी में मिला ली जाए तो यह संख्या बढ़कर 69,536 हो जायेगी। इसका कारण यह है कि सन् 1908 में इस प्रदेश की राज्य-भाषा हिन्दी (खड़ी बोली) घोषित[60] हो जाने से, पढ़े-लिखे समाज का ध्यान उधर होना स्वाभाविक ही था। परिणामतः लोक-भाषा मेवाती के वक्ता केवल अनपढ़ या ग्रामीण समुदाय तक ही सीमित रह गये। सन् 1961 की जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार अलवर जिले में मेवाती और अहीरवाटी वक्ताओं की संख्या क्रमशः 17050 एवं 16609 थी जो 1971 तक और भी कम हो गई है।

☐ सीमा-बोलियाँ

डा० ग्रियर्सन के अनुसार 'मेवाती' के पूर्व में भरतपुर तथा पूर्वी गुड़गाँव की ब्रजभाषा है। दक्षिण में जयपुरी की डाँग उपशाखा है। उत्तर में पश्चिमी गुड़गाँवा की अहीरवाटी है। दक्षिण-पश्चिम में जयपुरी की तोरावाटी उपशाखा तथा उत्तर पश्चिम में पटियाला की नारनौल निजामत की मिश्रित बोली है।[61] श्री किफायतुल्ला सद्दिकी का कहना है कि 'मेवाती जुबान रियासत अलवर, भरतपुर, जिला गुड़गावा की तहसीलात नूह व फिरोजपुर-झिरका में बोली जाती है। गुड़गाँव के मगरबी हिस्से पटौदी व जिला देहली में इसकी बोली अहीरवाटीराइज है।[62] डा० मोतीलाल मेनारिया के अनुसार इस भाषा-क्षेत्र के उत्तर में बाँगड़ू, पश्चिम में मारवाड़ी एवं ढूँढाड़ी,

मेवाती का उद्भव और विकास

मेवाती बोली-क्षेत्र, उपबोली एव सीमा-बोलियाँ

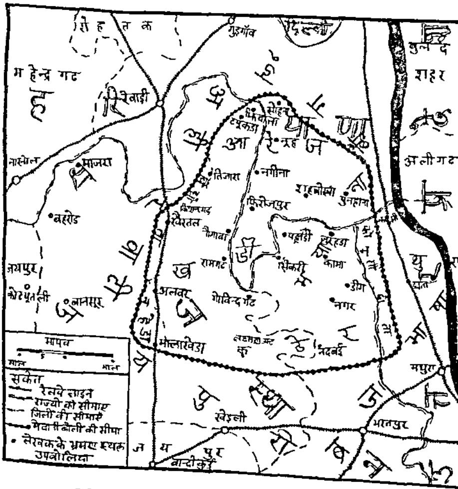

[मेवाती बोली क्षेत्र मे किये गय क्षेत्र कार्य के आधार पर]

दक्षिण म डांगी और पूर्व मे ब्रजभाषा का प्रचार है।[63] डा० हरदेव बाहरी लिखते हैं कि—'शुद्ध मेवाती अलवर, भरतपुर के उत्तर पश्चिम और गुड़गांवा (पंजाब) के दक्षिण पूर्व मे बोली जाती है। इसकी एक सीमावर्ती उपबोली अहीरवाटी है जिस पर हरियानी का प्रभाव अधिक है।'[64]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मेवाती के उत्तर मे हरियाणी (बांगड़), दक्षिण मे डांगी (ढूँढारी) पूर्व मे ब्रज तथा पश्चिमी मे अहीरवाटी, शेखावाटी बोलियो का प्रचार है।

☐ **मेवाती भेद** 'पाच कोस पर पानी बदले, सात कोस पर बानी' राजस्थानी का एक दोहा है—

'बारे कोसा बोली पलटे बनफल पलटे पाका।
बरस छतीसा जोवन पलटे लखण न पलटे लाखा।।'

डा० मगल देव शास्त्री के अनुसार 'काल-भेद से भाषा-भेद को सिद्ध करन के लिए हमे प्राचीन लेखो की आवश्यकता होती है, परन्तु स्थान-भेद से भाषा म भेद हो जाता है, इस बात को देखने के लिए हमे प्राचीन लेखो की अपेक्षा नही होती। यदि हम कोष और व्याकरण को, जिनका सबध सर्व साधारण की भाषा स नही होता, एक तरफ रखकर सर्वसाधारण की नित्य बोलचाल की भाषा को ध्यान से देखें तो हमको उसमे अनेक स्थानीय भेद प्रतीत होंग। अपने आसपास के दो-चार जिलो की सर्वसाधारण की भाषाओ की तुलना करने से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। प्राय. देखा जाता है कि उच्चारण या लहजे की थोडी विरूपता या किसी विशेष शब्द या वाक्याश के प्रयोग से वक्ता का जिला ही नही किन्तु कभी नगर भी ज्ञात हो जाता है। प्रान्त का जानना तो कोई विशेष बात नही'।[65]

डा० शास्त्री का यह कथन नितान्त सत्य है। कम स कम मैं यह कह सकता हूँ कि मेवाती के सम्बन्ध मे यह बिल्कुल सत्य है। मवाती स्वय एक सीमावर्तिनी बोली है, जो हरियाणी, ब्रज, डांगी एव शेखावाटी बोलियो स घिरी है। डा० ग्रियर्सन क अनुसार[66] मेवाती एक सीमा भाषा है। यह उस राजस्थानी का प्रतिनिधित्व करती है, जो क्रमश: हिन्दी की ब्रजभाषा शाखा म मिलती जाती है। स्थान स्थान पर इसमे वैभिन्न दृष्टि-गोचर होता है। अलवर म ही इसक चार उपभेद हैं

1–खडी मेवाती,	2–राठी मवाती,
3–नहेड़ा मेवाती,	4–कठेर मेवाती।

परन्तु जैसा कि डा० ग्रियर्सन ने कहा है—ये अलवर जिल की बोली के ही स्थानीय भेद है, सम्पूर्ण मेवात प्रदेश की बोली के नही। इस वर्गीकरण म स्पष्टत

की विस्तृत सीमा का आकलन नही हुआ है। अतः भाषावैज्ञानिक दृष्टि
ी के निम्नलिखित भेद किए जा सकते हैं—

मेवाती का यह स्थानीय रूप भरतपुर के उत्तर पश्चिम तथा अलवर के
पूर्व म बोला जाता है। यह क्षेत्र काठेड या काठेर कहलाता है। इसकी
पूर्वी सीमा मे लगी काठेरी ब्रजभाषा से यह अत्यधिक
5 र मेवाती प्रभावित है। साथ ही दक्षिणी सीमा पर यह काठिरा
या काठेडा जयपुरी मे प्रभावित कही जा सकती है।
01 म इसके वक्ताओ की सख्या 1,13 300 थी।[67] इसकी अपनी कुछ
ज्ञानिक विशेषताए है। इसके उत्तर-पश्चिम क्षेत्र म 'न' के स्थान पर 'ण
का प्रयोग होता है। 'मुझको' 'तुझको' तथा 'इसका' सर्वनामो के स्थान पर
मोकू', 'तोकू', तथा 'याकू' का प्रयोग होता है। 'तुमने' के स्थान पर 'तैंन'
मको' की जगह 'कूण कू' का व्यवहार भी होता है। अन्य सर्वनामो मे ई, यू
, यासू (इसस), वाको (उसका), जा (जिस), याय (इसे), तोय (तुझे),
तुम्हारी), अपणा (अपन), उनकू (उनको), मे (मैं), उन (उसने), उनको
।), तू, उ (वह) आदि का प्रयोग होता है। कर्म कारक म 'कू', करण
म 'सू', सम्प्रदाय मे 'कारणै', अपादान म 'सू', अधिकरण मे 'पै', तथा
ध कारक मे का, के, की विभक्तियो का प्रयोग होता है। सहायक क्रिया के
न काल मे 'है', भूतकाल मे 'हो', भविष्य काल मे ग' रूप प्रचलित हैं।
। इसकी दक्षिणी-पूर्वी सीमा जयपुरी से अत्यधिक प्रभावित है। सहायक
मे जयपुरी (ढूंढारी) का छै' रूप ही प्रचलित है। मारवाडी की रा-रे री
क्तियो का भी प्रयोग होता है। साथ ही खडी बोली का 'का, के, की' का भी
न है। आप' के लिए 'थारो' तथा 'हमारे' के लिए' हमारो' रूप प्रयुक्त
हैं। बहुवचन मे 'अन' प्रत्यय का प्रयोग होता है। यह ओकारान्त बोली है।
नमूने दृष्टव्य हैं—

) जोवन मे चकनाचूर रूप ज्वानी को आयो।
सदा लाडली रही प्यार माता का छायो॥
जा दिन तू पैदा हुई दई हवेली मेल।
बारह बरस की सोहनी लैण लदाई तेल॥
सूंत-र बांधू केस देस पीया के जाऊँ।
जाऊँ सूरत देख बगद जाणे कद आऊँ॥
कालो कालो काग सो वासक के उणिहार।
या बेला मे घालदे तू सुन ले सीबा साऊकार॥

तेरा गोणा का दिन आ लगा सुणा ना सोहणी नार।
लेके बेलो हात मे घी सू भर दियो सीक उतार ।।

तू कद की गई बजार कहा तू कर री करणी ।
तेरे लग जावे टपकार अन्त तू चन्दा बरणी ।।
—चौ० सुमेर, सीकरी, दिनांक 29-9-67

(2) माजा धोया थाल परोस दिया भात जी,
जीमो जीमो रूप नारायण जी बताओ थारो गोत जी,

बाप हमारो डेढ डूम माय छ छिदालण जी,
भूवा हमारी भगतण भडुवारे साथ जी,

चारो भाई सार सार बहन छ दुहालण जी,
याल्यो जी साला जी हमारा दादा जी रो गोतजी।
—राजबाई शर्मा, कन्या पाठशाला, मालाखेडा 20-2-1954

☐ भयाना मेवाती

मेवाती का यह रूप तहसील कामा के दक्षिण जुरहेडासे लेकर होडल तक प्रचलित है। यह क्षेत्र भयाना कहलाता है, इसी नाम से इस क्षेत्र की बोली का नामकरण किया गया है। जिला मथुराकी कोसी और छाता तहसीलो मे प्रचलित ब्रजभाषा की ठाडी बोली का इस पर प्रभाव है। मथुरा जिले के हाथिया, जघावली, साचौली, करहारी, पैंगरी, जलालपुरा, दानाना हमामखा का नगला आदि स्थानो मे यही बोली बोली जाती है। इसमे कही-कही हरियानी का भी प्रभाव देखा जा सकता है। इसकी ध्वन्यात्मक विशेषताओं मे 'ण' का प्रयोग सर्व प्रमुख है। जैसे— कौण-कौन, ठिकाणो-ठिकाना। 'ड' का प्रयोग भी इसकी विशेषता है जैसे दिवाडी (दिवाली), साडा (साला), साडी (साली), हड (हल), गडा (गला), बाडक (बालक)। क्रिया का 'रां' रूप प्रचलित है। जैसे - बोलरां, मागरां, पूछरां आदि बहुवचन का 'अन' और 'आं' दोनो रूप प्रचलित हैं। घोडन, हुयां (हुए), *क्रिया वि० मे ही, हीन (यहां), हूं, हूंन (वहां), कदी (कभी) का प्रयोग होता है।* करणकारक मे 'सूं' कर्म मे कू, लू मोकू, मोलू प्रचलित हैं। भूतकालीन सहायक क्रिया मे 'हो' भविष्य मे-ग रूप वर्तमान मे 'है' यहां भी प्रचलित है। इसमे कहीं-कही ब्रज के 'र' का 'ल' हो जाता है तथा क्रिया मे ऐकारान्त प्रयोग देखने मे आते हैं। अन्य विशेषताए कठेरी मेवाती जैसी ही है।

'लकडहारे का लडका हो। वो दो टका की लकडी रोजाना बेचे करे हो। कोई रोज बेचतो रहो। वो अपणी मा सू बोलो कि बिर माई अब तो लकडी-पकडो

बिके नाय । अब तो क्हो मैं भगू गो ही सू । ना बेटा ऐसा काम मत करियो । मेरे बू एक तो बेटा । तू भी भग जायगो तो मैं कौए कू देखूंगी । जितना की बिके लक्डी उतना की, गुजर कर लू गी । ऊ बोलो बिर मा,

बोली का नमूना

तेरे नाव तो बिर ग्राध टका की लक्डी बिकें हैं ग्रर ग्राधा टका की दर्जी कू दियावें है ग्रौर पहरवा कू तीन कपडा लियावें है । वानें कहो दर्जी नें कें मई तू रोजाना ले जावो कर । एक सेट बोलो वासू । भई मेरे घोडा पाणी पा लाया कर रोज । व्हाने सेट सू कही कुछ पैसा-धेला तें कर ले । ऊ सेठ ने कही चलो एक टको रोजाना दे दिया करगा । तो ऊ घोडा कू पाणी प्याए चले है दुपहर कू ।' —मोहम्मनदयामी, जुरहेडा, 26-9-67

इसका क्षेत्र उत्तर मे गुडगाव जिले की दक्षिणी तहसील नूह, फिरका-फिरोजपुर, पश्चिमी तहसील रिवाडी, तथा जिला महेन्द्रगढ की तहसील नारनौल तक विस्तृत है। उत्तर मे यह दिल्ली की सीमा को

ग्रारेज मेवाती

छूती हुई बांगरू मे मिल जाती है। मेवात की राजनीति की तरह मे यहां की बोली ने भी दिल्ली की बोली का प्रभावित किया है। श्री किफायतुल्ला सद्दिकी के ग्रनुमार 'कदीम उर्दू मे मेवाती ग्रल्फाज की मौजूदगी इस बात की दलालत करती है कि दिल्ली की नवाही बोली मेवाती का ग्रसर दिल्ली की जुबान पर पडा।"[68] रिवाडी की ग्रहीरवाटी बोली मे ग्रौर ग्रारेज मेवाती मे ग्रद्भुत साम्य है। गुडगावा के गजेटियर मे इसे मेवाती हिन्दी कहा है।[69] डा० ग्रियर्सन के ग्रनुमार गुडगांव मे 2,45,500 मेवाती वक्ता थे।[70]

इसमे 'ड', 'ड', तथा 'ल्' ध्वनियो का प्रयोग होता है। प्रमुख विशेषता पूर्वकालिक क्रिया का रूप-'करहनी' (करके) है। प्रश्नवाचक 'क्या' के स्थान पर 'कहा' का प्रयोग होता है। वर्तमान मे क्रिया के एक वचन मे ग्रोकारान्त तथा बहुवचन मे ग्राकारान्त रूपो का प्रयोग होता है। सर्वनामो मे मैं, हम, तू, तिहारी तम, ऊ, तें ग्रादि रूप प्रचलित हैं। ग्रारेज मेवाती की कुछ विशिष्ट शब्दावली भी द्रष्टव्य है, यथा—हीन (यहाँ), हून (वहाँ), हू (वहा), की (क्यो), के (कि), इतकू (इधर), उतकू उधर), महडी (छाछ), गजी (गुड एव चावल की खिचडी), गिदावडा (पर्वत के पास की कटी भूमि), वाल (पर्वत की तलहटी), हम्बे (हाँ।

एक गादड हो। एक ऊट हो। दोनूं वाडी मे ग्रारिया खाए कू गये। वाडीवालो सो रह्यो हो। दोनू के दोनू वाडी मे घस गये। थोडी देर मे गादड बोलो वाडी मैं तो धाप गयो। मोहे तो हुक-हुकी ग्रा रही है। ऊंट बोलो यार (वाडी) मैं धापो ना हूं। ग्रमी तू हुक-हुकी मत कर। मैं भूखो रह जाऊगो।

गादड ना मानो। जोर सू हूकी-हूकी कर दी। बाडीवाले की आँख खुट गई अर माटो सो डण्डा लेकर बाडी मे भगो। गादड तो भाग गया, ऊँट बाडीवाले लातो पायो। बाडीवाले ने ऊट नैं घे लाठी घें लाठी वा की कमर

बोली का नमूना

सूदी कर दी। थोडी दूर जाकर राम्ते मे एक नदी पडे ही गादड हूँ बैठो पायो। ऊँट भी बिचारो पिटपिटाकर नदी क पिए जा पहोंचो। गादड कहण लागो मामा आ गयो का। कै भाई तू तो एक आरिया खाकर भगो। गादड ने खई मामा मोहे अपनी कडी पै बिठा दें नदी मे पाणी घणोगोइ है। अपनी कडी पै बिठा के पार कर दे। ऊँट ने कही अच्छा बाडी बैठजा। गादड फुदक कै चढ गया। जब ऊँट नदी मे पहोंचो तो गादड सू कहण लगो– कै बाडी मोहे अब लुटलुटी आ रही है। तोहे बाडी मे हुक-हुकी आ रही ही। मैं तो लोट मारू हूँ। गादड न कही अरे मामा मैं डूब जाऊंगो। ऊँट ने कही कै मामा जब तैंने हुक-हुकी करी बाडी नैं मैं बी तो सुजा दियो। मै बी लुटलुटी करू गो। इतना कहकर ऊट भट्ट गोल मार गयो। गादड बह गयो पाणी मैं। देखो बालको नेकी का बदला नेकी है अर बदी को बदलो बदी है। तम कोई कै साथ ऐसा बदमलूक मत करियो।

—श्री गोरखा, ग्राम शाहचोखा तह० फिरोजपुर (गुडगावा)

नहेड़ा मेवाती

यह नहेडा क्षेत्र की बोली है। यह थानागाजी, प्रतापगढ, अजबगढ, बल्देवगढ आदि स्थानो मे बोली जाती है। इसका एक रूप वाल भी कहलाता है। इस पर जयपुरीबोली का प्रभाव देखा गया है। भाषा-सर्वे मे इसके बोलने वालो की सख्या लगभग 1,69,300 बताई गई है। नहेडी की ध्वन्यात्मक विशेषताओ मे कण्ठ्य स्पर्श का महाप्राण स्पर्श होना, महाप्राण स्पर्श का कण्ठ्य स्पर्श होना, तथा व का म होना प्रमुख हैं। करण कारक मे 'सू' अधिकरण मे 'मे' विभक्तियों का प्रयोग होता है। सवनामो मे मैं तू एव वा रूप प्रचलित हैं। क्रिया का ओकारान्त प्रयोग होता है। नमूने के लिए कुछ वाक्य देखिये—

बुढा सू ख जाय।
यहाँ सू ई बखत गयो वा।
मैं ममेरा को डोल रह्यो हू वाकी तलास मे।
मूक जा बाद्यो।

डा० ग्रियर्सन ने मेवाती को बीघोता की बोली भी कहा है। यह अलवर के उत्तर पश्चिम मे जयपुर राज्य के कोटकासम तथा नाभा राज्य के बावल तहसील के क्षेत्र मे बोली जाती है। इसके वक्ताओ की सख्या 37,054 है।[71] लेकिन

साथ ही इस पर अलवर के पास की राठी मेवाती का प्रभाव भी स्पष्ट है। मर विचार से बीघोता और राठी मेवाती मे कोई विशेष अन्तर नही है। यहाँ के शासव

□ बीघोता मेवाती

चौहान वशी पृथ्वीराज के वशज थे। इस क्षेत्र के मण्डावर तथा नीमराना[72] के ठिकानो पर उन्ही का आधिपत्य था। बीघोता और राठी मेवाती एक ही है। इनकी सम्मिलित सख्या 2,59,254 है। इस तरह बावल, कोटकासम, सैंरथल बहरोड, मु`डावर, करनीकोट, नीमराणा, हरसोली, जोन्दोली, बानसूर तथा रामपुर आदि स्थान इसकी सीमा मे आ जाते है। रै० मैक्लिस्टर[73] महोदय न सर्वप्रथम इसके सक्षिप्त व्याकरण पर प्रकाश डाला था। बाद मे डा० ग्रियर्सन न भी एक परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया था। यहाँ की 'न' 'ड' तथा 'ल' ध्वनिया प्रचलित हैं।

बीघोता मेवाती की कुछ व्याकरणिक विशेषताएँ इस प्रकार देखी जा सकती हैं। इसमे सज्ञाएँ प्रायः ओकारान्त होती हैं। जैसे पोनो, छोरो, आदि। सर्वनामो मे मैं, हम, हमा, तू, तुम, तम, थम, यो, ऐन, इनने, बो, वो, उनने, जो, ज्हैने जिनन, कीएा, कहने, के, क्याने आदि। सार्वनामिक विशेषणो मे इतनू (इतना) उतनू बितनू, जितनू कितनू, ऐसो, वैसो, कैसो, कैसोक, जैसो, दोनू, बिराणू आदि का प्रयोग होता है। सहायक क्रिया का वर्तमान कालिक रूप प्रथम पुरुष मे हू, हा मध्यपुरुष मे है, हो तथा अन्यपुरुष मे है, हैं प्रयुक्त होता है। भूतकाल मे हो, हा का प्रयोग होता है। भविष्यत् काल मे ग रूप ही सर्वत्र प्रचलित है। क्रिया-विशेषणो मे इत (यहाँ), उत, ऐठे ऊठे वंठ्ये, ऊठ्ये, जित, कित, न्यू, नू, नाय कैहन्दा, ऐंहन्दा, दोनू ओडाने, चोगउदा, चोफेरै, पराने, उराने, मंज संज, सकाले, परसू, परलेदिन, आदि का प्रयोग होता है। उपसर्गो मे गैल (साथ), आटे (लिए), ओडी, वानी (तरफ) आदि का भी प्रयोग होता है। 'कि' के लिए 'के' तथा 'अक' का प्रचलन है।

एक राजा का महल के माय घूसली थो। चिडिया रह्यो करती वेंह कै माय। एक दिन चिडिया बाहरनै निकली। बेहनै एक पैसो पायो। सो वो फेर

◻ बोली का नमूना

अपणा घूसला मे ले गई। सो कह्यो करती मेरे कनै पैसो, मेरे कनै पैसो। राजा बोल्यो सिपाइयाँ नैं अक ऐहको घूसलो खोस गेरो अर पैसा ने काढल्यो। सिपाइयाँ नै वैंहको घूसलो खोस गेर्यो अर पैसा काढलियो। चिडिया उड गई बाहर नै। चिडिया कहण लागी कै राजा कगाल मेरो पैसो ले लीयो राजा कगाल मेरो पैसो ले लीयो। सो रोजीना कह्यो करती। सोवण नाय देती। तो फेर

राजा ने वो पैसो दे दीयो। फेर बोली के राजा डरपोक मेरो पैसो दे दीयो, राजा डरपोक मेरो पैसो दे दीयो। फेर मरवा गेरी।[74]

खड़ी मेवाती केन्द्रीय मेवात की बोली है। इसका केन्द्र जिला अलवर है। अलवर गजेटियर (1968), पृ० 123 के अनुसार 1961 ई० मे मेवाती वक्ताओ की संख्या 17050 थी। अलवर जिला मे कुल 12 तहसीलें है इनमे अलवर, किशनगढ, रामगढ, तिजारा, गोविन्दगढ तथा लक्ष्मणगढ केन्द्रीय मेवात के अन्तगत आती हैं। गुडगावा की तहसील फिरका-फिरोजपुर का दक्षिणी भाग तथा भरतपुर जिले का पहाडी का भाग भी इसी की सीमा मे है। जिला अलवर मे कुल 1503½ गाव हैं, जो विभिन्न जातियो एव वर्गों के हैं। इनमे से 480 गाव मेवो के हैं तथा बाकी इतर वर्गों के।[75] इस तरह यहाँ की मेवाती के दो रूप हो जाते हैं—

□ **खड़ी मेवाती**

1 मेव-मेवाती,

2 ब्राह्मणी-मेवाती।

मेव मेवाती के अन्तर्गत मेव, खानजादा, सैय्यद आदि मुस्लिम जातियाँ आती हैं जबकि ब्राह्मणी-मेवाती मे राजपूत, ब्राह्मण, अहीर, गूजर, जाट, मीणा आदि इतर वर्ग आते हैं। दोनो विभेदो मे कोई विशेष अन्तर नही है। केवल लहजे का फर्क है। मेव-मेवाती में अरबी-फारसी की शब्दावली मिश्रित है, जबकि ब्राह्मणी-मेवाती म भारतीय भाषाओ (सस्कृत पालि, प्राकृत, अपभ्र श) की शब्दावली मिश्रित है। मुख्य रूप से अन्तर कर्मकारक की विभक्ति को लेकर है। बाकी सभी विशेषताएँ समान है। उदाहरण के लिए—

□ **मेव-मेवाती** नू लू कहा जा रो है। तोलू मैंने कही ही। (*इधर कहाँ जा रहा है। तुझको मैंने कहा था*)

□ **ब्राह्मणी-मेवाती** नू कू कहा जा रो है। तोय मैंने कही ही।

लेकिन शिक्षा के प्रचार के साथ ही साथ 'नू' और 'लू' बोली का भेद मिटता जा रहा है। दोनो मे एक साथ नू और लू का प्रयोग देखा गया है। यह मेवाती का शुद्ध तथा स्वतन्त्र रूप है। भाषा-सर्वे के अनुसार इसके वक्ताओ की सख्या 2, 53 800 है। इसमे अपार लोक साहित्य है। इसकी कुछ ध्वन्यात्मक विशेषताएँ इस प्रकार देखी *जा सकती हैं। अ स्वर ध्वनि का खड़ी मेवाती मे* क्रमश आ, इ, उ, स्वर ध्वनियो मे परिवर्तन हो जाता है, यथा—

सूर > सूरा, हस > हसा, मोर > मोरा, भ्रमर > भवरा, जलूस > जिलसा, जना > जिना, जहान > जिहान, खजूर > खिजूर, सरकारी > सिरकारी, नकुल > नुकल

सम्मुख>सुनमक, जबान>जुबान। हिन्दी (खडी बोली) की समस्त आकारान्त संज्ञाएँ खडी मेवाती मे ओकारान्त बन जाती हैं, यथा—भेडियो, घाणो, विटोडो, घेनो, भूको, मेणों, पालो, भैंसो, पड्डो, बछडो, कागलो आदि। यही नही भूतकालिक आकारान्त क्रियाए भी खडी मेवाती में ओकारान्त हो जाती है, यथा—चला>चलो मरा>मरो, गया>गयो, पकडा>पकडो, आदि। इ का ए, ऐ मे परिवर्तन भी दृष्टव्य है, यथा नियम>नेम, मीणा>मेणा, मेणो, । उ का अ मे परिवर्तन हो जाता है — चतराई, (चतुराई), नुकल, दादर, जेवर, नकीली, कछ (कुछ), असर (असुर), वासक (वासुकी), आदि। संस्कृत की ऋ स्वर ध्वनि का खडी मेवाती मे इ या इर हो जाता है, यथा—मृग>मिरग, शृंगार>सिंगार, शृंग>सीग आदि।

खडी मेवाती मे प्रायः समस्त अल्पप्राण व्यजन ध्वनियाँ महाप्राण मे परिवर्तित हो जाती हैं। साथ ही कभी-कभी इसके विपरीत भी देखने को मिलता है। हिन्दी की व्यजन-ध्वनि अनुनासिक अल्पप्राण वत्स्यं 'न' का मेवाती मे अनुनासिक अल्पप्राण मूर्द्धन्य 'ण' पार्श्विक अल्पप्राण, वत्स्यं ल' स्पर्श, अल्पप्राण, दन्त्य 'द' तथा कण्ठ्य, 'ड' के रूप मे परिवर्तन हो जाता है। अन्य ध्वनियो मे म का व, य का इ, ज, व तथा ह, र, का ड एव ल, ल का र, ल, व का उ, ऊ, ओ, औ, व, भ, म तथा श, ष का स रूपो मे परिवर्तन हो जाता है।

हिन्दी की सयुक्त व्यजन ध्वनि स्क, स्म, स्त, स्व का ख तथा सु रूप मे तथा क्ष का क, ख रूप मे परिवर्तन भी दृष्टव्य है। शब्द रूपो मे द्वित्व की प्रवृत्ति देखने मे आती है। यथा—आकाश>अग्गास, जिला>जिल्ला, छनांग>छग्गाल, जगह>जग्गा आदि। खडी मेवाती की कुछ शब्दावली सम्बन्धी विशेषताओ को इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं। यहाँ की बोली मे काँई, का व्यवहार क्या' के लिए होता है। साथ ही 'कहा' रूप भी प्रचलित है। 'ल' का 'ड' उच्चारित होता है। जैसे भोलानाथ को भोडानाथ' कहते सुना गया है। इतलू (इधर), उतलू (उधर), घूपरलू (दोपहर के बाद), डेरेई (प्रातःकाल), मलूक (सुन्दर जवान), माणस (मनुष्य), ल्हासो (घाघरा), पणह (जूनी), पँ (समीप) आदि शब्दो का विशेष प्रयोग होता है।

1. बोली का नमूना

कठ भोटणियाँ सँवत पडगो मरजी है करतार की।
धरती का रूखडा सूखगा, ग्राँमर लीलो चच्च है।
घणो अबीडो औसर दखियो, अबकल सबकी जच्च है।
घच्च मलीदो हवा हो गयो है, टूकन का भी लाला है।
चणा कुटकबा कु न रहा है, कैसा मरम निवाला है। [78]

पहले बताया जा चुका है कि ब्रज, बाँगरू, अहीरवाटी तथा जयपुरी मेवाती की सीमा-बोलियाँ हैं। डा० ग्रियर्सन का कहना है कि मेवाती एक सीमा बोली हैं।

▢ **मेवाती-सीमाबोलियाँ** यह ब्रज भाषा में अन्तर्भुक्त हो
प्रतिनिधित्व करती है। उनके श

"It is the form of Rajasthani which agrees western Hindi,—the purest representative of the

▢ **मेवाती और ब्रज**

some people maintain that the language and not o admitedly an intermediate and the point is not one of great importance, but must be classed under the later language"[77] अ हैं कि 'Mewati itself is a border dialect It repr fading of in the Brijbhasha dialect of Hindi'[78]

डा० सुनीति कुमार चटर्जी लिखते हैं कि 'अहीरवाटी, ये पछाँही हिन्दी से ज्यादा सम्पर्कित है या खास राजस्था चरम निष्कर्ष अब तक नहीं निकला है। राजस्थान की बोलि बोली का गहरा प्रभाव बहुत प्राचीन काल से पड़ता आता है।

इम्पीरियल गजेटियर मे लिखा है कि 'In Alwar, the spoken are Hindi and Mewati, the later being one groups of Rajasthani'[80] डा० धीरेन्द्र वर्मा[81] तथा डा का कहना है कि 'इस पर ब्रज भाषा का प्रभाव बहुत अधिक दे डा० श्यामसुन्दरदास के अनुसार 'मेवाती ब्रज-भाषा से बहुत मि

विद्वानों ने मेवाती को ब्रज भाषा से प्रभावित मा राजनीतिक स्थिति प्राचीन काल से ही उलट-फेरों से व्याप्त उदण्ड मेव दूर-दूर तक लूट पाट करते रहते थे। रसनिधि मन की पुष्टि करता है—

'छवि-बन मे दौरन लगे जब ते नव दृग मे
तब ते कढ़ै सनेहिया मन छन ले के छे

इस प्रकार यह कहना कठिन हो जाता है कि किसन नि किया? १६वी सदी के आस-पास विभिन्न बोलियाँ अपना स्व थी। इस समय तक राजनीतिक दृष्टि से मेवात की सीमा जाती थी। वि० स० 1639 की एक हस्तलिखित रचना म प्रकार मिलता है—

मीत्र मेव की मथुरा पार, बावह मेलि न सकई वार।
खेत चढ़े नर देह न जाणु, मानीह मुगल मेव की काणि।[85]

साहित्य के क्षेत्र मे सम्पूर्ण राजस्थान मे व्रज-भाषा का प्रचलन था। डा० सत्येन्द्र के अनुमार 'धौलपुर, भरतपुर, जयपुर, अलवर और किशनगढ आदि अधिकांस क्षेत्रो की भाषा मूलत व्रज भाषा ही है। अत इस प्रदेश के प्राय सभी कवि व्रज म ही रचना करते रहे।'[86] श्री सीताराम लालस का कहना है कि 'मेवात मे कुछ कवि व साहित्यकार अवश्य मेव हुए हैं परन्तु उनकी रचना मेवाती मे नही है। उनकी रचना प्राय व्रज-भाषा मे है।'[87] परन्तु डा० भोलानाथ तिवारी के अनुमार 'मेवाती पश्चिमी हिन्दी के निकट होते हुए भी राजस्थानी की ओर मुकी है। अत इसे राजस्थानी के अन्तर्गत ही रक्खा जा सकता है। इस सम्बन्ध मे डा० चटर्जी के सदेह के लिए पर्याप्त आधार नहीं दिखता।[88] इन दोनो के ध्वनियो मे पर्याप्त अन्तर है। अत यह व्रज से पृथक सधिस्थल की एक स्वतन्त्र बोली है। यद्यपि मेवाती का व्रज-भाषा से कई रूपों मे साम्य है फिर भी व्याकरणिक ढांचा अन्तर लिए हुए है।

☐ अन्तर—

(क) व्रज-भाषा मे प्राय 'ण' का प्रयोग नही होता परन्तु मेवाती में इस ध्वनि का प्रयोग स्वरमध्यवर्ती अथवा अन्त्य रूप मे होता है।

(1) ध्वन्यात्मक यथा—जिठाणी (जेठानी), कामण (कामिनी), काहाणी (कहानी), करणी (करनी)।

(ख) व्रज भाषा के 'ल' और 'र' के स्थान पर मेवाती मे 'ड' का प्रयोग होता है।

व्रज-भाषा	मेवाती	हिन्दी
महरि	महडि	छाछ
हरण	हडण	हरना
थारी	थाडी	थाली
दिवारी, दिवाली	दिवाड़ी	दीपावली
महर	महड	गृहस्वामी
सियार	स्याड	शियार
सारी, साली	साडी	साली
लरिका	लडको	लडका

(ग) व्रज-भाषा के 'ल' अथवा 'र' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग होता है। यथा—

व्रज-भाषा	मेवाती	हिन्दी
बालक	बा ळो, बालक	बालक

ब्रज-भाषा	मेवाती	हिन्दी
उतावरी	तावली	उतावलो
सगरी	सगली	सकल
न्यारा	न्याला	अलग

(2) **क्रिया संबधी**—(क) ब्रज-भाषा मे 'रहे' लगाकर सयुक्त क्रिया बनाई जाती है जबकि मेवाती मे 'रों' लगाकर । यथा—

ब्रज-भाषा	मेवाती	ब्रज-भाषा	मेवाती
खारहे	खारौं	माँगरहे	माँगरौं
बोलरहे	बोलरौं	कहरहे	कहरौं

(ख) ब्रज-भाषा मे भविष्य आज्ञावाचक मे 'ईयो' अथवा 'ईओ' प्रयुक्त होता है, मेवाती मे उसके स्थान पर 'आयो' अथवा 'आयौं' का प्रयोग होता है । यथा—

ब्रज-भाषा	मेवाती	ब्रज-भाषा	मेवाती
जईयो, जईओ	जायो, जायौं	अईओ, अईओ	आयो, आयौं

(ग) ब्रज-भाषा मे भूतकालिक सहायक क्रिया के एक वचन मे 'आ' या 'औ' का प्रयोग होता है जबकि मेवाती मे 'हो' का । मैं हो > मैं था ।

(घ) ब्रज-भाषा मे क्रिया का भूतकालिक कृदन्त एक वचन मे औकारान्त तथा बहु वचन मे एकारान्त होता है जबकि मेवाती मे एक वचन मे 'औ' एव बहुवचन मे 'आँ' प्रत्ययो का सयोग होता है । यथा—

ब्रज-भाषा (ए व)	मेवाती (ए. व)	ब्रज-भाषा (ब व)	मेवाती (ब व)
हुयौ–हुवौ	हुयौं	हुये–हुवे	हुयौं

(ङ) सज्ञा के रूप ब्रज-भाषा मे 'औ' और 'ए' प्रत्यान्त होते हैं जबकि मेवाती म 'ओ' आंकारान्त होते हैं, कभी-कभी आंकारान्त भी होते है । यथा—

ब्रज-भाषा (ए व)	मेवाती (ए ब)	ब्रज-भाषा (ब व)	मेवाती (ब. व)
तेरौ छोरौ	तेरो छोरो	तेरा छोरौं	तेरा छोरा, छोरौं

(3) क्रिया विशेषण—इस दृष्टि से मेवाती ब्रज से काफी भिन्न है । यहाँ इनका सक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

(1) स्थानवाचक—हू, हून (वहाँ), ही, हीन (यहाँ), हूनी (वही), हीनी (यही), उरे (यहाँ), परे (वहाँ, दूर) ।

(2) कालवाचक— कदे, कदी (कभी), धेरे (प्रातः), बँ (बार), कद (कब), अबके (अबकीबार) ।

(3) दिशावाचक— उरलू (इधर को), उतलू (उधर को), ओड (तरफ), क्तिलू, कितकू (किधर को), हूलू (उधर को), हीलू (इधर), ई गेलू (इधर), उ गेलू (उधर)।

(4) रीतिवाचक— ऐहन्दा (इस प्रकार), कैहन्दा (किस प्रकार), जैहन्दा (जिस प्रकार), वैहन्दा (उस प्रकार), नू (इस प्रकार) ऐसो (इस प्रकार)।

(4) **विभक्तियाँ**—मेवाती और ब्रज के विभक्ति चिह्नों में भी कुछ अन्तर है। ब्रज में करण कारक का चिह्न 'से', 'तें' होता है जबकि मेवाती में 'सू' होता है। कर्मकारक में ब्रज में 'कू' का प्रयोग होता है तो मेवाती में लू और कू दोनों का।

मेवाती और बाँगरू परस्पर सीमा बोलियाँ है। अत इन दोनों में पर्याप्त साम्य देखने में आता है। मेवाती और हरियानवी (बाँगरू) ध्वनियों में विशेष अन्तर नहीं। ए, ड, ल एव स (श, ष के स्थान पर)

☐ **मेवाती और बाँगरू** ध्वनियाँ दोनों में समान हैं। ध्वनि की दृष्टि से मेवाती ओकारान्त बहुल तथा बाँगरू आकारान्त बहुल बोलियाँ हैं। मुख्य अन्तर व्याकरणिक प्रयोगों में हैं। यथा—

(1) सर्वनाम—मेवाती में उत्तम पुरुष, एक वचन में 'हूँ' का प्रयोग होता है जबकि हरियानवी में 'मैं' का। मेवाती में कर्म कारक का रूप 'मोनू' (मोहू भी) होता है जबकि बाँगरू में 'मन्नै होता है। यथा—

मेवाती—मोलू क्हा पतो ? (मुझको क्या मालूम ?)

बाँगरू—मन्नै के ब्यौरा ? (मुझको क्या मालूम ?)

मध्यम पुरुष बहुवचन में 'तम' का प्रयोग होता है जबकि बाँगरू में 'थम' का।

(2) वचन—वचन की दृष्टि से मेवाती में एकवचन रूप के अन्त में 'न' लगाने से बहुवचन रूप बनता है, जबकि हरियानवी में 'आं' लगाने से।

मेवाती	बागरू	हिन्दी
कुत्तान	कुत्ताँ	कुत्तों
औरतन	औरताँ	औरतों
बैलन	बैलां	बैलों

कहीं-कहीं 'आँ' लगाकर भी बहु वचन बनाया जाता है। वचन की दृष्टि से मेवाती में ब्रज और बाँगरू के मिश्रित रूपों का प्रयोग होता है।

(3) मेवाती में धातु के अन्त में 'णो' प्रत्यय लगाकर क्रिया बनाई जाती है

जबकि हरियानवी मे 'णा' लगाकर । मेवाती—लाणो, पीणो, न्हाणो, धोणो, हरियानवी मे—खाणा, पीणा, न्हाणा, धोणा होगा ।

मेवाती के हेतुहेतुमदभूत काल मे धातु मे 'तो' प्रत्यय लगता है, जबकि बागरू मे 'ता' ।

मेवाती मे हूँ (एकवचन), हाँ (बहुवचन) सहायक क्रिया प्रयुक्त होती है, हरियानवी मे सू-साँ प्रयुक्त होते हैं । मेवाती मे भूतकाल मे हो (एकवचन), हा (बहुवचन) सहायक क्रिया प्रयुक्त होती है जबकि हरियानवी मे 'था' रूप काम मे लिया जाता है ।

☐ मेवाती और अहीरवाटी

डा० ग्रियर्सन ने मेवाती और अहीरवाटी को पूर्वोत्तरी राजस्थानी वर्ग की बोलियाँ बताया है । अत इन दोनो बोलियों मे पर्याप्त साम्य है । परन्तु फिर भी अनेक वैषम्य देखने को मिले हैं । यथा—

(1) मेवाती मे सज्ञा के बहुवचन रूप बनाने के लिए एकवचन के रूप मे 'न' प्रत्यक्ष जोडा जाता है (जैसा कि ब्रज मे किया जाता है) जबकि अहीरवाटी मे 'आँ' प्रत्यय जोडा जाता है (जैसा कि बाँगरू मे किया जाता है) ।

(2) मेवाती मे वर्तमान काल मे सहायक क्रिया के 'हूँ', हाँ' रूप व्यवहृत होते हैं, अहीरवाटी मे 'सूँ'-'सा' । भूतकाल मे 'हो'-'हा' प्रयुक्त होते हैं तो अहीरवाटी मे 'थो'-'था' ।

(3) मेवाती मे कर्मकारक मे 'लू' एव 'कू' विभक्ति का प्रयोग होता है जबकि अहीरवाटी मे 'नैं' का । यथा—
मेवाती—तोलू मरवादू । (तुझको मरवादू ।)
अहीरवाटी—तूनैं मरवादू ।

इनके अतिरिक्त मेवाती ब्रजभाषा की अनेक विशेषताओ को धारण किए है तो अहीरवाटी बाँगरू की विशेषताओ को ।

☐ मेवाती और जयपुरी

विद्वानो का कहना है कि 'जयपुरी का घेरा इतना बढ रहा है कि मेवाती धीरे-धीरे महत्वहीन होती जा रही है ।' फिर भी मेवाती की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं, जिनसे मेवाती का महत्व समाप्त नही हो सकता । मेवाती और जयपुरी मे मुख्य वैषम्य निम्न प्रकार है—

(1) मेवाती मे सहायक क्रिया का 'ह्' रूप काम में आता है जबकि मे जयपुरी 'छ' रूप ।

2) क्रिया के भविष्यत्काल के रूपों मे मेवाती मे केवल ग रूप प्रचलित है जबकि जयपुरी मे 'ल'–'स'–एव 'ग' रूपों का प्रचलन है। परन्तु ल रूप प्रधान है।

3) सर्वनाम रूपों मे उत्तम पुरुष बहुवचन एव मध्यम पुरुष बहुवचन मे अन्तर है। मेवाती म म्हारो, थारो प्रयुक्त होने हैं जबकि जयपुर मे म्हाँका, थाँका का प्रयोग होता है।

(4) मेवाती और जयपुरी के क्रिया-विशेषणों मे भी अन्तर है यथा—

मेवाती	जयपुरी	हिन्दी
वैंठे, कहा	कोडे	वहाँ
हीन, ही	ऐण्डे	यहाँ
हूँन, हूँ	ऊण्डे	वहाँ
इ गेलू	ईण्डीनै	इधर को
ऊ गेलू	ऊण्डीनै	उधर को

इस प्रकार व्याकरणिक दृष्टि से मेवाती अपनी सीमा-बोलियों से प्रभावित होते हुए भी अनेक वैषम्य रखती है। इस प्रकार इसके स्वतन्त्र बोली होने में सत्य को इन्कार नहीं किया जा सकता। □

□ संदर्भ-सकेत

1 हि घा, धीरेन्द्र वर्मा, 'हिन्दी बोलियां एव प्राचीन जनपद, (लेख) पृ० 12
2 वै इ, भाग 2, पृ० 721–22 (3), ऋ० VII, 18 6
4 श ब्रा, 13.5, 4, 9
5 कौ उ, IV I (6) गो ब्रा, I, 2 9 (7) ग्र ब्रा, VIII, 14,
8 ऋत०, चटर्जी, पृ० 11
9 गो ब्रा, I, 2 9 (10) बुद्ध, ओल्डनवर्ग पृ० 39 (11) मनु II, 21
12 महा०, कर्णपर्व, 44 31–44
13. इ नो पा, वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० 557

"The Salva is mentioned as pair Janpad with Matsya as the Gopath Brahaman (I 2 9) and also in the same group in the Mahabharat (Bhim parva, 10 3) where the Salvas, the Madreyas and the Jangalas are juxtopposed Matsya with its capital at Virat (Bairat in Jeypore) Provides a mixed point and Salvas should be located near that region"

14 मनु०, II, 19–कुरुक्षेत्र च मत्स्याश्च पाँचाला शूरसेन का: । एप ब्रह्मविदेश ।

तीसरा अध्याय

उद्गम एवं विकास

'मेवात' शूरसेन प्रदेश का एक भाग रहा है । यह शौरसनी अपभ्रश (<शौरसेनी प्राकृत) का व्यवहार क्षेत्र रहा है । इसी अपभ्रश स पश्चिमी हिन्दी तथा राजस्थानी बोलियो का उद्गम हुआ है । यह अपभ्रश शौरसेनी का वह परवर्ती रूप है जो गुजरात एव राजस्थान म बोली जाने वाली बोलियो से मिश्रित हो गई थी । पूर्वी राजस्थानी ब्रज तथा दिल्ली, मेरठ और सहारनपुर की बोलियाँ इसी की विभाषाएँ हैं । प्राकृताचार्यों न अपभ्रश को प्राकृत का एक भेद माना है । काव्यालकार की टीका म नमि साधु न लिखा है कि है कि 'प्राकृतमेवापभ्रश' (2,12) अर्थात् अपभ्रश भी शौरसेनी, मागधी आदि की तरह एक प्रकार की प्राकृत ही है ।[1] विभिन्न प्राकृतो के आधार पर अपभ्रश के भेदो को स्वीकार करन म मुख्य आपत्ति यही है कि अपभ्रश भाषा का एक ही सामान्यत परिनिष्ठित रूप है । अत आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उद्भव प्रत्यक्षत प्राकृत से ही स्वीकार करना उचित है न कि अपभ्रश से ।

☐ उद्गम

मेवात शूरसेन प्रदश के समीपवर्ती होने के कारण शौरसनी प्राकृत का हा व्यवहार क्षेत्र रहा है । अत मेवाती का उद्गम भी शौरसेनी प्राकृत से ही निश्चित है । हेमचन्द्र के 'प्राकृत पैंगलम्' की भाषा म अनेक ऐस तत्व है जिनका उद्गम स्थान पूर्वी राजपुताना रहा है और जो अब मेवाती, जयपुरी आदि पूर्वी राजस्थानी बोलियो तथा पश्चिमी हिन्दी म विकसित हो गए है ।[2] पूर्वी राजस्थानी की विशषताओ मे स सबध-परसग-'कउ का प्रयोग मुख्य है । पश्चिमी राजस्थानी मे यह अनुपलब्ध है ।[3] मेवाती म इस परसग का प्रयोग 15 वी शताब्दी के एक शिलालेख मे 'जुको' सर्वनाम के रूप मे हुआ है ।[4] अत: 'प्राकृत पैंगलम्' की भाषा म ही मेवाती का मूल उत्स प्रतीत होता है । 'प्राकृत पैंगलम्' क समय मेवाती की स्थिति एक मिश्रित मध्यवर्ती बोली जैसी रही होगी । यही कारण है कि आज भी मेवाती, खडीबोली और पश्चिमी राजस्थानी के मध्य सेतु का कार्य करती है ।

आचार्य हेमचन्द्र के निम्नलिखित दोहे मे मेवाती के उद्‌भवकालीन शब्द-रूपो को खोजा जा सकता है

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कन्तु ।
लज्जेज्जन्तु, वयसि अहु जइ भग्गा घरु एन्तु ।।[5]

उपर्युक्त दोहे मे दो प्रकार के शब्द रूप मिलते हैं—आकारान्त एव उकारान्त। आकारान्त रूपो से खडी बोली-हिन्दी का विकास हुआ और उकारान्त रूपो मे मेवाती, ब्रज, कन्नौजी, बुन्देली आदि बोलियो का। मेवात मे प्राप्त एक शिलालेख[6] मे उकारान्त शब्दो के दर्शन होते हैं। लषमधोनु, सूरजनु आदि शब्द इसी के द्योतक हैं। साथ ही ओकार की प्रवृति भी झुको, मल्हो, मालो आदि शब्दों म विकसित प्रतीत होती है।[7] अपभ्रश उ > ओ मेवाती की उच्चारणगत विशेषता है। प्राचीन समय से ही शूरसेन एव मत्स्य जनपदो मे आभीरों का आधिक्य रहा है। आभीर उ को ओ की तरह उच्चारण करते रहे होंगे। आज भी मेवात के अलवर—रिवाडी क्षेत्रो मे अहीरो (आभीरो) की घनी बस्तियां आबाद है।[8] स्वार्थी—'ड' प्रत्यय का प्रयोग भी 'सघडी' जैसे शब्दों मे देखा जा सकता है। यह 'ड' शौरसेनी प्राकृत की ही देन है।[9]

पुरानी मेवाती का अपना न तो कोई प्राचीन साहित्य है और न कोई अन्य अभिलेखीय प्रमाण। जो अभिलेखीय सामग्री प्राप्त हुई है वह 15 वी शताब्दी-पूर्व की नही है। मेवात क्षेत्र से उपलब्ध प्राचीनतम शिलालेख सन् 1481 ई० का है। अतः इसे ही प्राचीनतम प्रमाण माना जा सकता है। सन् 1483 का फारसी का एक और शिलालेख नवगांव (अलवर) मे एक मेव के घर की दीवार मे लगा मिला है।[10] परन्तु वह तुघरा अक्षरों मे फारसी भाषा मे लिखा गया है। अतः मेवाती से उसका सबध नही है। इस दृष्टि से ठोस प्रामाणिक सामग्री के अभाव मे मेवाती का उद्‌गम् 15 वी शताब्दी से पूर्व का स्वीकार करने मे आपत्ति होती है। इससे पूर्व इसके एक व्यावहारिक बोली के रूप मे बने रहने की सभावना अवश्य है पर कोई स्थिरीकरण नही मिलता है। मेवाती मे प्राप्त साहित्य-सामग्री, शिलालेख, पत्र, ताम्रपत्र एव पट्टे-परवाने आदि 16 वी शताब्दी से प्राप्त होते हैं। अत, मेवाती का उद्‌गम-काल 16 वी शताब्दी ही मानना उचित है।

मेवाती की समीपवर्ती बोलियां ब्रज, बांगडू एव ढूंढाडी हैं। 15 वी शताब्दी तक पश्चिमी राजस्थानी और गुजराती एक ही रही हैं। दोनो मे पार्थक्य 16 वीं शताब्दी में हुआ है।[11] एक सम्भावना यह हो सकती है कि इस पार्थक्य प्रक्रिया के मध्य मेवाती का उद्‌गम हुआ हो। डा॰ सत्येन्द्र ने खडी बोली का विकास ब्रज और फारसी—अरबी के मेल से स्वीकार किया है। मेवाती-प्रदेश दिल्ली मुगल

सल्तनत का एक भाग रहने के कारण इस संक्रमण-क्रिया से बच नहीं सका है। पुनः एक अन्य संभावना यह भी है कि मेवाती ब्रज, खड़ी-बोली, बांगड़ू एवं ढूँढाड़ी के मिश्रण से उत्पन्न हुई हो क्योंकि इसमें उपर्युक्त सभी बोलियों के प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

☐ **विकास क्रम** विकास-क्रम की दृष्टि से मेवाती का इतिहास प्रधानतः तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है—

1. पूर्वकाल (1500 ई० से 1700 ई०)।
2. मध्यकाल (1700 ई० से 1900 ई०)।
3. आधुनिक काल (1900 ई० से आज तक)।

1. पूर्वकाल—इस काल की अध्ययन सामग्री[12] निम्नलिखित रूपों में उपलब्ध हुई है—

(क) ताम्रपत्र (1521 ई०)।

(ख) हसन खाँ की कथा ह० लि०, रचनाकाल लगभग 1525 ई०, लिपिकाल सन् 1582 ई०) प्रस्तुत लेखक द्वारा शोध-पत्रिका (अक्टू० दिस० 70) एवं हिंदुस्तानी (जन० जून० 70) में प्रकाशित।

(ग) लालदास की वाणी (1540 ई०–1648 ई० तक)।

(घ) शिलालेख (सन् 1587 ई० के दो शिलालेख)।

(ङ) लालदास जी का नुक्ता रचनाकाल लगभग 1648 ई० लिपिकाल सन् 1905 ई०)।

(च) शिलालेख (1672 ई०)।

(छ) ताम्रपत्र (1698 ई०)।

(ज) नकलपट्टा (1698 ई०)।

(झ) मीक के दोहे (रचनाकाल लगभग 1700 ई० पूर्व)।

विवेच्यकाल ऐतिहासिक दृष्टि से बहलोल लोदी से लेकर औरंगजेब का शासनकाल कहलाता है। इस बीच मुगल सल्तनत में अनेक उतार-चढ़ाव आये। इसके प्रभाव से मेवात प्रदेश अछूता नहीं रह सका। औरंगजेब (मृ० 1707 ई०) की सेना में अन्य भाषा-भाषी सैनिकों के साथ मेवाती

☐ **ऐतिहासिक पृष्ठभूमि** सैनिक भी सुदूर दक्षिण में गये थे, जिनका प्रभाव दक्खिनी हिन्दी में आज भी देखा जा सकता है।[13]

'कदीम उर्दू' में मेवाती अल्फाज़ की मौजूदगी इस बात पर दलालत करती है कि देहली की नवाही बोली मेवाती का असर दिल्ली की जुबान पर पड़ा और वहाँ से यह जुबान दक्खन की तरफ बढ़ी और परवान चढ़ी। मुल्ला वजीह की सबरस' को

पढने के बाद यह अहसास होता है कि ये जुबान मौजूदा मेवाती जुबान ही की शक्ल है।'[14] हिन्दी साहित्य मे अकबर का समय सामान्यतः भक्ति-साहित्य का काल रहा है। मेवात प्रदेश मे प्राप्त शिलालेखो से अकबर का मेवात प्रदेश पर अधिकार स्पष्ट प्रतीत होता है।[15] इस समय मेवात के सन्त लालदास, भीक निर्गुण भक्ति के उपदेश दे रहे थे। अत इस काल की प्राप्त सामग्री मे अरबी, फारसी और सस्कृत की सामग्री ही प्रमुख है। फिर भी लोक-भाषा मे भी साहित्य सृजन होता था। जिसके प्रमाण मूलपाठ मे सग्रहीत सामग्री मे देखे जा सकते हैं।

☐ भाषागत विशेषताएँ

(1) ध्वनिविकार-स्वर—

(क) मूल स्वर 'अ, मेवाती मे 'इ (ई)' मे परिवर्तित हो जाता है—इ<अ

मेवाती	<	अप० (<प्रा०)	<	सस्कृत
मनि	<	मन	<	मनम्
तीस	<	तस्स	<	तस्य
आखिर	<	अक्खर	<	अक्षर
पाइ	<	पाइ	<	पाद
उत्तिम	<	उत्तिम	<	उत्तम
बीरम	<	बम्ह	<	ब्रह्मन्
राइ	<	राइ, राय	<	राजन्

(ख) स० 'अ' का मेवाती मे 'उ' हो जाता है—उ<अ

मेवाती	<	अप० (<प्रा०)	<	सस्कृत
आखिरु	<	अक्खर	<	अक्षर
पाउ	<	पाइ	<	पाद
मेउ	<	मेअ	<	मेद
सिंगु	<	सीह	<	सिंह
राउ	<	राव, राइ, राय	<	राजन्
आरंभु	<	आरम्भ	<	आरम्भ
कुछाहा	<	कच्छवउ	<	कच्छपक:

(ग) सस्कृत ऋ का मेवाती मे 'अ, आ, इ, उ' हो जाता है—

मेवाती	<	अप० (<प्रा०)	<	स०
हिरदे	<	हिअये	<	हृदयं
घर	<	घर	<	गृह
रितो	<	उतु	<	ऋतु

क्रिसन	<	कण्ह, कसरा	<	कृष्ण
पीहर	<	पिउघर	<	पितृगृह
माइ	<	माइ	<	मातृ
सौरौ, सुमरुँ	<	सुमिरि	<	स्मृ
कर, करूँ	<	करू	<	कृ
मारै, मरि	<	मरि	<	मृ

(घ) अपभ्रंश की तरह यदि अनुस्वार युक्त ह्रस्व स्वर के बाद र्, स्, ष, ह् आवें तो ह्रस्व स्वर का दीर्घ हो जाता है तथा अनुस्वार लुप्त हो जाता है। यथा—सीघ<सिंह, बीसी<विंशति, नीम<निम्ब।

(ङ) 'अ' श्रुति का आगम—

मेवाती	<	संस्कृत	मेवाती	<	संस्कृत
भगत	<	भक्त,	निरमल	<	निर्मल
निसचै	<	निश्चय,	मारग	<	मार्ग
पूरन	<	पूर्ण,	गरब	<	गर्व
परसाद	<	प्रसाद,	उजर	<	अ० उज्र

(च) कहीं कहीं 'इ' का मेवाती मे 'ई' हो गया है—

सीधी	<	सिद्धि,	प्रसीधी	<	प्रसिद्धि
भीख	<	भिक्षा,	लीख, लीखो	<	लिख्
नायी, नाई	<	नापित,	गठडी	<	ग्रथित्
ईख	<	इक्षु,	पीहर	<	पितृगृह
पूतली	<	पुत्तलिका,	मोती	<	मौक्तिक

(छ) 'इ' का 'ए' हो जाता है—

मेवाती	<	अप० (<प्रा०)	<	संस्कृत
पेस	<	पइस	<	प्रविश
दोय	<	दोइ, दोवि	<	द्ववपि

(ज) 'उ, ऊ' का 'अ' हो गया है—

गुर < गुरु साध < साधु

(1) मध्य भारतीय आर्य भाषा की यह प्रवृत्ति रही है कि स्पर्श अल्पप्राण असंयुक्त स्वर मध्यम व्यंजन क, ग, ज, त, द, प, य, व का प्राय.

[] व्यंजन लोप हो जाता है। प्राचीन मेवाती मे भी यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है। यथा—

मेवाती	<	संस्कृत	मेवाती	<	संस्कृत
बिनाइग	<	विनायक	हूं	<	ग्रहकम्
नानाग	<	नानक	परमेसुर	<	परमेश्वर
राइ	<	राजन्	भैं	<	भय
जसरथ	<	दशरथ	जम	<	यम
साई	<	स्वामी	ग्रंठा	<	ग्रत्र
जुग	<	युग	पीहर	<	पितृगृह
सांच	<	सत्य	पेस	<	प्रविश

(2) ग्रपभ्रंश की तरह मेवाती मे सस्कृत के 'य' का 'ज' हो जाता है ।

जं	<	यदि	जम	<	यम
जोगी	<	योगी	जतन	<	यत्न

(3) ग्रपभ्रंश (प्रा०) की तरह मेवाती मे सस्कृत 'न' का 'ण' हो जाता है ।

ग्रापणा	<	ग्रात्मानम्	धणी	<	धनिक.

(4) स्, श्, ष् शिन् ध्वनिमो मे स् ध्वनि का प्रयोग होता है । ष् का प्रयोग शिन ध्वनि की ग्रपेक्षा ख की तरह होता है । श् ग्रपवाद स्वरूप मिल जाता है । ग्रन्यथा प्राकृत एव ग्रपभ्रंश की तरह दन्त्य 'स' का ही सर्वत्र प्रयोग होता है । यथा–

ग्रस्सी	<	ग्रशीति	सूल	<	शूल
पैस	<	प्रविश	ग्रासिरवाद	<	ग्राशीर्वाद
मुख	<	मुख	लीख	<	लिख्
वैसाख	<	वैसाख	बीसी	<	विंशति
दशगिर	<	दशगिरा,	जसरथ	<	दशरथ

(5) र् का ल् हो जाता है—चालीसा < चत्वारिंशत

(6) सस्कृत 'ह' का ग्रपभ्रंश मे कभी-कभी 'घ' हो जाता है । प्राचीन मेवाती मे भी 'ह' का 'घ' बन जाता है । यथा –सीघ < सिंह

(7) ड् का ल् हो जाता है—
तलाव < तडाग, सोला < षोडश

(8) संयुक्त व्यंजन—

(क) सामान्यतः यदि सयुक्त व्यजन का दूसरा व्यजन 'य्' एव 'द्' हो तो उसके प्रथम व्यजन को रख कर दूसरे का लोप हो जाता है । ग्रपभ्रंश की यह प्रवृत्ति मेवाती मे भी देखी जा सकती है—

साई	<	स्वामी	सांच	<	सत्य

परमेसुर	<	परमेश्वर	वषान	<	व्याख्यान
मरबंस	<	सर्वस्व	तत, तत्त	<	तत्व ।

(ख) मेवाती मे 'क्ष' सयुक्त व्यजन का 'ख' तथा 'छ' हो जाता है । यथा—

मे०	<	अप०	<	स०
आखिर, आखिर	<	अक्खर	<	अक्षर
भीख	<	भिक्ख	<	भिक्षा
खेत	<	खेत्त	<	क्षेत्र
पखै	<	पक्खे	<	पक्षे
ईख	<	इक्खु	<	इक्षु
लाख	<	लक्ख	<	लक्ष

(ग) 'स्क' सयुक्त व्यजन के पूर्व व्यजन का लोप होकर द्वितीय दीर्घ हो जाता है । यथा—

काँधो < खध < स्कध

(घ) अपभ्र श मे सस्कृत व्यजन 'श्च' को 'च्छ' हो जाता है, परन्तु मेवाती मे द्वित्व न होकर 'च' या 'छ' मे से कोई एक रह जाता है । यथा—

निसचै < निश्चय कुछाहा < कश्चपक

(ङ) सस्कृत सख्यावाचक शब्दो के द्वित्व व्यजन की प्राकृत एव अपभ्र श मे रक्षा की गई थी, परन्तु पूर्व मेवाती मे द्वित्व समाप्त हो गया । यथा—

तीनू , तीन	<	तिण्णि	<	त्रीणि
तेरे	<	तेरह	<	त्रयोदश
पचीसू	<	पच्चीसा	<	पञ्चविंशति
चालीसा	<	चत्तालीस	<	चत्वारिंशत्
साठा	<	सट्ठ	<	षष्टि
लाख	<	लक्ख	<	लक्ष

(च) 'त्म' को अपभ्र श मे 'प्प' बनता है, परन्तु मेवाती मे 'प' ही रहता है—

आपणा < अप्पण < आत्मन्

सज्ञा के लिंग विधान की व्यवस्था वैदिक काल मे ही थी, परन्तु प्राकृत मे अपेक्षाकृत स्थिरीकरण होकर केवल दो लिंग– पुलिंग एव स्त्रीलिंग रह गये थे । अपवाद अवश्य थे । लिंग की यह अव्यवस्था अपभ्र श मे भी पाई

☐ रूप-विचार

जाती है ।[16] इसीलिए हेमचन्द्र ने अपभ्र श में लिंग को 'अतंत्र' कहा है ।[17] अपभ्र श में लिंग निर्णय वर्णान्तता पर निर्भर करता था । प्रायः आकारान्त, ईकारान्त एव ऊकारान्त शब्द स्त्रीलिंग होते थे ।

कोमलता, लघुता एव हीनता व्यक्त करने के लिए स्वार्थिक् प्रत्यय 'डी' का प्रयोग कर स्त्रीलिंग शब्द बनाये जाते थे। यद्यपि पी एल. वैद्य इ, ई, उ, और ऊकारान्त मति, तरुणी, धेनु और वधू आदि शब्दो को स्त्रीलिंग मानते हैं।[18] पूर्व मेवाती मे केवल दो ही लिंग—पुल्लिग एव स्त्रीलिंग—पाए जाते हैं। प्राय. अ, ई, उ, ओकारान्त शब्द पुल्लिग एव अ, आ, इ, ईकारान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। अपभ्रंश के स्वार्थिक 'डो' प्रत्यय का पूर्व मेवाती मे 'डो' हो गया है। पुल्लिग में इसका 'डो' रूप प्रयुक्त होता है। यथा — पुल्लिग—

मेवाती		संस्कृत	मेवाती		संस्कृत
सीध	<	सिंह	विनाइग	<	विनायक
लोक	<	लोक	गुर	<	गुरु
जसरथ	<	दशरथ	नानाग	<	नानक
तलाव	<	तडाग	नीम	<	निम्ब
हीदु	<	हिन्दू	जोगी	<	योगी
साई	<	स्वामी	नाई, नायी	<	नापित
मोती	<	मौक्तिक	पाउ	<	पाद
गूजरो	<	गुर्जर	माधो	<	माधव
बाधो	<	बन्ध	सांचडो	<	सच्चा

☐ स्त्रीलिंग

मेवाती		संस्कृत	मेवाती		संस्कृत
ईख	<	इक्षु	बैरण	<	वैरिणी
सीध	<	सिद्धि	बुध	<	बुद्धि
गांठ	<	ग्रंथि	माइ	<	मातृ
पूतली	<	पुत्तलिका	माछली	<	मत्स्यिका
बाणी	<	वाणी	गांठडी, गठडी	<	ग्रंथि

सामान्यत पूर्व मेवाती मे तत्सम और तद्भव शब्दो का लिंग सुरक्षित रहा है। यथा—सुत, विप्र, सत (सत्य), निस (निशि), बासर (वासर), त्रिया आदि। फिर भी अपवाद हो सकते हैं।

पूर्व मेवाती (1500 ई० से 1700 ई०) मे *निम्नलिखित कारक विभक्तियें* का प्रयोग होता था—

कर्म	—	कू	सम्बन्ध	—	का, की, :
करण	—	से	अधि०	—	मै, मैं, पर

सर्वनाम रूपो मे निम्नलिखित सर्वनाम रूप प्रयुक्त हुए हैं—

(1) **पुरुष वाचक—**

	उ० पु०	म० पु०	अ० पु०
एकवचन	हूं (<हउ <ग्रहकम्)	तम (<तुम्ह<त्वम्)	सो (<सो<सः)
बहुवचन	हम (<ग्रम्ह<वयम्)	—	इन
विकृतरूप	मोहि, मोय	तोहि, तोय	तीस, (उस)
सम्बन्ध	मेरी, हमारी	—	ताकी

(2) **सबंधवाचक**

	मेवाती		ग्रप (प्रा०)		सस्कृत
एकवचन	जोका (<जुका)	<	जु, जो	<	य
बहु वचन	जिन	<	जे	<	य·

(3) **ग्रनिश्चयवाचक**—	कोइ, कोई	<	कोवि	<	कोपि
(4) **निश्चयवाचक**—	ग्र	<	ग्राय	<	ग्रयम्
	ई	<	ई	<	इयम्
(5) **निजवाचक**—	ग्रापरगा, ग्राप	<	ग्रप्पएा, ग्रप्प	<	ग्रात्मन्
(6) **प्रश्नवाचक**—	को, कौ	<	को	<	कः

सहायक क्रिया मे पश्चिमी राजस्थानी का 'छै' ग्रौर पश्चिमी हिन्दी का 'है' दोनो रूप पाये जाते हैं ।

पूर्व मेवाती मे–ह्री (<ग्रत्र), कद (<कदा), जित (<यत्र), उत (<तत्र), ग्रैठा (<ग्रत्र), जं, जद (<यदि), सु (<सो) ग्रादि का प्रयोग मिलता है ।

इसके ग्रतिरिक्त ग्रनेक ध्वनि–परिवर्तन, परिवर्धन एव रूप परिवर्तनो के साथ फारसी–ग्ररबी की शब्दावली का भी पूर्व मेवाती मे प्रचुर प्रयोग हुग्रा है । यथा—स्माचार (समाचार), उजर (उज्र), ग्रौवलि (ग्रव्वल), खुदाइ (खुदा), पीर, ख्वाजे (ख्वाजा) शर्म, हर्म, बादशाह, हक, फरौह, साहिब, दोजक (दोजख), पुरजा (पुर्जः), वागैरह वगैरा, गुनाहगार, बक्सो, मैदान, मुकाम, हुक्म, (हुक्म), हजूर, फुरमायो, सनद (सनद), तमाम ग्रादि ।

मध्यकाल मे मेवाती का पर्याप्त विकास हुग्रा । इस समय मेवात का केन्द्र-स्थल ग्रलवर बना हुग्रा था । इस काल मे ग्रलवर पर भरतपुर (ब्रजभापा-क्षेत्र) के जाट शासको एव जयपुर के कछवाहो का ग्राधिपत्य रहा । परिणामत ब्रजभाषा ग्रौर जयपुरी दोनो का मेवाती पर प्रभाव पडना स्वाभाविक था । ग्रलवर दरबार मे ग्रनेक कवि, चारण एव भाट रखने थे ।

मध्यकाल (1700 ई०–1900 ई०)

ब्रजभाषा साहित्यिक भाषा बनी हुई थी। अत अलवर के राजदरबार म भी ब्रजभाषा की रचनाए अधिक प्रकाश मे आने लगी थीं। डा० मोतीलाल गुप्ता का कहना है 'इसमे कोई सदेह नही कि इस प्रान्त के ग्रन्थो को देखने पर स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि यहाँ कि साहित्यिक भाषा निरन्तर ब्रजभाषा ही रही।" जहाँ तक राजस्थानी का सम्बन्ध है मेरे द्वारा किये गये अनुसधान मे कोइ भी ग्रन्थ राजस्थानी के उपलब्ध नही हो सके। इतना ही नही जो भी ग्रथ प्राप्त हुए, उन पर राजस्थानी का प्रभाव भी लक्षित नही होता।[19] प्रस्तुत लेखक को इस काल की जो सामग्री मिली है उसमे प्रस्तर लेख, पत्र एव लोक कहानियाँ हैं। पत्रो की भाषा जयपुरी से प्रभावित अवश्य है। साथ ही मेवाती पर दिल्ली की राजनीति का भी प्रभाव पडता रहा है। परिणामत दिल्ली की खडी बोली का प्रभाव भी कही-कही देखा जा सकता है। इस प्रकार अरबी-फारसी मिश्रित खडी बोली, ब्रजभाषा एव जयपुरी का सयुक्त प्रभाव मेवाती पर देखा जा सकता है। 18 वीं शताब्दी की 'आठ देश री गूजरी'[20] नामक रचना म-पजाबी, ब्रज, मेवाती, लाहौरी मारवाडी, ढूँढाडी, काबिली, बागडी-भाषाओ के पद सकलित हैं। परन्तु अब यह कृति अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर से विलुप्त हो गई है। इसके अतिरिक्त इस काल मे प्राप्त अध्ययन सामग्री मे प्राचीन पत्रादि आते हैं, जिन्हें मूलपाठ मे सग्रहित कर दिया गया है। इससे विदित होता है कि इस समय राजकाज मे भी जयपुरी का प्रयोग किया जाता था। इस काल की अध्ययन-सामग्री निम्न-लिखित है, जिसके सक्षिप्त अश मूलपाठ (12, 13, 14 15, 16) के अन्तर्गत सग्रहीत कर दिये गये हैं।

1 प्रस्तर लेख (स० 1803, सन् 1746)
2 प्राचीन पत्र (सन् 1780)
3. पत्र (सन् 1794)
4. एक लोक कथा (मैक्लिस्टर, 1898 ई०)
5. एक लोक कथा (ग्रियर्सन, 1899 ई०)

प्रस्तर-लेख नीमराना (अलवर) के 'आशापुरी' देवी के मदिर मे स्थित है। पूव मेवाती की तरह मध्य कालीन मेवाती मे भी तालव्य और मूर्द्धन्य श, ष के स्थान पर दन्त्य स का प्रयोग हुआ है। यथा—

आसा < आशा, सिरी < श्री,
साह < शाह, जोसी < ज्योतिषि

'ष' का 'ख' की तरह उच्चारण किया जाता है। 'ड' का प्रयोग इसकाल की बोली की एक अन्य विशेषता है।

य > ज में परिवर्तित भी दिखाई देता है — योग्य > भोग्य । 'ग्र' श्रुति भी पूर्व मेवाती की ही तरह प्रयुक्त होती है—

सर्व > सरव, खर्च > खरच

संस्कृत की ह्रस्व 'इ' पूर्व मेवाती में 'ई' मध्यकालीन मेवाती में 'य' में विकसित हुई है । यथा— सिंह > सीघ > स्यघ । सहायक क्रिया के है, छै, में रूप देखने को मिले हैं । क्रियाएँ ओकारान्त हैं, यथा— विचार्यो, करवायो (> काराविता) । भविष्य में 'स्य' और—ल रूप भी प्रयुक्त हुये हैं । इनके अतिरिक्त 'ग' रूप प्रधान रूप से प्रचलित हो गये हैं । सर्वनामों में पश्चिमी राजस्थानी के सर्वनाम भी दिखने को मिले हैं । मुख्य रूप से मेवाती के सर्वनाम ही प्रचलित रहे हैं, यथा—मैं, तम, यो, ऊ, वो, कौण आदि । रेव० मैक्लिस्टर एवं ग्रियर्सन ने इस काल की भाषा का एक संक्षिप्त व्याकरण[31] भी प्रस्तुत किया है । जो निम्न प्रकार है—

एक	मैं	हात
दो	मेरो	पाव, पाग
तीन	हम, हमा	नाक
च्यार	म्हारो	आँख्या
पाच	तू	मोह
छं	तेरो	दात
सात	तम, तुम, थम	कान
आठ	थारो	बाल
नौ		सिर
दस	वो, वो.	जीव
बीस	वहे, को	पेट
पचास	वे, वँ, वँह	मड्गर, पीठ
सौ	उनको	लोह
सोनू	चाँदी	बाप, बाबो
मा	भाई	बाहाण
आदमी, मरद, मोट्यार	बँरबानी	बीरबानी
लुगाई	बालक	बेटो, छोरी
बादो	किसान	जिमीदार
गुवाल	राम, इसुर	भूत, परेत
सूरज	चाँद	तारो

आग, आग्या	पाणी	घर
घोड़ो	गाय	कुत्तो, कूकरो
बिलाई	मुर्गो	बालक
गधो, चोथो	ऊंट	चिड़ो
जा	खा	बैठ
मार	खडो, ब्हा	मर
दे	दौड़, भाग	ऊपर
नीड़ो, नीड़ै, कनै	नीचे	दूर
आगै	पीछै, गैला	कौण
के	क्यूं	अर, और
पर	जे	हैं
नांह	हाय	बाप
बाप-को	बाप-नैं	बाप-ठैं, मैं
दो बाप	बाप	बापां को
बापां नैं	बापां, ठैं,-मैं	बेटी
बेटी-को	बेटी-नैं	बेटी, तैं,-मैं
दो बेटी	बेट्या-को	बेट्या-नैं
बेट्यां,-तैं,-मैं		

एक आच्छयो आदमी	एक आच्छया आदमी-को
एक आच्छ्या आदमी-नैं	एक आछ्या आदमी-नैं, सैं
दो आछ्या आदमी	आछ्या आदमी
आछ्या आदम्यां-को	आछ्या आदम्यां-नैं
आछ्या आदम्यां-नैं, मैं	

एक आच्छी बैरबानी	एक बुरो छोरो	आछी बैरबान्यां
एक बुरी छोरी	आछ्यो, चोख्यो	व्है-तै आछ्यो
सब तै आछ्यो	ऊंचो	व्है-तैं ऊंचो
सब तै ऊंचो	घोड़ो	घोड़ी
घोड़ा	घोड़्यां	गाय
बिजार	गायां	कुत्तो
कुत्ती	कुत्ता	कुत्तीयां
बकरो	बकरी	बकरा
बकरी	हिरण	हिरणी

मैं हूं,	तू है, हा	वो है
हम हाँ	तम हो	वं हैं
मैं हो, थो	तू हो, थो	वो हो, थो
हम हा, था	तम हा, था	वं हा, था
व्हा (be-imperative)	होए॒ (To be)	होतो
हो-कर	मैं हुगो	मार
मारए॒	मार-तो	मार-कर
मैं मारू॑	तू-मारा	वो-मारा
हम-मारां	तम-मारो	वं-मारे
मैं-मार्यो	तैं-मार्यो	वहै-मार्यो
हम-मार्यो	तम-मार्यो	उन-मार्यो
मैं-मारू-हूं	मैं-मारे हो, -थो	मैं-मार्यो-हो, थो
मैं-मारू॑	मैं-मारू गो	तू-मारेगो
वो-मारैगो	हम-मारागा	तम-मारोगा
वं मारागा	मैं-पिट्यो-हूं	मैं-पिट्यो-हो, थो
मैं-पिटू गो	मैं-जाऊं॑	तू-जाय
वो-जाय	हम-जाह	तम-जावो
वं-जावां	मैं-गयो	वो-गयो
हम-गया	तम-गया	वं-गया
जा	जातो	गयो

☐ वाक्य—थारो के नाम है ?

यो घोडो कितनी उमर-मैं है ?

कशमीर इत-सैं कितनी-क दूर है ?

थारा बाप का घर मै कितना-क बेटा है ?

आज मैं भोत दूर चाल्यो-हूं ।

मेरा काका-का बेटा-को ब्याह वहै-की बाहाण-सै हुयो है ।

गुरद घोडा-की जीन घर मैं है ।

जीन वैह-की पीठ-पर धरो ।

मैं वैह-को बेटो भोत कोड़ा-सैं मार्यो-है ।

वो पहाड-कै ऊपर ढोर चरार्यो है ।

वो वैह रूंख-कै नीचं घोडा-पर बैठ्यो-है ।

वैह-को भाई वैह-की बाहाण-सैं लम्बो है ।

वैह-को मोल ढाई रुपया है ।

मेरो बाप वँह छोटा घर-में रहै है ।
यो रपँयो वँह नैं द्यो ।
वँ रपँया वँह तैं ल्यो ।
वँह-नैं खूब मारो ग्रर जेवडा-तैं बादो ।
कूवा तैं पाणी काढो ।
मेरे ग्रागैं चाल ।
तेरे पाछैं कैंक् को छोरो ग्रावै है ?
तम वो कित-तैं मोल लियो ?
गाव का एक हाट वाला हैं ।

इस काल तक ग्ररबी-फारसी शब्दावली का प्रयोग प्रचुर रूप मे होता था । यथा—लायक, मुजरो, हिजूर, खात्र (खातिर), उम्मेद, मालूम, मरजो, उगैरह पैदायस, हुकम ग्रादि । ध्यान देने की बात यह है कि ग्र ग्रेजी शब्दावली का इस समय तक मेवाती मे प्रवेश नही हो पाया था ।

मध्यकाल तक मेवाती का स्वरूप स्थिर हो चुका था । ग्राधुनिक काल तक ग्राते-ग्राते मेवात के केन्द्र-स्थल ग्रलवर मे हिन्दी (खडी बोली) का प्रचार बढ रहा था । 1908 ई० की एक राजाज्ञा के ग्रनुसार ग्रलवर की राज्य-भाषा हिन्दी घोषित कर दी गई थी ।[24] फलत: हिन्दी का प्रचार एव प्रसार होने लगा लेकिन फिर भी लोकभाषा के प्रति जनता का जो लगाव था, वह कम नही हुग्रा । यद्यपि शिक्षा के प्रसार के साथ लोक-भाषा के दो रूप बन गय— ग्रामीण ग्रौर नागरिक । इसी तरह जातिगत भेद भी भाषा मे प्रकट होने लगा । इस दृष्टि से इस काल की मवाती के दो भेद किये जा सकते हैं —मेव मेवाती तथा ब्राह्मणी मेवाती । मेव मेवाती के ग्रन्तर्गत ग्रहिन्दू जातियाँ ग्राती हैं तथा ब्राह्मणी के ग्रन्तर्गत हिन्दू जातियाँ । उदाहरणार्थ मेव मेवाती मे कर्म कारक की 'की' विभक्ति के स्थान पर 'लू' विभक्ति का प्रयोग किया जाता है, जबकि ब्राह्मणी मेवाती मे 'कू' विभक्ति का । ग्रपवाद हो सकते हैं । इसके साथ ही मेव-मेवाती मे ग्ररबी फारसी शब्दावली का मिश्रण होता है, जबकि ब्राह्मणी मेवाती में तत्सम, तद्भव शब्दो का । वर्तमान मे मेवाती बोली म भी काव्य-सृजन होने लगा है । इसके लोक साहित्य को ग्रधिक से ग्रधिक प्रकाशित किया जा रहा है । प्रस्तुत लेखक ने इस सम्बन्ध मे ग्रनेक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाग्रो मे प्रकाशित करवाए हैं । साहित्य-सृजन की दृष्टि से श्री चन्दूल, श्री हरिश्चन्द्र दीक्षित, सुरेन्द्र सुरै, ग्रादि कवि इस ग्रोर प्रयत्नशील है । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के बाद मेवाती-सम्बन्धी बहुत कार्य हुग्रा

☐ **ग्राधुनिक काल (1900 ई० से)**

है। राजपि कॉलेज, अलवर की वार्षिक पत्रिका 'विनय' का इस ओर स्तुत्य प्रयास रहा है। सन् 1968-69 मे प्रकाशित 'विनय' का 'अलवर अक' सग्रहणीय है। इसमे भाषा, साहित्य, इतिहास, राजनीति एव कला-सम्बन्धी अति सुन्दर शोध-पूर्ण सामग्री सकलित है। 'मेवाती लोक गीतो' पर भी शोध कार्य हो रहा है। मेवाती क्रियाओ, सर्वनामो, आदि पर शोध-निबध भी लिखे जा चुके हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मेवात-क्षेत्र मे अनेक परिवर्तन हुए। बहुसख्यक मेव पाकिस्तान चले गये। सिन्ध से अनेक सिन्धी-पजाबी इधर आ गये। भाषाओ का सम्मिश्रण होने लगा। इस काल की अध्ययन-सामग्री मे हमने कुछ लोक-गीत, कविता एव लोक-कहानियो को लिया है। उनमे से कुछ मूल पाठ मे सग्रहीत हैं।

आधुनिक मेवाती की ध्वन्यात्मक विशेषताओ[23] मे 'ण', 'ड' एव ,ल' ध्वनियो की उपस्थिति है। ब्रजभाषा मे इन ध्वनियो का अभाव है। हरियानवी एव जयपुरी मे ये ध्वनिया उपलब्ध होती हैं। ब्रजभाषा के 'र' एव 'ल' की जगह मेवाती मे 'ड' प्रयुक्त होता है। 'ल' के स्थान पर 'ड' का प्रयोग तो जयपुरी मे भी विरल है। उदाहरणार्थ—

मेवाती	ब्रज	हिन्दी
भोडानाथ	भोलानाथ	भोलानाथ
पडी	परी	पडी
थोडो	थोरो	थोडा
दिवाडी	दिवारी, दिवाली	दीपावली
थाडी	थारी, थाली	थाली

व्याकरण[24] की दृष्टि से आधुनिक मेवाती मे बहुवचन 'न' या 'आँ' जोड कर बनाया जाता है। इनकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे आगे देखिए। कर्म-सम्प्रदान मे 'लू' 'कू' विभक्तियो का प्रयोग होता है। सम्बन्ध मे का, की, को, करण अपादान मे सू, से आदि प्रयुक्त होती हैं। मध्यमपुरुष बहुवचन मे 'तम' सम्बन्ध बहुवचन मे 'तिहारो' सर्वनामो का प्रयोग होता है जो मेवाती की अपनी विशेषता है।

मवाती क्रियाएँ 'णोकारान्त' है। धातु मे 'णो' प्रत्यय लगाया जाता है। यथा—खाणो, पीणो, जाणो, सोणो आदि। सहायक क्रिया अन्य पुरुष, एक वचन वर्तमान मे 'है', भूतकाल म 'हो', भविष्यत् मे 'गो' रूपो मे प्रयुक्त होती है।

आधुनिक मेवाती मे क्रिया विशेषणो मे आटै (लिए) इत (यहाँ), उत (वहाँ) ऊटे, (वहाँ), वैठे (वहाँ), वैठ्या (वहाँ) ऊठ्या (वहा), जित (जहाँ), कित (कहाँ), नाय, नाह (निषेध), न्यू (इस तरह), कैह्न्दा (कैसे), ऐंहन्दा

(इस प्रकार), जैहन्दा (जैसा), ग्रोडानें (तरफ), चोगड्दा (चारों ग्रोर), परा (दूसरी तरफ), उरानें (इधर) ग्रादि का प्रयोग होता है ।

इस प्रकार मेवाती वर्तमान में हिन्दी–राजस्थानी ग्रौर ब्रजभाषा के मध सिंहद्वार का काम करती है । राजस्थानी को समझने के लिए मेवाती बड़ी सहाय है । वस्तुतः यह संधि स्थल की मध्यवर्तनी बोली है ।

☐ मूल पाठ

(1) शिलालेख- (वि० स० 1538 सन् 1481, सूर्य देव का मदिर, नवगाव)

1. स्वस्तिसवत् 1538 वर्षे माघ सुदि 4 गुरवासरे ग्रमदखन सु
2. त मलीक जुको श्रू ग्रलावल खान, ग्रातुभीय श्रीघर (जललदीन)
3 सघे पुहुकर्ण के दास महाजन ज (प) त्रि बध सोमसेन भटारक
4. सु परम भटारीक श्रेयसेण ततपर (   ) भटारीक सो
5. मे सेन भटारक प्रस लव्ल व्रती चौधरी लषमघोनु
6. त वलीया (म) विजा मल्हो सुत चौधरी सूरजनु भजा सवी (री)
7. दमि पुत्र घुडी सीधर सपडी सूरजनु चैत्या
8 ··············घो ग्रनत नाथस्य करवित कर (म्म) धाधक
9. रावित ॥1॥ चौधरी मनहरि (·····················) माला सुत चौधरी ले
10 वण करापिता······ ······सथ जय सूत धार सरज ।

(2) ताम्रपत्र :– (वि० स० 1578 सन् 1521 ग्रजबगढ़, ग्रलवर)

रघुनाथ जी लीयो छै सही

1. सीधी श्री महाराज दीवान जी श्री जरावत सीघ जी वचनात
2. ग्रामीलान पग छै ग्रजबगढ़ फाफकर जोरावरसीघ वास
3. मेवाराम साई फतेराम दीसँ सु प्रमाद वाच्या श्रँठा का समाचार
4. श्री जी की कृपा भला छै ग्रापणा दीजें ग्रप्रंच या: सी सुख देव जी
5. नीरजनी कस्याने ···· ·· वीरा··········कोरईवाने जाइगा दयाराम
6. मालाव श्री जी का भोग मे फतली फौबना चढ़ायो छै सादी
7. जोका रीत का हजर करामती बागन (जकुर) करीबन 1578
8. पत्र कर दीयो ' .

(3) हसन खां की कथा—(ह० लि० प्रति, रचनाकाल लगभग 1525 ई०)

ग्रथ हसन खां की कथा प्रारम्यते[1]

नारायणस्यो विनती करौं । हाथ जोरि मनि ग्रस्तिर धरौं ।
ग्रौवलि सुरौ एक खुदाइ । पैगम्बर के लागौ पाइ ॥1॥

[

बडा पीर ख्वाजे अजमेरि । जिन तुरकाणा की सा फेरि ।
सेह गोह खाते वुरवार । ख्वाजे वंठा मान कुफार ॥2॥
सोरों शारद महा माइ । भूल्यो अखिर देहि समझाइ ।
विनाइग आखिर दै मोहि । गहो कान सिर नाऊ तोहि ॥3॥
कथा कहत मत लावहि खोडि । अखिर देहि जम कर्‌यो जोडि ।
नगर कझोता उत्तिम थान । नरसिगु मेउ कथै तह ज्ञान ॥4॥
तो वंकु ठह वासो लहो । जंसी वीती तैसैं कहो ।
घुर वेशाख वयासी भई । इब्राहिमु अरु बावरु लई ॥5॥
हू तो किहु हूवा सनमान । देखो किसो कथहिगो ज्ञान ।
लोक महाजन वैठे आइ । नरसिघु मरण‌इ लई बयो राइ ॥6॥
राज राज नित राहे हुए । भै कारणि को रोम्यो गए ।
मेह मिहालू ब्याही जोइ । ओडो पडै और की होइ ॥7॥
एतर दूनो दीजहि हारि । सवल होइ सो लेसै मारि ।
जसरथ रहे सवाई रोकि । वह रु जला सोभै महि ठोकि ॥8॥
रावण हो लका को राउ । औरहि देण न दे तो पाउ ।
चारि चौकडी मो वह दियो । मैं ही मुलकु सवायो लियो ॥9॥
गरव किये सीता ले गयो । श्रीराम कोपतर भयो ।
बदर खिडे अठारह कोडि । दशगिर मारे दशगिर तोडि ॥10॥

(4) लालदास की वाणी (जन्म 1540 ई०–मृ० 1648 ई०)[25]

लाल जी भगत भीख ना माघे, मागन आवे शर्म ।
घर घर हाडत दोख है, क्या बादशाह क्या हर्म ॥1॥

लाल जी साधू ऐसा चाहिये, धन कमाकर खाइ ।
हिरदे हर की चाकरी, पर घर कबहू ना जाइ ॥2॥

साधु एसा चाहिए, चौडे रहे बजाइ ।
की टूटे कै फिर जुडे, मनका धोखा जाई ॥3॥

लालजी हक खाइये हक पीजिये, हक की करो फरोह ।
इन बातो साहिब खुशी, बिरला बरती कोई ॥4॥

लाल जी घर कारो तो हल कारो, सुनो हमारी सीख ।
दोजक वै ही जाएगे, घरबारी मागे भीख ॥5॥

क्या मागते का मान है, मागे टुकडा खाई ।
कुत्ता जून हाडत फिरे, जनम अकारथ जाइ ॥6॥

बहते को बहजान दो, मत पकडाग्रो ठोर ।
समझाया समझे नहीं, दे धक्का दो भौर ॥7॥

सूरा तब ही जानिए, लड़े धणी के हेत ।
पुरजा पुरजा हो पड़े, तो ना छोड़े खेत ॥8॥

सो धन लालन साचडो, सो ग्रागे को होइ ।
काधा पीछे गाठडी, जात ना दीख कोइ ॥9॥

(5) शिलालेख—(वि० स० 1654, 1587 ई० ग्रजबगढ़, ग्रलवर)

1 श्री रामजी	2 सीधी श्री हजरती जी
3 प्रसीधो ग्रकबर ज	4 लालदीन जी म
5 हाराजा श्री दीवान मा	6 धो सघ जी सदा बाधो
7. सोम सागर ग्रनला	8 व मै माछलो वागो
9. रह जानवर छै सु को	10 ई हीदु मुसलमान
11 जनावर को मारे	12 है सु तीस को तलाब
13 छै वा सौगद हजरती	14 का छै गुनाहगार पर
15 मेसुर जी को होई	16. गौ सवत 1654
17 सन् 1038 लीप	18 जगदास कर
19. वाचें ताकू राम राम	

(6) शिलालेख—(वि० स० 1654 सन् 1587, ग्रजबगढ़ (ग्रलवर)[36]

1. सिधि श्री गनेसायनम । सवतु 1654 वर्षे साके 1509 प्रव
2 र्तमाने वसत रितौ महामागल्य प्रद माघ मासे क्रि
3. सन पछे प्रवनीक पुन्य तिथौ 1 सुके बासरे स्याम
4 सागर प्रथम ग्रारेंभु कीयौ काम चलायौ ठाकुर
5 सोमानायी जाति कौ ठाकुर मावन सुत दिली
6 राज जलालदीन ग्रकबर पातसाहि श्री ग्रावेरि म
7 हाराजाधिराज महाराजा श्री मानसीघ रा
8. ज कुछाहा जाति सालनदी महाराज श्री माधो
9 सिघ जी के प्रताप स्याम सागर सोमेनाई
10 कीयो ।

(7) लालदास जी का मुक्ता (लगभग 1648 ई०)

सदा सत की ग्रग्या पाऊ । श्री लालभगत की कथा सुणाऊ ।
पुर पटण मेरपुर बास सुथान । तहा डूगरसी साध ने कियो बखान ॥

प्रथम सुमरुं हर गुर साध । बाणी बकमो बुध अगाध ।
निसचे हो निरमल जस गाऊ । परम तत को मारग पाऊ ।।
परम तत पूरन जगदीसा । सो बैठो अतर घट बीसा ।
गाफल ढूढ पार न पावे । हर अपन जान कू मारग लावे ।।

दोहा–हर जन हर के लाल हैं, कल जुग के मैदान ।
आप ई ग्यानी निरता सुरता, आप ई करत वखान ।।
राम गुन गाइये ।। हरे ।।

सतजुग म सत रापो जान । हरचन्द भगत को करुं वर्णन ।
सुत त्रिया मिल कीयो साको । सत ई सत निस वासर भाको ।।
राजपाट ले सरवस कीयो । आयो बेच विप्र कू दीयो ।
जे अैसा सत राखे कोई । आवागवन मिटावे सोई ।।
चौरासी के पड़े न फन्दा । सदा सरन राखे गोविन्दा ।
जे आवे तो भगत कहावे । ताकी गत कोई बिरला पावे ।।

(8) शिला लेख—

(वि॰ 1729 सन् 1672, गुनाब बावडी, अजबगढ़, अलवर)[27]

1 श्री गणेशायनम सव
2 त 1729 वरषे माह सु
3 दी 2 गुरुवासरे पाति
4 साह श्री अवरगजेब
5 अजबगढ मध्ये महा
6 राजाधिराज महाराज श्री
7 दीवाण जी
8 रासे विजय राज्ये
9 रामलाल कला जाति
10 गुजरो तेजो जाति पुत्र
11 तत पुत्र नानाग तत्पुत्र
12 माना तत्पुत्र

(9) ताम्र पत्र—

(वि॰ स॰ 1755 सन् 1698 फजुब बाग, अलवर (श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा से प्राप्त)

1 री बात को उजर करा मीत "
2 ग श्री जी का भोग मैं सकल पक
3 ढायो छै सो पावै बाग को-सीलपा
4 रो दी सो श्रीजी के भोग लगावैसेवा स
5 ' गीरण करी आसीरवाद देवो करेगा
6 वैसाख बदी 8 स॰ 1755 मु अजबग (नकल खुल नकल बाग फजुब लीको)
7 ढ हुकम हजुर श्री मुषफरमायो छै।
8 उजरीद
9 बाग फुजब
10 लीको एक

(10) नकल पट्टा—

नकल पकल पट्टा मौ॰ घीरोड़ा (तीरथनाथ जोगी ज 101 बीघा स॰ 1755)[28]

श्रीरामजी

सीध श्री दीवाण जी श्री नामहार जी मीया साहेब जी श्री म.मैगार जी मीया साहेब जी श्री मैहमदउली जी बचना तं श्रामलान परगनै मानगढ़ै वा महमदाबाद मा श्रमानतीयाह है मुमतयाना है ईसती दसत गाई सधही जी तं मनै है सं सुपरसाद बचा श्रठामा समाचार भलाह है श्रापणा दीजो श्रपरचं तीरथनाथ जोगी मौ॰ जं धीरोडा मे हुजुर श्राय मेरी श्ररजं पोहीचाई जो भी श्राग जमीनो हम पाय श्राया हा सु श्रब हम उमैदवारं हा जुमावासु तीस उपर हुक्म हुवो जी की पीछै की सनद है सो दीपवायं सु सनद दीवाण जी श्री जीमी बीघा ईगोतर-संमी दीखलाई सी तीस पर हुकम हुवा जं श्राग की सनद माफं मैं जमीनं बीघाइ ईगोतर सं बदस्तूर साव मैं धीरोडा की दीई है सो हीया जा जी धीरोडा उगग्ह जाहा या कू जेया है मो दीया जावं। 101

ही बती राम सवत 1755 मापरक पे हे दीया जा जी श्ररसाल गुदरसनामा हासल सु ईनु सुमुजाई म मती हजी ई तभी तामीद तमाम जाण जं मीति श्रसाढ बुद 9 सवत 1755 का मकाम बीरमपुरी।

(11) **'भीक' के दोहे** (लगभग 1700 ई॰ पूर्व)—

('मीक', किफायतुल्ला सद्दिकी, नहू (गुडगाव) से उद्धृत)

रहमन के सुत च्यार हैं श्रब्दल हिम्मत दोय।
श्रौर मयारण हो तीसरो चौथो मीक कहत है मोये।
सूलण के सातर करै ककर लिये बिछाय,
निद्रा बैरण भीक जी हो बी पहोची श्राय।

करण देना बदगी धरण देना ध्यान,
निद्रा बैरण मीक जी हो मी पहोची श्राण।
मैने सूलण के सा'तर करे लटा बी बाँधी सोट,
इतने बी हर ना मिलो भीक जी है करनी मैं खोट।

चलते चलते पग थके भीकज द्वारे दूर,
खरची निमडी पग थके श्रब कोइ जाक कहे हजूर।
पाँच पचीसू। बस करो तीनु डारो मार,
कहु जिहान खाँ सुण मीक जी तोय जब दीखै हरद्वार।

श्रब चितराई सू खेलियो बाजू बद बचाय,
मोती को मोती रहै, मत हँस पियासो जाय।
कडवी जैसे नीम सी, मीठी जैसी ईख,
हम दाता कद लू हुए, हमने नाव धरायो भीक।

ईखज मैं सू उपजै सारी मेवा और मिष्टान,
तुम दाता गुण ने घणी तमकू सब मुसकल आसान।
जाको हो जो ले गयो पहोचो वाई ठौड़,
गयो लाल बगदो नहीं भीक जी लाख मचाओ रोल।

गठड़ी बाँधी जतन सू, रही पवन सू फूल,
गैठ जतन की खुल गई, भीक जी अन्त धूल की धूल।
भीकज द्वारो दूर है ढूढा ही सू पेस,
बिन ढूढै पावे नही भीक जी पी प्यारा को देस।

(12) प्रस्तर लेख — (वि० स० 1803 सन् 1746)[29]

1 श्री गणेशायनम	11 करवायो ······
2 श्री गुरुभ्यामनम	12 ·· कँडाको ···
3 श्री कुलदेवी ग्रासापुराम्या (म)	13 ·· ·· श्री महाराज जी श्री महा
4. नम ।। सवत 1803 मार्ग	14 स्यह जी की········
5 सिर बदी 1 गुरु वासरे (सिरी)	15 ····16 ···· ···17 · · ····
6 पातमाहजी श्री महमद सा–	18 · ·· ······· ···मा
7 ह जी विराजमान महाराजि	19 गसिरि सुदी 12 शुक्रवार
8 श्री महास्यह जी (····)	20 सपतदेवा जोसी (मदिर)
9 · ·· मदिरि श्री म	21 बालाम ।। शुभमहा
10 वानी जी चामुडा को स्थान	

(13) पत्र (सन् 1780)[30]

सीध श्री सरव वोपमा अनेक वोपमा लायक राव राजाजी श्री प्रताप स्यघजी जोग्य लिखत राज्य श्री बाहदर स्यघ जी के॰य मुजरो ओधार जो जी ग्रैंठा का समाचार भला छै आपका सदा भलाव चाहिजे जी अपरच हिजूर लछमनगढ पधार्‌या ही बात की वोहत पात्र जमा हुई और म्हेनो सारी ग्रह होजूर सु हाजर ही छा मीलवा मिलावा को क्यो अम्काव नही और आगै लो म्हाने या उम्मेद रहती जो हिजूर का मुमरी दुख देवो करे छे सो हिजूर के जाहर कीया सारो दुख मिट जासी अर अबका क या मालूम पगी जो हिजूर की मरजी सु ही दुख दिया मो अब जो हिजूर ने *जाणा बरुमनी छै सो ग्रं यह बकस जे जो कोई ग्रह की पड़सा उगैरह पलस न हो* कहवा ने तो छैद सात गांव छै और जो म्हाका मुदी होयला सो याही अरज करता होयला पैदायश होय सके नही और आगामूं परच को तसदीयो छै सो सारी हिजूर न मालुम ही होयली और म्हेतो हिजूर की मरजी माफिक ही छा कोई भाति जुदो न जाणोलाव और जो छोटा भाई सारा ही अरज करता होयला जो यांके छ सात

गाव छै सो वो म्हांके तो हिजूर का बकस्या छै अब जो मरजी होय सो जागा बकस जे घर मे तो पड़सो नहीं ग्रोर बोहरो छै नही तरदुद कुण त्रह बण सकै येक गाव को तरहुद बण ग्रायो छो सो ही हिजूर का मतसद्दया उन्ही गाव सु खलस करी जै उ सु-खलस न होतो तो ग्रबका के सारा गावा को तरजुज हो जातो ग्रोर बिना मरजी दरबार की तरजुज करो नहो जो म्हान जागा पाँच हजार की देणी होय तो मैं सू ग्राधी बक्स जे ग्रोर निपालरा बकसं ग्रोर म्हे सारो यह रजू छा ग्रोर म्हे थोरी ही जागा मे ग्रपत्यार कीयो छै षाविन्दा का म्हरवानी चाहिये ग्रठे सारो हुकम प्रताप हीजूर को ही जाणो मिती जेठ बदी 12 सवत् 1837 का।

(15) पत्र (सन् 1794)[31]

राज्य 'स्ही' श्री इन्द्रसघ जी जोग्य लीखत माहाराव राजा बखतावर स्यध केन मू जरो बच्या ग्रप्रची राज्य महा सामिल रहैबो वीचार्यो सो राज्य की जायगा छुटी सैं सो दरया ग्रोर राज्य के लठाद'र बैठिछो सो न बैठसी ग्रोर ग्रबाबदस्तूर लागे छो सो न लैंस्या ग्रोर देसी परदेसी ने पइसा दीणा ग्रावतो राज्य सू दावो नही नैं तो थासू मेह मांगा ग्रोर पैलाने पावा नही ग्रोर गढी राजगढ का गढ के लारी छैं ग्रोर बाकी जायगा नै कोई छुडावे तो ऊसू म्हे पहला तो जुवाब करा ग्रोर न्ही मानै तो लडा ग्रादमी राखा दारू गोलीरू सरजाम लागै सो मेह लगावाँ सीपाह नै खरच थां जी सीवाय छुटी जाय तो गढी स्यार की जायगा थां ई तो बाल लीखो छ्ं ज्यां मे तफावत नही पडसी म्हाके थांके बीच श्री सीताराम जी श्री सूरज जी श्री गगाजी छं या सू कोई त्रह वा नहीं थाका येक बोरया परी मन-चलावां तो म्हानें म्हांका इसर को सोगद छं मांहां को राज रहे जेतं ये थांकी खातर जमा राखो सावीक जमीती स महां सामील रहो मांहां कै थांके मरजाद ग्रागा सू छं जी ही माफीक थानें राखां मी० चैत बुदी 9 स्मत 1851।

(14) जाट की काहाँणी[32]

एक जाट थो वैह के एक भऊ थी ग्रर एक भैंस थी। जाट जायो करतो हल जोतण। वैह की भऊ गैल सैं सीचडो रांध कर थी गेर कर खाती। पीछै निलां को पालो करकै खाती। तीसरी एक रोट पोनी एक रोट। वो भूमल में दाब देती। वो सिक जातो जब खाती। चौथां भू दती धांणी फेर चाबती। इतनां में हो जाती साँझ वैह को खसम फेर ग्रावतो हल जोतकर। फेर सरकी बिछाकर ऊपर लतो गेर कर सो जाती। मगराने दाबकर करोट लेती। तुलियां कडकती फेर ग्रपणा खसमने कहती मेरी तो नस नस कडके हैं। किते बूझा करवा केंहीं स्योणा कनें जाकर। कोई क दिन सुणतो हो गया जाटने। रोजीना की यो ही हाल करैं। एक दिन जाट बूझा करवावण चाल्यो। वैह की पडोसण बोली इट जा इत ही। मेरा

घर मैं बैठ जा ऐ हने तू देखतो रह्यो । यो तो रांड झूठी है । पाडौसण की रावटी पर वो बैठ गयो । अपणा घर मांऊ वो देखतो रह्यो । फेर वैह की भऊ नैं खीचड़ी रांधी फेर घी गेर कै खायो । फेर तिलां को पालो करके खायो । फेर भूभल मैं रोट सेक कर खायो । चौथां घाणी भू द कर चाबी । फेर सरकी बिछाकर सो गई । फेर वैह को खसम आगयो । फेर वैह की भऊ बोली के बूझा करवायायो के । कैना । वो बोली कै वयो । कै सौण ना हुया । कै वयो ना हुया । के सांप मिलगो । कै कैसो । कै कालो । कै कैसो कालो । कै ऐसो कालो जैसो तिलां को पालो । वैं कैहन्दा चाले । के ऐ हन्दा चाले जैहन्दा खीचडी मे घी हालें । कै कैसो मोटो । कै ऐसो मोटो जैसो भूभल मेलो रोटो । कै कैहन्दां जाणी । कै तैं चौथा भू दी घाणी मैं ऐ हदा जाणी । जब वो जाट लेकर घेसलो खूब पीटी ।

(16) लोक कहाणी[33]

कहीं आदमी-कै दो बेटा हा । उन मैं तैं छोटा नैं अपणा बाप तैं कही बाबा धन-मैं तैं मेरा बट को आवैं सो मूनें बांट दे । वैह नैं अपणा धन उन-नैं बांट-दीयो घणा दिन नांह हुया जब छोटो बेटो सब धन लेकर पर-देस-मैं चल्यो गयो । अर उत जाकर सब धन कुगैले चलकर बिगाड दीयो । जब वैह-नैं सारो धन बिगाड़ दीयो जब वैह देस-मैं भौत मार्यो काल पडयो अर वो कगाल हो गयो । वो गयो अर वैह देस-का रहण-वाला था उन मैं तैं एक के रह्यो । वो वैह-नैं अपणा खेतां मैं सूर चरावण नैं खदायो । जो बरछा सूर खाय-हा उन तैं वो अपणा पेट भरणा-नैं राजी थो । कोई आदमी वैह नैं किमैं बी नाय देतो । जब वैह-नैं सूरत आई उन कही मेरा बाप-का नौकरां नैं रोटी घणी अर मैं भूको मरू हूँ । मैं उठूगो अपणा बाप के कनै जाऊ गो अर वैह ने कहूँगो बाबा मैं ईसुर को पाप करयो अर तरो पाप करयो अर तेरो बेटो कहण लायक नाय । तेरा नौकरां मै मूनें भी राख नें । वो ऊठ्यो अर अपणा बाप कनै आयो । वैह को बाप वैह दूर ही तैं आवतो दख्यो । जब वैह नैं दया आई । जब दोडकर गले लगायो अर वैह नैं चूमण चाटण लाग्यो । बेटे वैह नैं कही बाबा मैं ईसुर को पाप करयो अर तेरो पाप करयो अर तेरो बेटो कहण लायक नाय । पर बाप नौकरां तैं कही आछ्या कपडा ल्यावों अर वैह नैं पहरावो । वैह का हाथां मैं गूठी पहरावो अर पागा मैं जोडो पहरावो । हम खां पीवा अह खुशी करां । क्यू यो मेरो बेटो मर गयो छो जो फिर-कै जीयायो है । जातोरहयो थो सो पा गयो । अर वे खुशी करण लाग्या ।

वैह को बडो बेटो खेत मैं हो । वो आयो अर घर कै नीडै आयो जब वो गावण बजावण और नाचण्यू सुण्यू । वैह नौकरां मैंतै एक बुलायो अर वैह नैं पूछा यो के बात हो रही है । उन वैह तैं कह्यो तेरो भाई आयो है अर तेरे बाप

नदी का बीच माँ पोंच्या जब ऊँट नें कई, भाई ला मोकू लुटलुटी आवें । जब स्याड नें कई, भाई ला थोडी सी दूर मौर चल ।

ऊँट नें नई मानी । बु लुटलुटी मार गयो । स्याड सो बह गयो । वा के साथ वा नें बदी करी तो वा की सजा मिल गई ।

(19) मरजी है करतार की (कविता)[36]

कठ घोटणियाँ सवत पडगो मरजी है करतार की ।
धरती का रूखडा सूखगा, आँमर लीलो कच्च है ।
धणो अबीडो औसर दखियो, अक्कल सब की जच्च है ।
धच्च मलीदो हवा हो गया है, टुक्न का बी लाला है ।
चणा कुटकबा कु न रहा है, कैसा नरम निवाला है ।
आज नाज का तोडा मे ही फली खा रहा ग्वार की ।
चोतीसा, छप्पन्या सू बढ के तेईसा की छाप है ।
भूखा डगर दाँत घिसै है, या भारी सन्ताप है ।
सिरस्यू का भरमाया वाडी—गाफल रहा सह्र मे ।
अब आँमर सू छिटक पड्या तो अटक्या अधर खिजूर म ।
या चक्कर सू जो बच जावें सैनक दै सालार की ।
मन चीती तो मन मे रहगी, बरत गई मालक चाई ।
गिणी चुनी-सी बूँद सिमट के नांगल चबल मे आई ।
ओलाती सूखी की सूखी आँखन मे बरसात है ।
अब जो मालक म्हैर करै तो, बणजाय बिगडी बात है ।
कुण लू दोष लगावें दखियो ठसक गई घरबार की ।

☐ संदर्भ-संकेत

1. पा स म, उपद्धात, पृ० 44, (2) पु रा, पृ० 6, (3) वही ।
4 मू पा. 1, (5) अ व्या, पृ० 18, (6) मू पा 1, (7) वही ।
8. अ सा इ., पृ० 16, (9) रा मा पृ० 33 ।
10 क ना. ग. म्यु, अलवर (1960-61) पृ० 12, (11) पु रा, पृ० 10 ।
12 देखिए मू पा., (13) द हि उ वि, *श्रीराम शर्मा*, पृ० 19 ।
14 'मीक', किफायतुल्ला सद्दिकी, नूह (गुडगाँव), पृ० 4 ।
15. क. भा. ग म्यु अलवर, (1960-61), पृ० 26, शिलालख स० 3,32,35 37 ।
16. हि. ग्रा अ, तगारे, पृ० 27 (भूमिका), (17) लिगमन-त्रम्-84/445 ।

18 प्रा व्या, परि० पृ० 680, पूना प्रकाशन, (19) म. प्र. हि. सा, पृ० 10

20 रा भा, भाग 3, ग्र क 3–4 जुलाई 53 (21) लि स इ, भाग 2, ग्र थ 9

22 ग्र रा. ग, ग्रसाधारण ग्र क, सख्या 19, 10 जून 1927, जि० 19।

23 शो प, वर्ष 18, ग्र क 1, 1967, प्रस्तुत लेखक कृत 'पूर्वोत्तरी राजस्थानी एव उसकी विशेषताए' (लेख)।

24 म भा (पिलानी), वर्ष 16, ग्र क 3, ग्रक्टू० 68, प्रस्तुत लेखक कृत 'मेवाती का सक्षिप्त व्याकरण'।

25 ग्र ग, पाउलट, पृ० 56।

26 ए.री. रा म्यू ग्रजमेर, 1918–19, पृ० 4 शि० स० 17।

27 स्व० डॉ० रा. च राय के सग्रह से

28 पुरा० बीका० –स० 590 फा० 137। सूची न० 17। फहरिस्त 1 मय 7 किताब पट्टा कौरा।

29 नीमराना (ग्रलवर) मे प्राप्त प्रस्तुत लेखक के सग्रह मे।

30 पुरा बीकानेर, ग्रलवर, 3, जावली, पृ० 14

31 वही पृ० 20 (32) स्पे डा स्पो मैक्लिस्टर, 1998 ई०

33 लि स इ, ग्रियर्सन, 1899 ई. ग्र थ 2, भाग 2।

34 'ग्रामीण गीत सग्रह', विजय मदिर, निजी पुस्तकालय, ग्रलवर।

35. ब्र भा, धीरेन्द्र वर्मा, 1964 ई०।

36 गगन ज्योति, (साप्ताहिक), वर्ष 1, ग्र क 3 ग्रलवर, 19 दिस०, 1966।

□

चतुर्थ अध्याय

ध्वन्यात्मक–विकास

मेवाती मे अधिकांश ध्वनियाँ अपभ्रंश (<प्रा० < स०) से ही आई हैं। साथ ही कुछ नई ध्वनियाँ आधुनिक काल मे विकसित हुई है। कुछ विदेशी ध्वनियाँ (अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि) भी समाहित हो गई हैं।

मेवाती मे और ध्वनियाँ तो अपभ्रंश के समान ही रही, परन्तु ऐ-औ जो पालि, प्राकृत और अपभ्रंश मे सयुक्त स्वर नही थे, पुन सयुक्त स्वरो की तरह प्रयुक्त होन लगे। तत्सम शब्दो के अतिरिक्त व्यजनो मे 'ङ' ध्वनि का लोप हो गया है। 'ञ' का स्थान अनुस्वार ने ले लिया है। डा० वर्मा ने ड़, ढ़, व्, न्ह, म्ह को हिन्दी एव उसकी बोलियो की नई विकसित ध्वनियाँ माना है। परन्तु वस्तुतः ये ध्वनियाँ भी नई नही मानी जाती। इनमे से 'व' वैदिक काल से प्रचलित रहा है, ड़, ढ़, का प्राकृतो मे प्रयोग होने लगा था। न्ह और म्ह अपभ्रंश के उत्तर काल मे प्रयुक्त होन लगे थे।[2] लेखन मे कही-कही पुनः तालव्य 'श' का प्रयोग तत्सम शब्दो के लिए किया जाने लगा था, यथा – 'शनिदिन', 'शर्म', शारद, श्रीरामजी। मेवाती मे ड़ और ढ़ से अलग ड और ढ ध्वनियो का प्रयोग नही होता। ये ड़ और ढ़ से व्यक्त की जाती हैं। हिन्दी आदि मे कुछ फारसी ध्वनियो का भी प्रयोग होने लगा था, यथा क़ ख़ ग़ ज़ फ़। लेकिन इन ध्वनियो को भी मेवाती मे इस रूप मे स्वीकार नही किया और ये भी क् ख् ग् ज् फ् की तरह ही उच्चरित की जाती हैं। कुछ अरबी–फारसी जानन वाले ही सीमित क्षेत्र मे इनका प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी के प्रभाव मे हिन्दी में 'ऑ' ध्वनि का प्रचलन मिलता है, परन्तु मेवाती मे इसके स्थान पर 'ओ' का ही प्रयोग मिलता है, यथा— कॉलेज > कोलीज। ऋ–की जगह 'रि' उच्चरित होता है। मूर्द्धन्य 'ष्' का प्रयोग लिखने मे तो ष् ही मिलता है, परन्तु बोलने मे 'ख्' उच्चरित होता है। आषाढ > आसाढ, षदाये > खदाये, सिष > सिख आदि। वैसे ऊष्म ध्वनियो मे केवल 'स' ध्वनि का ही आधिपत्य रहा है। सयुक्त व्यजनो मे ण का उच्चारण भी अनुस्वार या न् के समान होना है। स्वतत्र रूप से 'ण्' ध्वनि का खूब प्रयोग होता है, यथा खाणो, पीणो, न्हाणो, धोणो आदि।

ल का प्रयोग मेवाती की अपनी विशेषता है। पश्चिमी राजस्थानी में भी इसका प्रयोग होता है, परन्तु पश्चिमी हिन्दी की ब्रजादि में इसका प्रयोग नहीं होता। अनुस्वार का प्रयोग अपभ्रंश जैसा ही है। मेवाती में दो ध्वनियाँ नई विकसित हुई—'व्ह्' और वर्त्स्य व्यजन 'न्ह्'—का प्रयोग तो हिन्दी मे कही-कही सुनने मे आता है परन्तु 'व्ह्' ध्वनि मेवाती की अपनी है। ङ्, ण्, ल् ध्वनियों का आदि-प्रयोग कभी नही होता।

☐ मेवाती-ध्वनियाँ—

(अ) स्वर

मूल स्वर—मेवाती की निम्नांकित मूल-स्वर ध्वनियाँ है—

(क) ह्रस्व — अ, इ, उ।

(ख) दीर्घ — आ, ई, ऊ, ए, ओ।

(ग) सयुक्त — ऐ (अई), औ (अऊ)।

स्वरों का वर्गीकरण जिह्वा का कौन-सा भाग (अग्र, मध्य पश्च) कितना उठता है (सवृत, अर्द्धसवृत, अर्द्धविवृत, विवृत) के आधार पर किया जाता है। मेवाती स्वरों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

	अग्र	मध्य	पश्च
सवृत	ई	–	ऊ
	इ		उ
अर्द्ध सवृत	ए		ओ
अर्द्ध विवृत	ऐ	अ	औ
विवृत	.		आ

यहाँ मेवाती की प्रत्येक ध्वनि की उच्चारणगत विशेषताएं प्रस्तुत की जा रही है—

☐ इवर—अ यह अर्द्ध विवृत मध्य ह्रस्व स्वर है। इसके उच्चारण में जिह्वा का अग्रभाग निम्न दन्त मूल को छूता है तथा मध्य भाग कुछ सिकुड़ कर थोड़ा ऊपर उठ जाता है। होठ कुछ खुल कर फैल जाते हैं। शब्द के आदि इसका स्वतंत्र प्रयोग होता है तथा मध्य एव अन्त मे व्यजन मिश्रित हो कर आता है। उदाहरण के लिए—अग (कि), अग्गा (आगा), अहे (अगाड़े), अटको (अटका), अग्गाम (आराम), अरजन (अर्जुन), अस्थान।

आ—'आ' विवृत पश्च स्वर ध्वनि है। परन्तु 'अ' और आ' के मध्य उच्चारण स्थान का अन्तर स्पष्ट है। इसे निम्न अवृतमुखी दीर्घ पश्च स्वर भी कहा जा सकता है। 'अ' की तुलना मे 'आ' के उच्चारण मे जिह्वा पसर कर नीचे दब जाती है। होठ अधिक फैल जाते है। कोई अन्य स्वर इतना अधिक विवृत नहीं होता। इसका प्रयोग शब्द के आदि, मध्य एव अन्त मे होता है। *यथा—आपणा* आछी, आजायो, आया।

इ—संवृत ह्रस्व अग्रस्वर है। नीचे का होठ उच्चारण करते समय कुछ नीचे झुकता है। संवृतता की दृष्टि से इसका उच्चारण स्थान 'ई' से कुछ नीचे है। इसके उच्चारण मे जिह्वा का अग्रभाग ऊपर उठ जाता है। इसका प्रयोग भी आदि, मध्य, अन्त्य स्थितियों मे होता है। यथा—इन, इकन्त, इक्सार, इक्याणवे, इतवार इल्लिल्ला, उलि (वली), किवाड, औलिया, कमिराय (कविराय) आदि।

ई—संवृत, दीर्घ अग्र स्वर है। उच्चारण के समय दोनो होठ ह्रस्व इ की *अपेक्षा अधिक खुल जाते हैं तथा दाँत अधिक पास आ जाते हैं। जिह्वा का मध्याग्र* भाग कठोर तालु की ओर ऊपर उठ जाता है। यह आदि (ईसुर, ईद, ईख), मध्य (कीनो-किया, खीचडी, खीप) तथा अन्त्य (खालडी, खिलारी, खसवोई, खनाई, भेजी) तीनो ही स्थितियो मे प्रयुक्त होता है।

उ—संवृत, पश्च, ह्रस्व, वृतमुखी है। इसका स्थान 'ऊ' मे कुछ निम्न है। दोनो होठ गोलाकार होकर आगे आ जाते हैं। जिह्वा का पिछला भाग उठता है। यह आदि (उछटगो, उजर, उजालो, उडावणी, उत्तिम, उबीनी (बिना पहने), मध्य (कुठौड, कुणक, कुबद, कुर्रुन, कुरसी, कुटुम, कुराहडा), और अन्त्य (चाउ (चाहे) परेलु (परली तरफ)), तीनो स्थितियो मे प्रयोग होता है। मेवाती मे फुसफुसाहट वाली 'उ' ध्वनि नही है।

ऊ—*यह* संवृत, पश्च, वृतमुखी, दीर्घ स्वर है। इसके उच्चारण मे 'उ' *की अपेक्षा होठ बन्द होते हुए अधिक गोल हो जाते हैं। दोनों होठों के बीच बहुत* बारीक सा छिद्र रह जाता है जिससे हवा निकलती है। जिह्वा का पिछला भाग उठ कर कोमल तालु के समीप पहुच जाता है। यह सभी स्थितियो मे पाया जाता *है, यथा*—आदि-ऊत (मूर्ख), ऊघन्ते (उगते हुए), ऊ (वह), ऊठ (उठो), मध्य—कूब, चून, काढूंगी, कूवो, कूदा, चूल्हो, चूमण (चुम्बन), छूछक, जादूवस, भूंटमाठ, भूभल (गर्म राख), रूम (रोम), कूरडा (मिट्टी का बर्तन) तथा अन्त्य—उ गेनू (उधर को), काढ़ू (काढ़ू), कैरू (कौरव), गोखरू (गहना विशेष), घोघू (उल्लू), चानणू (चादना), तलछू-मल्छू (लडफना), ताड़ू (प्रताडना), तोड़ू (तोडना), नजू (रस्सी) बहुलेऊ, बीछू (बिच्छू) आदि।

ए—अर्द्ध सवृत, अग्र, दीर्घ स्वर है। इसके उच्चारण में होठ 'इ' की अपेक्षा अधिक खुलते हैं। जीभ का अग्रभाग कुछ उठा रहता है। मेवाती में इसका सभी स्थितियों में प्रयोग होता है। यथा—आदि-एक, एंटी (एडी), मध्य-कचेडो (कचहरी), केलो, खेतवाडो, खेलवा, गेर डालना[1], घेमलो (लट्ठ), चेपा (सरसू का कीडा), जेवडो (रस्सा), झेला (सिर पर बाँधने की डोरी), टेरालीन तेलण, अन्त्य-कये (कहे), कने (पास), धोए (पास), पेहले (पहले) सूके, (सूखे)।

मेवाती मे हिन्दी की तरह 'ए' के साथ कभी-कभी 'य्' श्रुति भी सुनाई देती है। यथा—येक। 'ए' के साथ 'य्' श्रुति दक्खिनी मे भी है।[3]

औ—अर्द्धसवृत, वृतमुखी पश्च स्वर 'ओ' के उच्चारण मे दोनो होठ सिकुडकर गोल हो जाते हैं (ऊ की तरह नही) परन्तु बन्द नही होते। होठो के मध्य रहने वाला छेद 'ऊ' के उच्चारण वाले छेद से बडा होना है। कही-कही 'ओ' के साथ 'व्' श्रुति भी आ जाती है, यथा—वोढे (ओढना)। अंग्रेजी के तत्सम शब्दो मे लिखित 'ओ' का उच्चारण भी 'ओ' होता है, 'आ' नहीं यथा—कालेज > कोलीज, नोलीज आदि। मेवाती मे यह मूल स्वर है। हिन्दी मे संस्कृत परम्परानुसार इसे सयुक्त स्वर माना जाता है, परन्तु वस्तुत मूल स्वर है।[4] इसका सभी स्थितियो मे प्रयोग होता है—आदि-ओखड (रस्सी का कुए के चाक से उतरना), ओगण, ओड (सिरा), ओछा, ओझू (दुबारा), ओरा (बीज डालने का), ओलिया ओसरो (वारी), ओसान (मौका), मध्य-कोस, कोर (कण्डा), कोय (कोई), कोठो (कमरा), कोचरी, खोड (शरीर), खोस (छीन), गोस (गोश्त), घोघू (उल्लू), चोला (धान्य विसेष), छोरेट (बच्चे), जोधिया योद्धा), अन्त्य-कोडो (निकालो), कागलो, काँटो, गाँठो (परवाह), घेसलो (लट्ठ), चसो (जलाया), छैलकडो (गहना), धाडो (लूट), पगो (ईख का टुकडा), बदनो (लोटा), भेलो (इक्ट्ठा), रोडो (पत्थर)।

ऐ—मेवाती मे ऐ' का उच्चारण सध्यक्षर (Dipthong) की तरह नहीं होता। दक्खिनी की तरह मेवाती मे यह मूल स्वर की तरह उच्चारित होता है। लेकिन कभी-कभी ब्रज और हरियानवी की तरह सध्यक्षर-सा भी उच्चारण सुनाई देता है। यह अर्द्ध विवृत दीर्घ अग्र स्वर है। जीभ के दोनो पार्श्व तालु का किंचित स्पर्श करते हैं। डा० कादरी 'ऐ' को सयुक्त स्वर नहीं मानते। वे इसे स्वतन्त्र स्वर मानते हैं।[5] डा० चटर्जी,[6] तथा तिवारी[7] भी इसे मूल स्वर ही मानते हैं। लेकिन डा० धीरेन्द्र वर्मा का कहना है कि 'ऐ' साधारणतया संयुक्त स्वर है किन्तु उन्हें बोलने में कभी-कभी मूल ह्रस्व स्वर 'ए' के समान इसका उच्चारण हो जाता है।[8] मेवाती मे इसका सभी स्थितियो मे प्रयोग होता है, यथा—आदि-ऐसो, ऐठो (ऐंठा)

नैचा (हुक्के का), पैना (तेज), पैला (परले), फैशन, कहैए, कैबार (कितनी बार), गैल (रास्ता), जै (यदि), टैम (टाइम), मैमता (नशे मे), सैल (पर्वत), कैरू (कौरव), कैरी (कच्चा ग्राम), कैसो, खैर, खैरात, गैड (गरुड), अन्त्य–करै, भै (डर),जुडै (जुडता), डोलै डुलकै (घूमकर), डूबै ग्रादि।

ग्रौ—यह ग्रर्द्ध विवृत दीर्घ पश्च स्वर है। 'ऐ' के समान यह भी मूल स्वर ही है। दक्खिनी मे भी यह स्वनग्र मूल स्वर है। इसके उच्चारण मे दोनो होठ सिकुडते है। कुछ विद्वान इसका उच्चारण मूल स्वर 'ग्रो' जैसा मानते हैं। मेवाती मे इसका उच्चारण ग्रन्त्य के ग्रतिरिक्त सभी स्थितियो मे होता है—ग्रादि–ग्रौवलि, ग्रब्बल, ग्रौतार (ग्रवतार), ग्रौसर (ग्रवसर), ग्रौखात (ग्रौकात),। मध्य–पौवाँ, चौगुडदे (चारो ग्रोर), चौथ (चतुर्थी) नौथरण (नौ लडियों का), नौसा (दूल्हा), चौपड, चौपा (चौपाया, चौमासो, धौरण (बीस सेर), धौला, नौती (न्यौती)।

मेवाती का प्रत्येक स्वर सानुनासिक है। ग्रनुनासिक ग्रौर निरनुनासिक स्वर सर्वथा भिन्न है। इसके कारण शब्द ग्रौर ग्रर्थ भेद हो सकते हैं। यथा— हस-हँस।

ग्रनुनासिक स्वर ग्रनुनासिक स्वरो का उच्चारण स्थान तो वही रहता है परन्तु कोमल तालु ग्रौर कौवा नीचे झुक जाते हैं। इससे हवा मुख के ग्रतिरिक्त नाक से भी निकल जाती है। परिणामत: स्वरो मे ग्रनुनासिकता ग्रा जाती है। उदाहरणार्थ—

	हिन्दी	मेवाती
ग्रँ—	गजी (नाप की)	गँजी (गुड के मीठे चावल)
	गडी (जमीन मे दबी)	गँडी (मोर पखो का गहना)
	मगर (लेकिन)	मँगर (पीठ)
ग्राँ-	पाव (पाव भर का नाप)	पाँव (पैर)
	साटो (बदला)	साँटो (लकडी से बँधा चमडा)
	टाडा (माँड या रभाना)	टाँडा (गायो का समूह)
	साठ (साठ की सख्या)	साँठ (पैर का गहना)
इँ—	शृगार (सजावट)	सिगार, (सहार)
	सडासी (लोहे का चिमटा)	सिडासी (सन्यासी)
ईँ—	ही (ग्रव्यय)	हीँ (यहाँ)
उँ—	गुजारा (निर्वाह)	गुँजारे (चिघाडे)
ऊँ—	कूडा (कचरा)	कूँडो (मिट्टी का बर्तन)
एँ—	फेटा (फेटना)	फेंटा (बैलो के सीगो मे बाँधने हेतु

'ख' को छोडकर समस्त ध्वनियाँ पश्चिमी हिन्दी की बोलियों मे मिलती हैं। ल और ण राजस्थानी की विशेषता है। ण का प्रयोग तो व्रज में भी मिलता है।[1] परन्तु ल का प्रयोग पश्चिमी राजस्थानी के ही प्रभाव के कारण है। लेखन मे इस 'ल' का द्योतन ल' के नीचे नुक्ता लगाकर किया जाता है।, ह्‌ मेवाती की अपनी ध्वनि है। यह इसकी प्रधान विशेषता है।

☐ व्यंजन—स्पर्श : कण्ठ्य- क् ख् ग् घ्

क्—यह कोमल तालव्य अल्पप्राण, अघोष, स्पर्शव्यंजन है, जिसका उच्चारण तालु और जीभ के अंतिम भाग के छूने से होता है। प्रा० भा० आ० भाषा (संस्कृत) मे क वर्ग का उच्चारण काफी पीछे कण्ठ से होता था। इसलिए यह कण्ठय कहलाता था। मेवाती मे अरबी फारसी की 'क़' ध्वनि का उच्चारण भी 'क्' की तरह ही होता है। अब 'क्' कण्ठय ही अधिक है, हाँ इसका स्थान कुछ आगे अवश्य हो गया है। इसका सभी स्थितियों मे प्रयोग होता है—

आदि—कडाह, कछवा (कछुवाहा), कफन, कबाब, कपूर, कबूल करवो (मिट्टी का बरतन), कलजुग, कलोठ (करवट)।

मध्य—अकोड़ (रिश्वत), चकोर, चकना (विदेशी)।

अन्त्य—आसक (आसिक), छूछक, धलक (भटका), रडक (ईर्ष्या),।

ख्—उच्चारण स्थान की दृष्टि से क्' और 'ख' के उच्चारण म कोई अन्तर नही है किन्तु यह अघोष महाप्राण है। फारसी अरबी का सघर्षी 'ख़ भी मेवाती मे 'ख्' ही उच्चारित किया जाता है। इसका प्रयोग भी सभी स्थितियों म किया जाता है—

आदि—खई (कही), खटपाटी (आमनपाटी), खता, खपरो (कीडा), खरक (बकरियो का स्थान), खलकत (भीड) खलावर (धोकनी), खवायो (खिलाया), खव्वँ (कधा), खसम।

मध्य—गोखरू (गहना, तखदीर (तकदीर), दक्खण, निखड (पूरा), बिखातण (बिकना) दरखत (वृक्ष), माखो।

अन्त्य—तमाखू, मिखो (बनवास) सम्मख (सम्मुख), अलख, कुख (कोख)।

ग्- इसका भी क् ख् क समान ही उच्चारण होता है किन्तु यह अल्प प्राण सघोष स्पर्श व्यंजन है। अरबी–फारसी 'ग़' का उच्चारण भी मेवाती मे इसी प्रकार होता है। यह भी सभी स्थितियों मे पाया जाता है।

आदि—गलैंठी (दूध निकालने का पात्र), गजब, गफलत, गदूका (वस्त्र विशेष)।

मध्य—चुगलखोर, तगादा, कागलो, जगतण (रंडी), भगडो, दगडो (रास्ता)।

अन्त्य—उमग (उमग), कलयुग कातग, खड्ग, दोजग, नागौ।

घ—इसका उच्चारण भी अन्य कण्ठ्य ध्वनियों की तरह होता है। यह महाप्राण सघोष है। सभी स्थितियों में इसका प्रयोग होता है। यथा—

आदि—घड़ो (घड़ा), घमला (गमला), घोघू (उल्लू)।

मध्य—लघण (व्रत), हगाई (मल त्यागने की इच्छा), उघटो (उद्घाटित)।

अन्त्य—जांघ, बाघ।

☐ मूर्द्धन्य—ट् ठ् ड् ढ्

टवर्ग (ट् ठ् ड ढ्) मूर्द्धन्य स्पर्श ध्वनि समूह है। योरोपीय भाषाओं में मूर्द्धन्य व्यंजन ध्वनि का अभाव पाया जाता है। इन ध्वनियों का आगमन आर्यों के भारत आगमन पर अनार्यों (द्रविडादि) के सम्पर्क से हुआ है। वैदिक काल में इन ध्वनियों का बहुत कम प्रयोग पाया जाता है। श्री शेष गिरि शास्त्री[9] का कहना है कि 'आरम्भ में संस्कृत भाषा में ट ठ ड ढ ण, श, ष ल अक्षर नहीं थे। प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएं मूर्द्धन्य उच्चारण से सर्वथा अपरिचित थी। आदिकालीन शुद्ध आर्यों के अनेक समुदायों में बँटने के पश्चात् ये ध्वनियाँ कुछ आर्य भाषाओं में समाविष्ट हुई।" बीम्स [10] और वर्मा[11] का भी यही मत है। इनका उच्चारण जिह्वा के अग्र भाग को किंचित् मोड़कर मूर्धा का स्पर्श करा कर किया जाता है। मेवाती में अंग्रेजी का ट (T) और ड् (D) ध्वनियाँ भी या तो मूर्द्धन्य होती हैं या फिर दन्त्य।

ट्—अल्पप्राण, अघोष, मूर्द्धन्य ध्वनि है। इसका सभी स्थितियों में प्रयोग होता है। यथा—

आदि—टोनो, टरालीन, टाप, (टयूर), टेसण (स्टेशन), टाल (बैलों के गले की घंटी), टामरो (बेकार), टिक्ट टूक।

मध्य—घटको, कटोरी, कुटुम, टैक्टर, टोटरू (पक्षी का नाम), दुहिटल, (युधिष्ठर), बटण (बटन), आटो।

अन्त्य—करोट, खटपाटी (खाटपाटी), गुमट (ईर्ष्या), गोरमिंट, घाट (मिगोकर कूटे हुए जौ), छोरेट (बच्चे), जाक्ट (वेस्टकोट), पौट, फोस्ट (निरालिस)।

ठ्—अघोष, महाप्राण है। यह आदि-ठगो, ठाडो, ठाठ, ठाकुर, ठाँण, ठिकाणो (रिश्तेदारी), ठोठ (मूर्ख), ठोड (स्थान), गट्ठड (ठठरी), ठाड (जबरन) मध्य-कठण (कठिन), कठला, जिठाणी तथा अन्त्य-क्लोट, काठ, गूठो चोसठ, भूठमाँठ, मोठ, साँठ, (पैर का गहना), तीनो स्थितियों मे प्रयुक्त होता है।

ड्--अल्पप्राण, सघोष स्पर्श व्यजन है। यह-आदि-डूगर, डूबण, डिडावै, डाटो (रखा), डहला (खाट वडी) डूहा (दोहा), डोकरी (बुढिया), डोढी, डोर, मध्य- गडबो, टोडरू (पक्षी), पडरेट (पड्डा) तथा अन्त्य-डड, गैंड (गरुड), ठडा, पडू, पडत, लाडू, साड (आषाढ़), ढाढी, (जाति विशेष), मूडों, तीनो स्थितियो मे प्रयुक्त होता है।

ढ्—महाप्राण, सघोष, मूर्धन्य स्पर्श। मेवाती मे यह आदि-ढाडी, ढब्बर गड्ढा, ढूमला (मिट्टी का बर्तन), ढूमरी (बर्तन), ढैम (मिट्टी का ढेला), ढोक्ला (दही बिलौने का बर्तन), ढोमरी (मिट्टी का बर्तन), ढोर (पशु), ढोलकी, ढोनो। मध्य-पढतम (पढाई), बढार, तथा अन्त्य-काढो, गाढो (कठिन), दिढ (दृढ़), बोढी (ओढी), चढ, बाढ (ईख), साढ (आषाढ) तीनों स्थितियो मे प्रयुक्त होता है।

□ दन्त्य त् थ् द् ध्

तवर्ग दन्त्य स्पर्श व्यजनो के उच्चारण मे जीभ का अग्रभाग ऊपरी मसूडे को छूते हुए ऊपर नीचे की दन्त पक्ति के मध्य दबता है। साथ ही हवा छोडने के साथ मुँह कुछ खुल जाता है। इसका प्रयोग सभी अवस्थाओ मे होता है।

त्—यह अघोष, अल्पप्राण है। यह सभी स्थितियों मे पाया जाता है। यथा—

आदि-तखत, तगादा, तसमई (खीर), तिरासी, तुरक, तेग, तेलो, ततैया, तहमद, तव्वो, तल्लाक तमचो, तागडी, ताजिया, तोड़ा (गहना), तील (वस्त्र), तेलबान।

मध्य—ताती (गर्म), बस्तर, सपतदीप, छतरो, पढतम (पढाई)।

अन्त्य—दरखत, दुरस्त, नुकत्तो, निरत, परवत, भगत, मुकत, सुकरत, कीरत।

थ्- महाप्राण अघोष। उच्चारण 'त' जैसा ही है। इसका सभी स्थितियो मे प्रयोग होता है। यथा—

आदि- थहराय (कापना), थाडी (थाली), थाणेदार थावर (शनिवार)।

मध्य—साथण, चौथो, प्रथमी।

अन्त्य—काथ, कथा (पति), चौथ।

द्--अल्पप्राण, सघोष। उच्चारण स्थान 'त' और 'थ' के समान ही। 'द' सभी स्थितियों में प्रयुक्त होता है। यथा--

आदि--दरपत, दरगाह, दरसण, दाणो (घोड़े के चरने हेतु चने), दीदार, दुरवेस, दोजग, दकरण, दसोड़ो (कीडा) दरयाव, दगोगन, दादर, दुमी, दुहाग, दुहिटल (युधिष्ठिर), दोगड़ा (रुक-रुक कर बरसना), दौराणी।

मध्य--नादर (गरीब), पदरा, बदलाव (उत्तर), बदना (मलमूत्रियम का लौटा), बादल।

अन्त्य--पहलाद, मलीदो, बिपदा, सनवादो, सूदी (सीधी), सैदाण वाकिफ)।

घ्- महाप्राण सघोष। 'घ्' सभी स्थितियों में पाया जाता है। यथा--

आदि--घणी घूप, घोकड़ (वृक्ष), घड़ी, धरण (पृथ्वी), धरम, धाड़ो (लूट), धामण (सांप), धीण, धोला, धोला, धणियो।

मध्य--अधमधुंद, अधीव्टर, बिधना, सूधा (सीधा), जोधिया (योद्धा)।

अन्त्य--बुध, रिध, सिध, बंधो।

□ द्वयोष्ठ्य प् फ् ब् भ्

इनका उच्चारण दोनों होंठ मिलाकर किया जाता है। इसी से इन्हें ओष्ठ्य-स्पर्श-व्यंजन ध्वनियाँ कहते हैं। उच्चारण के समय दोनों होंठ अन्दर की हवा को रोक कर तनाव के साथ बन्द होते हैं और फिर सहसा एक स्फोट के साथ खुल जाते हैं। पवर्ग की सभी ध्वनियों का उच्चारण इसी प्रकार होता है। इन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में अन्य व्यंजनों की तरह जिह्वा से कोई कार्य नहीं लिया जाता।

प् अल्पप्राण, अघोष, द्वयोष्ठ्य स्पर्श ध्वनि है। शब्द में सभी स्थानों पर इसका प्रयोग होता है। यथा--

आदि--परवन, परचई, पलमारथ, परमेसुर, पाट (किवाड़), पूनू, पोंन, पेंडा, पगड़, पड़दा, पचमणियो, पड़ड़ो, पगाह (जूता), पनहार (पनिहारिन), परावठा, पालिस, पीलू (पिल्लू), पीहर, पुरग, पुलस, पड़ू, पैट, पैड, पुहुक्कर, पुलाव।

मध्य--उपगार, उपडा, कपूर, किरपाला, गुपत, दरोपन, रजपूत, सरूप, सम्पद, सुपणो।

अन्त्य--खुरपी, टीप 'ट्यूब', दाप (मिट्टी का बर्तन), बाप, स्वापी (रुमाल)।

फ् महाप्राण, अघोष ओष्ठ्य स्पर्श ध्वनि है। 'फ्' सभी स्थितियों में पाया जाता है। यथा--

आदि— फूस, (पौप), फकर (फकीर), फदा, फोडो, फोजदार, फलेंडो।
मध्य—गाफल, (बेहोस)।
अन्त्य—फरसो, सराफ।

ब्—यह अल्पप्राण, सघोष स्पर्श है। 'प्' तीनो स्थितियो मे प्रयुक्त होता है। यथा—

आदि—बकरीद, बछिया, बोंगा (छप्पर), बणेणो (बनियानी), बिटोडो, *बिणजार, बासक, बाघालो (तलवार), बाकडा (गहना)।*
मध्य—अबर, मबर गोविदा, कबूल, बजराय, सबबोई, जुबना।
अन्त्य—अदब, अडब (अरब), कबाब, कुतब, गरज, नबी, जरब, दरब।

भ्—*महाप्राण, सघोष द्वयोष्ठ्य स्पर्श व्यजन ध्वनि है। इसका प्रयोग* आदि और मध्य स्थितियो म मिलता है। मवाती मे 'भ्' का अन्त्य प्रयोग नही मिलता यथा—

भऊ, भगेरा, भगोती, भरतार, भवग, भट्गी, भाती, भाडो, भाटा, भाण, भायलो, मुम, भूको, भेडूरो, (भेड का बच्चा), भूमल, भूसी, *सेडियो, परभीन, जनभर (जानवर) आदि।*

☐ **स्पर्श सघर्षी**—तालव्य-च् छ ज् झ्

इसके अन्तर्गत चवग आता है। आदि योरोपिय भाषा मे इन ध्वनियो का *अभाव था। बाद म कवग ध्वनियो से इनका विकास हुआ।* इनका उच्चारण जिह्वा के अग्र भाग से दत पक्ति के पीछे के भाग को देर तक छूकर कठोर तालु से कुछ रगड के साथ किया जाता है। *ये स्पर्श-सघर्षी कहलाती हैं। डा० चटर्जी के अनुसार* च् छ ज् झ के उच्चारण मे जीभ का अग्र भाग दत पक्ति के ऊपर तालु को स्पश करता है।[12] डा० कादरी का मत है कि "चवग का उच्चारण जीभ के अगले भाग स नही होता। जीभ तालु का केवल स्पर्श ही नही करती नालु के निचले भाग को रगडती भी है। आरम्भ मे ध्वनि कुछ रुकी सी सुनाई देती है और अन्त मे स्पष्ट होती है।[13] डा० *सक्सेना,*[14] *धीरेन्द्र वर्मा*[15] एव *तिवारी*[16] *भी इन्हे स्पर्श-सघर्षी* मानते हैं। परन्तु साथ ही इन पर अग्रेजी च् ज् ध्वनियो का प्रभाव भी स्वीकारते हैं।

च्—अघोष, अल्पप्राण, दन्त्य तालव्य स्पश सघर्षी है। इसका तीनो स्थितियो मे प्रयोग होता है। यथा—

आदि—चाकी, चांद, चकता (विदेशी), चक्ला, चटणी, चणा, चन्दण, चरखो, चलस, चिपकण (गहना), चूची, चौबदार, चौकी।
मध्य— परचई, हरचद, कचेंडी, खीचडी, नकचूटी, पिन्चर, बिचौला।

अन्त्य—ऊचौ नीचौ, पाच, माची नाच, नैचा (हुक्के का), मिरच।

छ्—महाप्राण, अघोष, दन्त्य तालव्य। यह सभी स्थितियों में प्रयुक्त होता है। यथा—

आदि—छगाल, छतरापण, छतरी, छन्नी (गहना), छल्लो, छांद छुआरा, छूडक, छेंडी, छोरेट, छोला (हरे चने), छीतरो।

मध्य—निछतर (नक्षत्र), पछेली (आभूषण), बछिया, बिछुवा (गहना)।

अन्त्य—पौंछ (पूंछ), विच्छा (भिक्षा), मच्छी (मछली), मूंछ।

ज्—अल्पप्राण, सघोष, दन्त्य तालव्य। इसका भी सभी स्थितियों में प्रयोग होता है। यथा—

आदि—जधोष्टर (युधिष्ठिर), जिहाज (जहाज), जेठ जोबन जगतरण जमना, जम्बू, जरजोध (दुर्योधन), जरदा (बूराडाले हुए चावल)।

मध्य—अजाव, उजियारी, निजर, सतजुग, सिरजन हजामत।

अन्त्य—अजीज, अवाज, काज, गाजी, निवाज, फौज म्हाराज, मोहताज।

झ्—महाप्राण सघोष, दन्त्य तालव्य। इसका अन्त के अतिरिक्त सर्वत्र प्रयोग मिलता है। यथा—

झगर (लू), झगडो झब्बा (गहना), झाड (बेर का पेड), झिंगुर झुमका (गहना), झूल (बैलों को औढ़ाने का वस्त्र), झल (लपटें), गोझया (जेब), झजीर (जंजीर)।

(ग) अनुनासिक-ण न् न्ह् म् म्ह्

इन्हें नासिक्य भी कहते हैं। इनके उच्चारण में दो अंगों के स्पर्श के साथ कोमल तालु और कौआ नीचे झुक जाते हैं जिससे हवा नाक से गुजरती हुई बाहर निकलती है। इन व्यंजनों के उच्चारण में निरनुनासिक व्यंजनों जैसा वायु का अवरोध नहीं होता। संस्कृत की ञ म् ङ् ण् न् अनुनासिक ध्वनियों में से न् और म से ही सभी नासिक्य ध्वनियों का द्योतन होता है। गुजराती की तरह मेवाती में भी ञ और ङ् ध्वनियों का अभाव पाया जाता है। इनके स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग किया जाता है।

ण्—यह अल्पप्राण सघोष, मूर्द्धन्य अनुनासिक है। इसके उच्चारण में जिह्वा अग्र मूर्द्धन्य ध्वनियों—ट्, ड—की तरह पीछे मुड़कर कठोर तालु पर कुछ देर रुक कर उच्चारित करती है। यूरोपीय भाषाओं में इस ध्वनि की समकक्ष कोई ध्वनि नहीं है।[17] सिन्धी, राजस्थानी (पश्चिमी) पहाड़ी और मेवाती के अतिरिक्त

हिन्दी की बोलियों मे इस ध्वनि का अभाव पाया जाता है। मेवाती मे इसक आदि के अतिरिक्त मध्य एव अन्त्य प्रयोग होना है यथा—

अघाणो (तृप्त), माण (प्रतिज्ञा), ठाण (स्थान), बणेणी (बनियानी), बासण (घड़ा), घुण (चने का कीडा), चुणकली (सब्जी) छररापण, झमझण (गहना), ठिकाणो, घणियो, घामण, नाण (नाईन), पणहा (जूता), बिणजार, आदि।

न्—इसका उच्चारण 'ण्' की तरह ही होता है, परन्तु यह मूर्द्धन्य न होकर दन्त्य, वर्त्स्य, अल्पप्राण सघोष ध्वनि है। उच्चारण के लिए जीभ का अगला भाग दान्तो के मध्य न छूकर ऊपर के मसूडे को छूना है। सस्कृत म यह दन्त्य स्पर्श माना जाता था, परन्तु वास्तव मे यह वर्त्स्य है। इसका प्रयोग सभी अनुनासिको से अधिक समस्त स्थितियो मे होता है। यथा—

नकबूटो, नवकस (गहना, नथ (गहना), नणद, नबाव, नरक, नाडो नाण निजर, नूण, नेवरी (गहना), नैणा, नंचा, नौथण (हार गले का), नागो, नाड (गर्दन), निवाज, जुवान, टेरालीन, बदनो, बियान, बेहिमान, अरजन अस्थान आदि।

न्ह्—महाप्राण घोष, वर्त्स्य नासिक्य व्यजन है। डा० वर्मा,[19] कादरी[20] सक्सेना[21] एव भोलानाथ तिवारी[22] इसे 'न्' का महाप्राण मानते हैं। ब्रज भाषा मे इसका प्रयोग मिलता है। इसका उच्चारण शब्द की आदि स्थिति मे होता है। यथा—न्हावडो न्हाण।

म् द्वयोष्ठ्य, सघोष, अल्पप्राण, अनुनासिक। इसके उच्चारण करते समय दोनो होठ हवा रोक कर बन्द हो जाते हैं। जिससे हवा नथुनो से गूजती हुई निकल जाती है। इसका प्रयोग सभी स्थितियो मे होना है। यथा—

मखनो (मस्त), मच्छी, मलीदा, महड (महर), माणस, मिन्तर, मींहमान, मुकदम, मुसल्ला, मूसल, मेज, मेण (मीणा), मोघ (मूर्ख), लगमात, सन्मख, समाली, सीमी (एक खाद्य), हड्मान, हाकम, घमला, चूमण (चुम्बन आदि।

म्ह्—म्ह् द्वयोष्ठ्य, महाप्राण, सघोष नासिक्य व्यजन है। यह म् का महाप्राण है। इसके महाप्राण और अनुनासिक होने मे कुछ विद्वान सदेह करते हैं। वे इसे स्वतत्र व्यजन न मानकर सयुक्त व्यजन मानते हैं। डा० कादरी इसे सयुक्त व्यजन मानते हैं। डा० अशोक रा केलकर 'म्ह्' और 'न्ह्' को महाप्राण नहीं मानते। वे 'म्' मे 'ह्' का सयोग मानते हैं। लेकिन अन्य सभी विद्वान इसे महाप्राण ही मानते हैं। मेवाती मे यह आदि स्थिति मे ही प्रयुक्त होता है यथा—

म्हाराज म्हारा, म्हर (महर)।

□ पार्श्विक-ल्, ल्ह्, ळ

पार्श्विक ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वाग्र दाँतों के ऊपर के मसूढ़ों को छूती है। साथ ही जिह्वा के बगल-बगल से हवा भी निकल जाती है। कैलाश के अनुसार 'ल' के उच्चारण में जिह्वा मसूढ़ों की बजाय दन्ताग्र भाग को छूती है।[24] इसी से इन्हें पार्श्विक ध्वनियाँ कहते हैं।

ल्— यह अल्पप्राण घोष वर्त्स्य पार्श्विक ध्वनि है। 'र' और 'ल्' का उच्चारण स्थान एक ही है, परन्तु 'ल' 'र' की अपेक्षा कोमल व्यंजन है। यह सभी स्थितियों में पाया जाता है। यथा—

लबली, लाबाल, लटा (जटा), लम्बड़दार, लसरण, लाईलौन (नाईलोन) माड़, लूगड़ो, लेडीमिन्टर, लौक्स (लवकुश), लोढ़ी, वाल (तलहटी), वेल (बादल वस्त्र), मामलात, कबूल, बहली आदि।

ल्ह्—यह महाप्राण, घोष, वर्त्स्य पार्श्विक ध्वनि है। यह ल् का महाप्राण है। न्ह्, म्ह् की तरह ल्ह् भी महाप्राण पार्श्विक ध्वनि है।[25] हिन्दी एवं हरियाणी में भी इसका प्रयोग होता है। मेवाती में इसका प्रयोग केवल आदि एवं मध्य स्थिति में ही होता है। यथा—

ल्होवरी, (लोमड़ी) आल्हू, ल्हिसोड़ा (ल्हुसवो), चूल्हो आदि।

ळ्—यह अल्पप्राण, सघोष मूर्द्धन्य पार्श्विक है। इसका उच्चारण करते समय जिह्वाग्र उलट कर मूर्द्धा को छूता है। जिह्वा के पार्श्वों से हवा निकल जाती है। हिन्दी, ब्रज, हरियाणी आदि में इस ध्वनि का अभाव है। मारवाड़ी, मेवाती, हरियाणवी एवं कौरवी में इसका प्रयोग मिलता है। इसका प्रयोग मध्य एवं अन्त्य स्थितियों में होता है। यथा—

कूळ्या (कन्धे), कळ्स, काळी, काळो, किलोल कोळी (भुजबंध) खिलवाळ (भेड़ा को चराने वाला), गोळा (बड़ा घड़ा), चळस, चोळा (धान्य), टोळा (पत्थर), धोळा, भेळो (इकट्ठा), साळा, सोळी (अनाज का कीड़ा, ठण्डी) आदि।

□ लुण्ठित-र्

यह लुण्ठित घोष अल्पप्राण वर्त्स्य ध्वनि है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक वर्त्स्य के अधिक समीप चली जाती है। इसी बीच जीभ में एक दो बार कम्पन भी हो जाता है। इसी से इसे प्रकम्पी भी कहते हैं। यह सभी स्थितियों में प्रयुक्त होती है। यथा—

रई (दही बिलोने का डण्डा) ...

(मची), राणा रूप, अरजन, अस्तरी, अहारा (अंगीठी), इन्दर, इसारी, ईसुर, करतार, कटोरी, करेल (करेला), ववार (आश्विन), गिरगल (गिलहरी), चरखा, जनभर, जुज्भारी (लडाके), (ढोमरी मिट्टी का बर्तन), ढोर आदि।

□ उत्क्षिप्त-ड्

ड्—इसके उच्चारण मे जिह्वा की नोक प्रतिवेष्टित होकर निचले भाग से कठोर तालु को छूकर झटके के साथ नीचे गिरती है। ड् अल्पप्राण घोष वर्त्स्य उत्क्षिप्त ध्वनि है। ड् का उच्चारण र् के समीप ही होता है। कुछ विद्वान इस मूर्द्धन्य ध्वनि भी कहते हैं। डा० वर्मा[26] इसे एक नवीन ध्वनि मानते हैं, परन्तु डा० भोलानाथ तिवारी इसे पहली सदी के लगभग विकसित हुई मानते हैं।[27] मेवाती मे इसका प्रयोग मध्य और अन्त्य स्थितियो मे ही होता है। यथा—

अडमठ, रोडो, स्याड, कड (कमर), कडा (गहना) कचेडी, चूडो, अकोड (रिश्वत), अडब, गाडी, बछडो, वडगोत, बाकडी, महेडी, रॉगडी आदि।

□ सघर्षी-स् ह् व्ह्

इन ध्वनियो के उच्चारण मे दो अग इतने समीप आ जाते हैं कि उनके मध्य से निर्गत वायु घर्षण करती हुई निकलती है। मेवाती म सघर्षी शिन् ध्वनियो मे से केवल 'स्' ध्वनि ही सभी स्थानो पर प्रयुक्त होती है।

स्—यह अघोष ऊष्म वर्त्स्य अल्पप्राण ध्वनि है। इसके उच्चारण म जिह्वाग्र वर्त्स्य को छूना है। दोनो दन्त-पंक्तियाँ एक बार आपस मे छूती हैं। इसका प्रयोग सभी स्थितियो मे होता है। यथा—

सईद, सतवादी समेरो, सरवण, सिडासी (सन्यासी) सीसो (गोली), सोद्रा (सहोदरा), सक्का सनद (मोरी), समला (शिमला), सल्लूक, साइकल, सालो सायब (साहब), सुन्दार (सुनार), सडेसो (सदश), सटर (सटर), विसेरो (फोडा), मसला, माणस, लोवस (लवकुश, खिस्सा, खोस, नासी (नष्ट होने वाले) आदि।

ह्—यह घोष जिह्वा मूलीय सघर्षी ध्वनि है। इसके उच्चारण मे खुल मुख से जिह्वा के मूल के पास स हवा निकाली जाती है। कुछ विद्वान इसे स्वरयत्र मुखी भी कहते है। मेवाती मे विसर्गों की जगह 'ह्' का ही प्रयोग होता है। इसका प्रयोग भी सभी स्थितियो मे हाना है। यथा—हडूमान, हजरत, हदीस (ईश्वर, हलक, हाली, हिगोट, हाड, पणहा, पहलाद, पूहलौत, वहीर (फौज), डहर आदि।

व्ह्—यह दन्तोष्ठ्य जिह्वामूलीय महाप्राण तालव्य, सघोष अर्द्ध स्वर ध्वनि है। यह 'व' का महाप्राण रूप है। यद्यपि हिन्दी की बोलियो मे इसका अधिक

व्यवहार नही होता, परन्तु मेवाती मे इसका प्रयोग होता है। इसका प्रयोग सदैव स्वतत्र रूप से होता है, यथा—ल्हाई, ल्है, ल्हो आदि।

मेवाती सयुक्त व्यजन

जब दो या दो से अधिक व्यजन बिना किसी स्वर के बीच मे आए पास-पास आ जाते है, उसे सयुक्त व्यजन कहते हैं। सस्कृत म इन सयुक्त व्यजनो का आधिक्य है। यहा तक कि 2, 3, 4 एव 5 व्यजनो तक के व्यजन गुच्छ देखने म आते हैं। प्राकृत-अपभ्रश मे कुछ का लोप हो गया और कुछ नये सयुक्त व्यजन प्रयोग मे आ गये। बाद की भाषाओ मे यह क्रम जारी रहा। हिन्दी मे करीब 200 सयुक्त व्यजन हैं जिनमे 150 के लगभग तो परम्परागत, चालीस के करीब अरबी-फारसी तथा 20 के करीब अग्रेजी के है। इस तरह हिन्दी एव उसकी बोलियो म सयुक्त व्यजन बहुतायत म पाये जाते हैं। मेवाती क कुछ सयुक्त व्यजन यहा दिए जा रहे हैं—

क वर्ग—क्ख्, क्र्, क्ट्, क्त्, क्य्, क्व्, ख्त, ग्ग्, ग्य्, घ्य।
च वर्ग—च्च्, च्छ्, ज्ज, ज्य्, ज्भ्।
ट वर्ग—ट्ट, ट्ठ, ड्ड, ण्ठ, ण्ड्, ण्य्।
त वर्ग—त्त्, त्थ्, त्य्, त्ल्, ध्य्, न्थ्, न्ट, न्त्, न्द्, न्ध्, न्म्, न्य्, न्ह्।
प वर्ग—प्य्, प्र, ब्ब्, ब्य्, ब्र्, म्प्, म्म्, म्ब्, म्भ्, म्ह्।
अन्तस्थ—र्य्, ल्ट्, ल्ल्, ल्ह्, व्य्, व्ह्।
ऊष्म—स्क, स्ट्, स्त्, स्य्, स्र्, स्व्।

आघात—

आघात दो तरह—सगीतात्मक, बलात्मक-का होता है। प्रा भा आ भाषाओ मे सगीतात्मक आघात का प्राचुर्य रहा जबकि म भा आ भाषाओ म बलात्मक आघात का। आ भा. आ भाषाओ मे भी बलात्मक आघात ही अधिक पाया जाता है। प० गुरु ने इस सम्बन्ध मे विशिष्ट विवरण प्रस्तुत किया है।

(1) विवृत अक्षर मे—मेवाती मे प्रा भा. आ भा के निम्नलिखित स्वर सुरक्षित हैं। नीचे प्रत्येक सुरक्षित स्वर ध्वनि पर प्रकाश डाला जा रहा है—

(अ)—(मूल रूप मे सुरक्षित)—यथा—

स०		म०	स०		म०
असुर	<	असर,	अम्बर	<	अम्मर
चटुल	<	चडलो,	कटाह	<	कडाही
गव	<	गरव,	वर्ग	<	बरग
वत्स	<	बाछो,	गभीर	<	गहरो

गन < गणी, गदम < गधो
चणक < चणो ।

(ग्रा)—(मूल रूप मे सुरक्षित)–यथा—

स०		मे०	स०		मे०
ग्राम	<	गाम, गाँव	बालूका	<	बालू
नारी	<	नार	वासुदेव	<	वासोदम
वासुकि	<	वासक,	व्याख्यान	<	बखाण ।

(इ)-(मूल रूप मे सुरक्षित)–यथा—

स० गिरिधर	<	मे० गिरधर,	स० त्रिया,	<	मे० तिरिया
निमल	<	निरमल,	विपत्ति	<	विपता

(ई)-(मूल रूप में सुरक्षित)–यथा –

स० जीव	<	मे० जीव, जी	स० जीरक	<	मे० जीरो
क्षीर	<	खीर,	ग्राभीर	<	हीर
भीम	<	भीव,	कीर्ति	<	कीरत

(उ)-(मूल रूप मे सुरक्षित)–यथा—

स० उपकार	<	मे० उपगार	स० कुटुम्ब	<	मे० कुटम
गुप्त	<	गुपत,	कुम्भकार	<	कुम्हार
गुरू	<	गुर,	पुष्कर	<	पुहुकर
पुरुष	<	पुरख ।			

(ऊ)-(मूल रूप मे सुरक्षित)–यथा—

स० कूप	<	मे० कूग्रो, कूवों,	स० पूरण	<	मे० पूरन
मूर्ति	<	मूरत,	कर्पूर	<	कपूर

(ए)-(मूल रूप म सुरक्षित)–यथा —

स० क्षेत्र	<	मे० खेत	स० क्षेम	<	मे० छेम
वेद	<	बेद,	ज्येष्ठ	<	जेठ
मेद	<	मेत्र	मेघ	<	मेह
केश	<	केस खेस	सनेह	<	नेह

(ऐ)-(मूल रूप मे सुरक्षित)–यथा—

स० भैरव	<	मे० भैरू	स० चैत्र	<	मे० चैत
गैरिक	<	गैरू, आदि ।			

(ग्रो)-(मूल रूप मे सुरक्षित)–यथा—

स० गोत्र	<	मे० गोत,	स० घोटक	<	मे० घोडो
योगी	<	जोगी	षोडष	<	सोलह

होलिका < होलका, काश < कौम

प्रकोष्ठ < कोठो, स्तोक (म. भा. आ.-थो)-थोडो,

रोदनम् < रोणो, लोहित < लोहो।

(औ)—प्रा. भा आ भा. के 'औ' का म. भा आ. भा. मे 'ओ' हो गया था। मेवाती मे 'औ' के स्थान पर स्वराघातयुक्त विकृत अक्षर 'ओ' का प्रयोग होता है। यथा—

स० कौरव < मे० कोरा, स० चौर < मे० चोर

पौत्र < पोता, मौक्तिक < मोती

(ऋ)—पाली-प्राकृतों मे ही ऋ का लोप हो गया था और उसके परिणामस्वरूप अ, इ, उ–का प्रयोग होने लगा था। संस्कृत ऋ के विकार से व्युत्पन्न—अ, इ, उ– आ भा आ भा मे अविकृत रूप से प्रचलित रहे। यथा—

ऋ – अ – (मूल रूप मे सुरक्षित) – यथा—

मृ < मर, हृदय < हियो।

ऋ > इ > (मूल रूप में सुरक्षित)–यथा—

कृपा > किरपा, मृग > मिरग,

बृहस्पति > बिसपत, शृंगार > सिंगार।

ऋ > उ—(मूल रूप मे सुरक्षित)–यथा—

वृक्ष > रूख शृण् > सुन

□ **संवृत-अक्षर में-'अ'—**

संस्कृत का संवृत अक्षर मे आने वाला 'अ' प्राकृतों में तो सुरक्षित रहा परन्तु आधुनिक भारतीय भाषाओं मे 'आ' हो गया। इसका विकास-क्रम इस प्रकार रहा—अ > अ > आ। यथा—

स०	>	प्रा०	>	मेवाती
कर्म	>	कम्म	>	काम
घर्म	>	घम्म	>	घाम (धूप)
चतुर	>	चतुर	>	चातर
यदुवंश	>	जदुवंश	>	जादुवंस
हस्त	>	हत्थ	>	हात, हाथ
चक्र	>	चक्क	>	चाक
पश्चात्	>	पच्छा	>	पाछे
चर्म	>	चम्म	>	चाम

आ—सस्कृत के सयुक्त व्यजन से पूर्व के 'आ' का प्राकृत मे 'अ' हो जाता है तथा आधुनिक भाषाओ मे पुन 'आ' हो जाता है। इसका विकास क्रम आ > अ > आ है।

स०	>	प्रा०	>	मेवाती
काष्ठ	>	कट्ठ	>	काठ
कार्य	>	कज्ज	>	काज
सौभाग्य	>	सोहाग	>	सुहाग
फाल्गुण	>	फग्गुण	>	फागण

इ—सस्कृत का इ' प्राकृत मे 'इ' ही रहा परन्तु मेवाती मे उसका दीर्घ रूप ई' हो गया। यथा—

सं०	>	प्रा०	>	मेवाती
विद्युतिका	>	विज्जुलिआ	>	बीजली
निकट	>	निअड	>	नीडै
निम्ब	>	निम्म	>	नीम
मित्र	>	मित	>	मीत
मिष्ठ	>	मिट्ठ	>	मीठा

ई— ई' का विकास क्रम–ई>इ>ई है।

स०	>	प्रा०	>	मेवाती
कीर्ति	>	कित्ती	>	कीरत
गम्भीर	>	गहिर	>	गहीरो

उ—सस्कृत का 'उ' प्राकृत मे ह्रस्व 'उ' ही रहा परन्तु बाद मे मेवाती मे सयुक्त व्यजन के सरलीकरण के कारण 'ऊ' मे परिवर्तन हो गया। यथा—

स०	>	प्रा०	>	मेवाती
दुग्ध	>	दुद्ध	>	दूध
पुत्र	>	पुत्त, वुत्त	>	पूत ऊत
शुष्क	>	सुक्क	>	सूखो
मुत्र	>	मुत्त	>	मूत
अगुष्ठ	>	गुट्ठ	>	गूठो

ऊ—सस्कृत 'ऊ' प्राकृत मे ह्रस्व 'उ' तथा मेवाती मे 'ऊ हो गया, यथा—

स०	>	प्रा०	>	मेवाती
चूर्ण	>	चुण्ण	>	चून

ऊर्णा	>	उण्णा	>	ऊणो (बकरी का बच्चा)
शून्य	>	सुन्न	>	सूनो

ए—प्राचीन काल से एक ही रूप में प्रचलित रहा। यथा—

सं०	>	प्रा०	>	मेवाती
क्षेत्र	>	खेत	>	खेत
एक	>	एक्क	>	एक
ज्येष्ठ	>	जेट्ठ	>	जेठ

ऐ—इसका विकास सं० ऐ>प्रा० ए>मेवाती ऐ, इ से है।

सं०	>	प्रा०	>	मेवाती
गैरुक	>	गेरुअ	>	गेरु
धैर्य	>	धेय्य	>	धीरज, धीर

ओ—'ओ' प्राचीन काल से अपरिवर्तित चला आ रहा है। यथा—

सं०	>	प्रा०	>	मेवाती
ओष्ठ	>	ओट्ठ	>	होठ
गोत्र	>	गोत	>	गोत
कोष्ठ	>	कोट्ठ	>	कोठो

औ—'औ' का विकास क्रम इस प्रकार रहा। यथा—

सं० औ	>	प्रा० ओ	>	मेवाती औ
मौक्तिक	>	मोत्तिअ	>	मोती
पौत्री	>	पोती	>	पोती

ऋ—इसका विकास क्रम निम्न प्रकार रहा—यथा—

सं० ऋ > प्रा० अ, इ, उ > मेवाती अ, आ, ई, ऊ। —

सं०	>	प्रा०	>	मेवाती
मृत्तिका	>	मट्टिआ	>	माटी
शृंग	>	सिंग	>	सींग
वृश्चिक	>	विच्छु	>	बीछू
वृन्तक:	>	वुट्टओ	>	बूटो (चने का पौधा)
घृत	>	घिउ	>	घी
शृगाल	>	सियाल	>	सियाइ, स्याइ
कृष्णगृह	>	कच्चहर	>	कचेड़ी

❑ स्वर-परिवर्तन—

(क लोप—

(1) आदि स्वर लोप—यह प्रायः सोपसर्ग शब्दों मे होता है इसका कारण सस्कृत मे आदि स्वर-ध्वनि का बलहीन होना है।

	मेवाती	<	अप० (प्रा०)	<	स०
अ-	भीतर	<	भित्तर	<	अभ्यन्तर
	रहट	<	अरहट्ट	<	अरघट्ट
उ-	बैठो	<	उववट्ठ	<	उपविष्ट
	डकार (णो)	<	उग्गार	<	उद्गार
	पणहा	<	पाणहा	<	उपानह्
ए-	ग्यारा (हा)	<	इगारह	<	एकादश

(2) मध्य स्वर लोप—

	मेवाती	<	अप० (प्रा०)	<	स०
इ-	दूजो	<	विइज्ज	<	द्वितीय
	दुगणो	<	विउण	<	द्विगुण
उ-	धीयडी	<	धीआ	<	दुहितृ

(3) अन्त्य स्वर लोप—

	मेवाती	<	अप० (प्रा०)	<	सस्कृत
आ—	नीद	<	णिद्दा	<	निद्रा
	दूब	<	दुव्वा	<	दूर्वा
	दारी	<	दारिआ	<	दारिका
	जीब	<	जीहा	<	जिह्वा
इ—	आँख	<	अक्खि	<	अक्षि
	जात	<	जाइ	<	जाति
ई—	भाँण	<	वहिणी	<	भगिनी
	ग्याभण	<	गब्भिण	<	गभिणी
उ—	वाह	<	वाहु	<	वाहु

(ख) आगम—

(1) आदि स्वरागम—

मेवाती	<	अप० (प्रा०)	<	सस्कृत
अस्तुति	<	—	<	स्तुति
अस्थल	<	—	<	स्थल

अस्थान	<	—	<	स्थान
अस्नान	<	—	<	स्नान

2 मध्य स्वरागम (स्वर-भक्ति)—

मेवाती	<	अप० (प्रा०)	<	संस्कृत
करम	<	कम्म	<	कर्म
किसन	<	कण्हु	<	कृष्ण
कीरत	<	कित्ति	<	कीर्ति
इमरत	<	अमिय	<	अमृत
गरम	<	गब्भ	<	गर्भ
पुहुकर	<	पुक्खर, पोक्खर	<	पुष्कर
तिछना	<	तण्हा, तिण्हा	<	तृष्णा

विदेशी शब्दों मे भी मध्य स्वरागम देखने को मिलता है। यथा—

मेवाती	<	अरबी-फारसी	मेवाती	<	अरबी-फारसी
कबर	<	कब्र	उम्मर	<	उम्र
सरम	<	शर्म	फरज	<	फर्ज

मेवाती	<	अंग्रेजी
सकूल	<	स्कूल
गोरमिंट	<	गवर्नमैण्ट
डिरामो	<	ड्रामा

(ग) विपर्यय—

मेवाती	<	अप० (प्रा०)	<	संस्कृत
भाण	<	बहिणी	<	भगिनी
बूंद	<	बिंदु	<	बिन्दु
सुसरो	<	ससुर	<	श्वसुर
सासरो	<	ससुराल	<	श्वसुरालय
चूंच	<	चंचु	<	चञ्चु
पनहार	<	पाणिग्रघरिग्रा	<	पानीयघरिका

☐ स्वर विकास –

1. अ—(1) मेवाती अ	<	अप० (प्रा०) अ	<	संस्कृत अ
अमली	<	अम्लिआ	<	अम्लिका
गधी	<	गद्दही	<	गर्दभी
ठग	<	ठग	<	स्थग
थण	<	थण	<	स्तन

(6) देशज आ—कुक्याणो, तडातड, सडासड, पडापड, भडाभड आदि ।

3 इ–(1) मेवाती इ < अप० (प्रा०) अ इ < सं० अ, इ ई, ऋ

चिडो	<	चडअ	<	चटक
तिरिया	<	तिरिया	<	त्रिया
मणियो	<	माणिक्क	<	माणिक्य
मिठाई	<	मिट्ठिआ	<	मिष्टिका
बिगसी	<	विगसिअ	<	विकसित
दिवाली	<	दिप्पावली	<	दीपकावली
सिंगार	<	सिंगार	<	शृ गार

(2) देशज इ–चिडचिडो, गिलगिलो आदि

4 ई– 1) मेवाती इ < अप० (प्रा०) ई < सं० ई

छुरी	<	छुरी	<	क्षुरी
खीर	<	खीर	<	क्षीर
कीडो	<	कीड	<	कीट
(2) मेवाती ई	<	अप० (प्रा०) इ	<	सं० इ
बीजली	<	बिज्जुलिआ	<	विद्यु तिका
पीव	<	पिए	<	प्रिय
कोई	<	कोवि	<	कोपि
ईट	<	इट्ठआ	<	इष्टका
ईख	<	इक्ख	<	इक्षु
जीभ	<	जिब्भ	<	जिह् वा
रीतो	<	रित्त	<	रिक्त
सीच	<	सिंच	<	सिञ्च

(3) मेवानी ई	<	अप० (प्रा०) इ आ	<	सं० इ का
बाडी	<	वाडिआ	<	वाटिका
बाती	<	वत्तिआ	<	वर्तिका
घोडी	<	घोडिआ	<	घोटिका
अमली	<	अम्बिलिआ	<	अम्लिका

(4) मेवाती ई	<	अपन् (प्रा०) इ	<	सं० ऋ
पीठ	<	पिट्ठ	<	पृष्ठ
दीठ	<	दिट्ठ	<	दृष्टि
सीग	<	सिंग	<	शृ ग

तीज	<	तिइज्ज	<	तृतीया
पीर	<	पीहर	<	पितृगृह
5 उ-(1) मेवाती उ	<	अप० (प्रा०) उ	<	स० उ
गुडिया	<	गुडिग्रा	<	गुटिका
उड	<	उड	<	उड्ड
खुर	<	खुर	<	क्षुर
कुम्हार	<	कुम्हग्रार	<	कुम्भकार
खुरपो	<	खुरपा	<	क्षुरप्र
छुरी	<	छुरिग्रा	<	क्षुरिका
(2) मेवाती उ	<	अप० (प्रा०) उ	<	स० ऋ
सुण	<	सुणु	<	भ्रूण
बुड्ढो	<	बुड्ढ	<	वृद्ध
(3) मेवाती उ	<	अप० (प्रा०) ओ	<	स० ओ, औ
गुहेरो	<	गोहृ	<	गोधा
सुहाग	<	सोहग	<	सौभाग्य

(4) विदेशी उ से—

मेवाती उ		अरबी उ		फा० उ, ऊ	तुर्की उ
उस्तरो	<	—	<	उस्तुर	—
कुस्ती	<	—	<	कुश्ती	—
कुरसी	<	कुर्सी	<	—	—
खुस	<	—	<	खुश	—
खुसामद	<	—	<	खुशामद	—
कुडकी	<	—	<	—	कुर्की
सुराक	<	—	<	सुराख	—

6 ऊ (1) मेवाती ऊ	<	अप० (प्रा०) उ, ऊ	<	स० ऊ
सूत	<	सुत्त	<	सूत्र
जूडो	<	जुडग्र	<	जूटक
कपूर	<	कप्पूर	<	कर्पूर
ऊणो	<	उण्णा	<	ऊर्णा
मूली	<	मूलिग्रा	<	मूलिका
(2 मेवाती ऊ	<	अप० (प्रा०) उ	<	स० उ
भूको	<	बुभुक्खा	<	बुभुक्षा

	गूजर	<	गूज्जर	<	गुर्जर
	गूठो	<	अंगुट्ठ	<	अंगुष्ठ
	ऊखल	<	ओक्खल	<	उदखल
(3)	मेवाती ऊ	<	अप० (प्रा०) उ	<	स० उक
	वालू	<	बालुआ	<	बालुका
	लाडू	<	लड्डुअ	<	लड्डुक
	सतू	<	सत्तुअ	<	सक्तुक
(4)	मेवाती ऊ	<	अप० (प्रा०) उ	<	स० ऋ
	पूठवाल	<	पुट्ठवाल	<	पृष्ठपाल
	बूढो	<	वुड्ढो	<	वृद्धः
	रूंख	<	रुक्ख	<	वृक्ष
(5)	मेवाती ऊ	<	अप० (प्रा०) उ	<	स० औ
	फूस	<	पुस्स	<	पौष
7. ए-	मेवाती ए	<	अप० (प्रा०) ए	<	स० ए, ऐ
	मेह	<	मेह	<	मेघ
	खेत	<	खेत्त	<	क्षेत्र
	तेल	<	तेल्ल	<	तैल

हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह मेवाती में भी संस्कृत आ, इ, ऊ, ऋ मे भी 'ए' व्युत्पन्न हुआ, जिनके उदाहरण हिन्दी के समान ही हैं।

8. ओ-(1)	मेवाती ओ	<	अप० (प्रा०) औ	<	स० ओ, औ
	होठ	<	ओट्ठ	<	औष्ठ
	होलका	<	होलिआ	<	होलिका
	कोठ्यारी	<	कोट्ठारिअ	<	कोष्ठागारिक
	पोतो	<	पोत्त	<	पौत्र
	मोती	<	मौत्तिअ	<	मौक्तिक

स० उ, ऊ, अव, व से भी मेवाती 'ओ' हिन्दी की बोलियों की तरह विकसित हुआ है। उदाहरणार्थ—मोल, पोथी, चौक, चौदह, सोनो, मोर, जो (यव), आदि।

(2) विदेशी ओ से—

मेवाती ओ	फारसी ओ	>	अंगरेजी ओ
जोर	— जोर	>	
गोस	— गोश्त		
कोसिस	— कोशिश		

अफमोस	—	अफमोस	<	
कोट	—	<	<	कोट
नोट	—	<	<	नोट
बोट	—	<	<	वोट
रेंडियो	—	<	<	रेडियो

9 ऐ (संयुक्त स्वर) —

(1) मेवाती ऐ	<	अप० (प्रा०) अइ	<	स० ऐ (अ+इ)
चैत	<	चइत	<	चैत्र
वैर	<	वइर	<	वैर
वैराग	<	वइराग	<	वैराग्य
स० औ से	<	कौरव	< मे०	कैरव
स० ए से	<	धेनु	<	धैन
स० अय से	<	नयन	<	नैण,
		निर्भय	<	निरभै,
		निश्चय	<	निसचै
स० अ से	<	ग्रंथि	<	गैठ
स० अइ से	<	उपविष्ट	<	बइट्ठ < बैठ
		खदिर	<	खइर < खैर
स० इ से	<	द्विशाख	<	बैसाख

विदेशी शब्दो से—फा० मैदान, खैर, कैद

इनके अतिरिक्त प्रा० एरिसो (स० ईदृश), प्रा० केरिसो (स० कीदृश) आदि के र् को लोप हो जाने से 'इ' के सयोग से 'ए' का 'ऐ' हो गया है । यथा—

कीदृश < केरिसो < कैसो

☐ अनुनासिक स्वर

प्रत्येक स्वर निरनुनासिक एव अनुनासिक दो रूपो में प्रयुक्त होता है । इनका प्रयोग तत्सम रूपो के अनुनासिक व्यजन के लोप की जगह होता है । सस्कृत की सभी नासिक्य ध्वनियाँ (ञ् म् ङ् ण न्) अनुनासिक स्वरो मे अनुस्वार बन कर प्रयुक्त होती हैं । मेवाती में इन ध्वनियो का विकास निम्न प्रकार से सभी स्थितियो देखा जा सकता है—

आदि—अंत, औंडो, अङ्क अङ्ग अन्तरजामी अंधमधुंद आँवडा, आँगली, आँच आँट आँत, आँदो आँधी ऊँगो अजन ।

मध्य—अनन्त, अनन्दा, इकन्तर काँपो, कुँजर, खँभ, छूँटी, डूँगर, पछी, पथ, पाँ पाँव, फूँस, बँध, वहाँण, भौंरा, मगल, मत्र, माऊँ (तरफ), सँगी, सँवल सत, साँची, करँगा, कूँट, कूँडा, गडी, गओी गँडो, जाँच, जग, तुँगली पराँवठा, पँगो, फिराँस, सिवादे, हँसली।

अन्त—ऐसेँ, नूँ, पूँनू, भ्यूँ, भिदाऊँ।

मेवाती के वर्गीय-अनुस्वार के लोप के साथ-साथ पूर्व स्वर के दीर्घीकरण के उदाहरण निम्न प्रकार से हैं—

जङ्घा	>	जाघ,	चञ्चू	>	चूच
पिञ्जर	>	पीजरो,	बिन्दु	>	बूद
कम्प	>	काप,	अन्त्र	>	आँत
अगुली	>	आँगली,	स्कन्ध	>	काँधो
चन्द्र	>	चाद,	स्वामी	>	साई

☐ **स्वत या अकारण अनुनासिकता[29]—**

अकारण अनुनासिकता की प्रवृत्ति प्राकृत काल से हो रही है। मेवाती मे भी अनुनासिक स्वरो के कुछ ऐसे उदाहरण मिले है। ऐसे शब्दो के तत्सम शब्दो के अनुनासिक का अभाव रहता है। यथा—

उष्ट्र	>	ऊट,	उच्च	>	ऊचो
काक	>	कावगो,	अर्चि	>	आच
सत्य	>	साच,	सदा	>	सदा
मर्गशीर्ष	>	मगसिर,	सर्प	>	साँप
अश्रु	>	आसू	श्वास	>	साँस
यूक	>	जू,	इष्टि	>	ईट
वक्र	>	बाको,	पक्ष्म	>	पाख

इसके विपरीत मूलत: आगत अनुनासिक ध्वनियो का लोप हो गया है। यथा—

दष्टिका	>	डाढी,	अभ्यन्तर	भीतर
विंशति	>	बीस		

इस प्रवृत्ति को निरनुनासिकता की प्रवृत्ति भी कहते हैं।

☐ **व्यंजन परिवर्तन**

मूल व्यंजन—

(1) महाप्राण ध्वनि का 'ह्' मे परिवर्तन—प्रा भा प्रा मा. के शब्द के स्पर्श महाप्राण व्यजन—छ, झ, ठ, ढ और फ– को छोडकर स्वरो के मध्य मे आने

पर 'ह्' मे परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसे व्यजनो मे एक अ श वर्गीय स्पर्श का रहता है तथा दूसरा हकार का। मेवाती मे इस प्रवृत्ति का प्राचुर्य देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ—

ख	>	ह	=	मुख	>	मुह
घ	>	ह	=	मेघ	>	मेह, म्है
				अरघट्ट	>	रहट
थ	>	ह	=	कथ	>	कह
				प्रथर	>	पहलो
ध	>	ह	=	मधु	>	मोह
				युधिष्ठिर	>	दुहिटल
				गोधूम	>	गीहू

भ	>	ह	=	आभीर	>	हीर,	गोधा	>	गुहरो
				भू	>	हो,	सौभाग्य	>	सुहाग
				भाण्डिका	>	हाडी,	शोभन	>	सोहणो

(2) घोषीकरण—अघोष, अल्प प्राण, स्पर्श व्यजन सघोष अल्पप्राण स्पर्श व्यजन मे परिवर्तित हो जाता है। यह प्रक्रिया शौरसेनी प्राकृत मे भी मिलती है— चलति > चलदि। मेवाती मे इसके उदाहरण दृष्टव्य हैं—

क	>	ग	=	आकाश	>	अग्गास,	काक	>	कागलो
				शाक	>	साग,	सकुन	>	सुगन
				कंकण	>	कागण,	प्रकाश	>	परगास
				प्रकट	>	परगट			
ट	>	ड	=	कपाट	>	किवाड,	कीट	>	कीडो
				घोटक	>	घोडो	चेटक	>	चेडो
त	>	द	=	यातना	>	जादना			

(3) 'म' विषयक नियम—'म' ओष्ठ्य अनुनासिक ध्वनि है। अत. कभी-कभी इसके ये दोनों अ'श पृथक-पृथक हो जाते है। ओष्ठ्य अ श 'व' मे परिवर्तित हो जाना है तथा अनुनासिक अ'श 'व' से हट कर पिछले स्वर को अनुनासिक कर देता है।[80] मेवाती मे इस तरह के अनेक उदाहरण मिले हैं—

ग्राम	>	गाव,	नाम	>	नांव
भीम	>	भींव,	कुमार	>	कवारो
श्यामल	>	सांवलो,	धूम	>	धूंमा, धूंवा
जामतृ	>	जवाई।			

(4) 'ण' विषयक नियम—तद्भव शब्दों के स्वर मध्यम 'ण' का हिन्दी
हिन्दी मे 'न' तथा मेवाती मे 'ण' हो जाना है। यथा—

स०	>	तद्भव	>	मेवाती	हिन्दी
स्थान	>	ठाण, थाण	>	ठाण, ठाणो	स्थान
कङ्कन	>	ककन	>	कागण	कगन
कामिनी	>	कामण	>	कामण	कामिनी
श्रवण	>	सुण	>	सुण	सुन
पालन	>	पालण	>	पालण	पालन
मिल्	>	मिलण	>	मिलणो	मिलना
गन्	>	गण	>	गिण	गिन
चनक	>	चणग्र	>	चणो	चना
ग्रलवनक	>	ग्रलवणग्र	>	ग्रनूणो	ग्रलोना
द्विगुन	>	द्विगुण	>	दुगणो	दुगुना

(5) उष्म ध्वनि विषयक नियम—सस्कृत की उष्म ध्वनियो मे श ष के स्थान पर मेवाती मे सर्वत्र केवल दन्त्य 'स' उष्म ध्वनि का प्रयोग होता है। 'ष' का प्रयोग कभी-कभी लेखन मे 'ख' की तरह भी होता है।

श > स	=	शब्द	>	सबद,	शरीर	>	सरीर
		शत्रु	>	सत्रु,	शका	>	सक
		शाक	>	साग,	शनि	>	सनी
		शशि	>	सस,	यश	>	जस
		वश	>	बस,	श्वसुर	>	सुसरो
		सदेश	>	सदेसो			
ष > स	=	वर्ष	>	बरस,	ग्राषाढ	>	साढ
		वर्षा	>	बारस			
ष > ख	=	सषी	>	सखि,	सनमुष	>	सम्मुख
		सिष	>	शिक्षा,	सुष	>	सुख
		षां	>	खान			

(6) 'य' का 'ज' यथा—

यातना	>	जातना,	यौवन	>	जुवना
दुर्योधन	>	जरजोध,	यदुवश	>	जादूवस
योद्धा	>	जोधडा, जोधिया	सूर्य	>	सूरज
यमुना	>	जमना,	यव	>	जौ।

(7) 'व' का 'ब' – यथा—

वरमाला	>	बरमाला	विक्रम	>	बिकरम
वासुकी	>	बासक,	रघुवश	>	रगबस
वेद	>	बेद,	विदेश	>	बदेस,
वाणिज्य	>	बिणजी,	वाणिज्यकार	>	बिणजारी
वासुदेव	>	बासोदम ।			

(8) सख्यावाचक विशेषणो मे उष्म 'श, स' के स्थान पर 'ह' हो जाता है। यथा –

द्वादश	>	बारह,
एकसप्तति	>	इकहत्तर

(9) उच्चारण करते समय मेवाती मे हिन्दी की मध्यात ध्वनि 'ह' का लोप हो जाता है। यथा—

सिंह	>	सिंग,	जगह	>	जग
साधुकार	>	साउकार,	सलाह	>	सल्ला
सुबह	>	सुबै,	विवाह	>	ब्या
अल्लाह	>	अल्ला	सोलह	>	सोला,
कुम्हार	>	खुमार	खुशहाली	>	खुसाली,
सरहद	>	सरद,	सम्हाल	>	समाल ।

(10) मेवाती मे हिन्दी लुंठित अल्पप्राण 'र' का 'ड', 'ल' तथा पार्श्विक अल्पप्राण व्यजन 'ल' का 'र', 'ल' हो जाता है। यथा—

र > ड =	कचहरी	>	कचेडी,	महर	>	महड,
	सियार	>	स्याड,	हरण	>	हडण
र > ल =	दिलेर	>	दलेल,	युधिष्ठिर	>	दुहिटल
	प्यारा	>	प्याला	करवट	>	कलौट,
ल > र =	कुल्हाडा	>	कुराहडा			
ल > ल =	पहेली	>	फाली,	काला	>	कालो,

(11) मेवाती मे हिन्दी की अल्पप्राण व्यजन ध्वनियाँ महाप्राण मे परिवर्तित हो जाती है—

क > ख =	कही	>	खई,	केश	>	खेस
	किस्सा	>	खिस्सा,	कैरी	>	खैरी ।
ग > घ =	गमला	>	घमला,	गृह	>	घर ।
ज > झ =	पजे	>	पझे			

ट > ठ = करवट > कलौठ, काट्ट > काठू
त > थ = कत > कथा
द > ध = दोपहर > धूपर, दधि > धई
प > फ = पहेली > फाली, पढना > फडणो,

'ब' से 'भ' होने के उदाहरण नही मिलते ।

(12) हिन्दी की महाप्राण व्यजन ध्वनिया मेवाती मे ग्रल्पप्राण हो जाती है —

ख > क = घोखा > धोका चौखट > चौकट,
सीख > सीक, सरीखा > सरका,
सूख > सूक, लाख > लाक,
सुम्मुख > सुनमक, शृखला > साक्ल,
घ > ग = रघुवश > रगबस
ठ > ट = युधिष्ठिर > दुहिटल
थ > त = साथ > सात, हथियार > हतियार,
हाथ > हात, हाथी > हाती ।
ध > द = बाँध > बद, ग्र धा > ग्रांदो,
राधा > रादा, साधु > सादु ।
फ > प = सफाई > सपाई, साफ > सपा ।
भ > ब = लोभी > लोबी, गोभी > गोबी
स्तम्भ > खम्ब, सभी > सबी ।

□ **सयुक्त व्यंजन—**

मेवाती मे द्वित्व व्यजन होने की प्रवृत्ति देखी जा सकती है । उदाहरण के लिए—

छलाँग > छग्गाल जगह > जग्गा,
ग्राकाश > ग्रग्गास, जिला > जिल्ला ।

परन्तु उपर्युक्त उदाहरण ग्रपवाद मानने चाहिए । मुख्य रूप से एक व्यजन ही शेष रहा है । इस सबंध मे डा० चटर्जी[31] एवं बीम्स महोदय[32] ने कुछ मुख्य प्रवृत्तियो का निर्देश किया है । मेवाती मे वे इस प्रकार प्राप्त होती हैं —

(1) स्पर्श + स्पर्श (सम सयुक्त व्यजन) केवल एक व्यजन । ऐसी स्थिति मे प्राय प्रथम व्यजन का लोप हो जाता है तथा सयुक्त व्यजन का पूर्व स्वर दीर्घ हो जाता है, यथा —

मेवाती	<	अप० (प्रा०)	<	स०
मात	<	मत्त	<	भक्त
सात	<	सत्त	<	सप्त
दूध	<	दूद्ध	<	दुग्ध
मूंग	<	मुग्गो	<	मुद्ग

(अनुस्वार का आगम)

(2) स्पर्श + अनुनासिक–यदि स्पर्श के बाद अनुनासिक आता है तो अनुनासिक व्यंजन का लोप हो जाता है। यथा––

मे० आग > अप० (प्रा०) अग्गि > स० अग्नि

परन्तु यदि अनुनासिक व्यंजन पहले आता है तो उसका लोप होकर पूर्व स्वर अनुनासिक हो जाता है। यथा––

जङ्घा	>	जांघ,	टङ्क	>	टांक,
चञ्चु	>	चूंच,	पञ्च	>	पांच,
मञ्च	>	मांचो,	कण्टक	>	कांटो,
मण्ड	>	मांड,	मण्डप	>	मांडो,
शुण्ठि	>	सूंठ,	चन्द्र	>	चांद,
स्कन्ध	>	कांधो, खांधो,	कम्पन	>	कांपणो

लेकिन 'ज्ञ' (ज् + ञ्) के संयुक्त रूप में कई विकार हुए हैं, अतः यह अपवाद है। यथा––

आज्ञा	>	अग्या,	यज्ञोपवीत	>	जनेउ,
राज्ञी	>	राणी,	यज्ञ	>	जग्ग,
ज्ञान	>	ग्यान आदि।			

(3) स्पर्श + अन्तस्थ (य् र् ल् व्) स्पर्श व्यंजन चाहे पहले हो या बाद में, अन्तस्थ व्यंजन का लोप हो जाता है। यथा––

गुर्जर	>	गूजर,	पत्र	>	पत्तो, पात,
अर्क	>	आख,	सूत्र	>	सूत,
सर्प	>	सांप	दुर्बल	>	दूबलो,
योग्य	>	जोग,	योगी	>	जोगी,
पक्व	>	पको,	त्वरित	>	तुरत,
द्वि	>	दो,	ज्वल	>	बल,
अग्रे	>	आगे,	यज्ञ	>	जग्ग।

साथ ही यदि दन्त्य स्पर्श व्यंजन का संयोग किसी अन्तस्थ (य र व) से होता है तो अन्तस्थ का लोप हो जाता है तथा निम्न लिखित परिवर्तन हो जाते हैं—

दन्त्य स्पर्श (त थ द ध) + य = चवर्ग (च छ ज झ)

दन्त्य स्पर्श (त थ द ध) + र = टवर्ग (ट ठ ड ढ)

दन्त्य स्पर्श (त थ द ध) +व = पवर्ग (प फ ब भ) हो जाता है । यथा–

□ तवर्ग + य =

सत्य	>	साचो,	नृत्य	>	नाच
योद्धा	>	जोधडो,	अद्य	>	आज
वन्ध्या	>	वाभडी,	विद्युत	>	बीजली
दुर्योधन	>	जरजोध,	यातना	>	जादना
यदुवंश	>	जदवस, जादुवस ।			

□ तवर्ग + र =

कर्तन	>	काटणो	वर्त	>	वाट
गन्त्री	>	गाडी,	तदन	>	ताडणो

□ तवर्ग + व =

वृद्ध	>	बुड्ढो,	द्वादश	>	बारह

(4) स्पर्श + उष्म (श् ष् स् ह्)–ऊष्म के पहले या बाद मे आने वाले स्पर्श का लोप हो जाता है तथा स्पर्श अल्पप्राण, महाप्राण मे परिवर्तित हो जाता है।

स्कन्ध	>	खान्धो,	पुष्कर	>	पुहुकर
शुष्क	>	सूखो	वृश्चिक	>	बीछू, बीच्छू
पश्चिम	>	पिच्छम, पछवा ।	स्तम्भ	>	थाम, थाम्बो
स्पशन	>	फमणो,	ईक्षु	>	ईख
कुक्षि	>	कूख,	क्षेत्र	>	खेत

(5) नासिक्य + नासिक्य – संयुक्त नासिक्य बहुत कम मिलते हैं । संस्कृत मे ही ञ और ण् कभी संयुक्त नही हो सके । केवल न् और म् मे संयोग स्थापित हो सकता है, परन्तु रहेंगे दोनो नासिक्य ही । यथा—

जन्म > जनम ।

(6) नासिक्य + अन्तस्थ – दोनों के संयोग होने पर अन्तस्थ का लोप हो जाता है । अन्तस्थ के साथ नासिक्य ङ् का कभी संयोग नहीं होता । यथा—

शून्य	>	सूनो,	ताम्र	>	तांबो
ऊर्ण	>	ऊन, ऊणो (बकरी का बच्चा)			

कर्ण > कान, स्वर्ण > सोना
चूर्ण > चून्नो, चूनो, चून
पूर्णिमा > पून्यु, चर्मकार > चिमार ।

(7) नासिक्य + ऊष्म – ष्ण, स्न, श्न, ष्म, स्म, श्म । इनके संयोग पर कभी नासिक्य का, कभी ऊष्म का और कभी दोनों का लोप हो जाता है । कभी ऊष्म के स्थान पर 'ह' हो जाता है । यथा –

स्नेह > नेह, श्मशान > मुसाण, मसाण
स्नान > न्हाण ऊष्म > उन्हालो
स्मरण > सुमरण श्मश्रु > मूछ

(8) अन्तस्थ + अन्तस्थ – मिलने पर कभी-कभी एक का लोप हो जाता है तथा कभी-कभी दोनों ही किसी न किसी रूप में रहते हैं । 'य' में ल्, र्, व् मिल सकते हैं, य् स्वयं किसी में नहीं मिलता । 'र' 'व' सब में मिल सकते हैं । यथा—

सर्व > सब, कार्य > काज, कारण
पर्यंक > पिलग चौर्य > चोरी
सूर्य > सूरज, आश्चर्य > अचरज
कल्य > काल, मूल्य > मोल ।

(9) अन्तस्थ + ऊष्म – कभी ऊष्म, कभी अन्तस्थ और कभी दोनों शेष रहते हैं । यथा—

श्यालक: > सालो कर्षण > काढणो
मार्गशीर्ष > मगसर, मगसिर, वर्ष > बरस
वर्षा > बारस, श्यामल > सावलो
श्रावण > सावण, आश्रय > आसरो
मिश्र > मिस्सर, ईश्वर > ईसुर
स्वामी > साई ।

□ व्यंजन-लोप—

प्राकृत शब्दों के अन्त में व्यजनों का सदा लोप हो जाता है । मध्य में भी प्राय: लोप हो जाता है । वैदिक संस्कृत में भी आदि व्यंजन लोप के उदाहरण मिलते हैं । जैसे –

श्चन्द्र > चन्द्र, स्तारा > तारा[33]

व्यंजन लोप की तीन स्थितियाँ हैं—

1. आदि,
2. मध्य और 3. अन्त ।

□ आदि-व्यंजन-लोप-यथा-

स्थाली	>	थाळी, थाली,	स्कन्ध	>	खंधो
स्थान	>	ठाण,	ज्वल	>	बल
श्मशान	>	मुसाण,	श्मश्रु	>	मूंछ
स्फोट	>	फोडो,	स्टेशन (अं०)	>	टेसण

[] मध्य-व्यंजन-लोप--यथा--

लक्ष	>	लाख,	उत्खल	>	ऊखल
सत्य	>	साँचो,	द्वार	>	बारणो
सूची	>	सूई,	अर्चि	>	आँच
हस्ती	>	हाती,	मिष्ट	>	मीठो
कोकिल	>	कोयल,	नग्न	>	नागो
रोदन	>	रोणों,	गर्भिणी	>	ग्याभण
कर्पट	>	कापडो,	रजिस्टर (अं.)	>	रिजटटर

इस प्रकार मध्य-व्यंजन के लोप होने से क्षतिपूर्ति हेतु पूर्व स्वर दीर्घ हो जाता है। दीर्घीकरण की यह प्रवृत्ति बंगला, आसामी उड़िया, मैथिली, भोजपुरी, अवधी, गुजराती एवं पश्चिमी राजस्थानी में भी पाई जाती है। हिन्दी, पंजाबी, लहंदा में व्यंजन लुप्त होने पर भी पूर्व स्वर ज्यों का त्यों रहता है। पश्चिमी हिन्दी में दोनों तरह की भाषाओं के तत्व मिलते हैं।

[] अन्त-व्यंजन-लोप--यथा

अल्लाह	>	अल्ला	सलाह	>	सल्ला
दुरुस्त	>	दुरुस,	दुर्भाग्य	>	दुहाग

□ व्यंजनागम--

आदि-व्यंजन--यथा--

अस्थि	>	हाडी	युधिष्ठिर	>	दुहिटल
दुर्योधन	>	जरजोध	कुंती	>	गूंता

मध्य व्यंजनागम--यथा--

तलाक	>	तल्लाक,	विमाता	>	बीहमाता
बेईमान	>	बेहीमान,	स्वयंवर	>	सहेम्बर

अन्त्य व्यंजनागम--यथा--

दुहिता	>	धीयडी	स्थान	>	ठौड़
वत्स	>	बछडो,	भ्रातृ	>	भाईडा

व्यञ्जन-विपर्यय—यथा—

ब्राह्मण	>	बाम्हण,	परिधान	>	पहरणो
गृह	>	घर,	स्नान	>	न्हाण
विवेक	>	बमेक,	दधि	>	धई
वाणिज्य	>	बिणजी,	छर्गाल	>	छगाल

☐ प्रतिध्वनित—

मेवाती मे प्रतिध्वनित शब्दो के लिए 'व' (ऊ, ओ) तथा 'म' का प्रयोग होता है। प्राय सभी स्पर्शों (ड, ज, ण के अतिरिक्त) का प्रतिध्वनित रूप बनाने के लिए व' ध्वनि का प्रयोग होता है। यथा—

काम	>	वाम,	खरच	>	वरच,
गाडी	>	वाडी,	घर	>	वर
चाख	>	वाख,	छुट्टी	>	वुट्टी

☐ व्यंजन ध्वनि-विकास—

स्पर्श व्यंजन—

(1) कोमलतालव्य (कण्ठ्य) क् ख् ग् घ्

(1) मे० क्	>	अप० (प्रा०) क्	>	स० क
कांकरी	>	कक्कर	>	कर्कर
कडाह	>	कडाह	>	कटाह
कड	>	कडि	>	कटि
कद	>	कआ	>	कदा
(2) मे० क्	>	अप० (प्रा०) क्	>	स० क्र
कोह	>	कोध, कोह	>	क्रोध
कोस	>	कोस	>	क्रोश
(3) मे० क्	>	अप० (प्रा०) क्	>	स० क्व
काढो	>	काढ	>	क्वाथ
कढी	>	कढिआ	>	क्वथिता

(4) विदेशी क् से—

मे० क्	< अरबी क्	< फा० क्	< तुर्की क्	< अं० क्
कुडतो	—	—	— कुर्त	—
कब्र	— कब्र	—	—	—
कत्लाम	— कत्लेआम	—	—	—
कोट	—	—	—	— कोट
कलट्टर —		—	—	— कलक्टर

☐ स्वर मध्यग एवं पदान्त (पदान्त स्वर लोप से)--

क्—(1) मे० क् > अप० (प्रा०) क्क > सं० क्
येक > एक्क > एक
(2) मे० क् > अप० (प्रा०) क्क > सं० क्र
नांक > नक्क > नक्र
चाक > चक्क > चक्र
(3) मे० क् > अप० (प्रा०) क्क > सं० र्क
कांकरो > कक्कर > कर्कर
सक्कर > सक्कर > शर्करा
(4) मे० क् > अप० (प्रा०) क्क् > सं० क्क, ष्क क्व
चीकणो > चिक्कण > चिक्कण
भोक (णो) > भुक्क > बुक्क
चोक > चउक्क > चतुष्क
पको > पक्क > पक्व
(5) *विदेशी (अरबी, फारसी, अंग्रेजी) क में भी क का विकास हुआ है। यथा—*
सड़क, मकान, इनकार, जंकसन (अंग्रेजी जन्कशन)
(6) बोलचाल में ख का 'क' उच्चारण होता है। यथा—
धोखा > धोको, सम्मुख > सुनमक,
लाख > लाक भूखा > भूखो,

ख् (1) मे० ख् < अप० (प्रा०) ख् < सं० ख्, क्ष, स्क
खिजूर < खज्जूर < खर्जूर
खाट < खट्टा < खट्वा
खारो < खार < क्षार
खीर < खीर < क्षीर
खम्बो < खम्भ < स्कम्भ
(2) मेवाती ख् < अप० (प्रा०) क् < सं० क
खैं < कहइ < कथयति
खीचड़ी < खिच्च+डी < कृसरान्न
खोपड़ी < खप्परो < कर्परः
(3) अरबी—फारसी 'ख' में—
खहरात > खैरात खान > खाँ, खान्

खता > खता,		खरगोश > खरगोस	
खलक > खलक,		खजानह > खजानो	

(4) ध्वन्यात्मक—खिन — खिन (प्रण)

□ **स्वरमध्यग एवं पदान्त (पदान्त स्वर-लोप से)--**

ख्—मे० ख्	<	अप० (प्रा०) क्ख	<	स० क्ष्, ख्य्
पांख	<	पक्ख	<	पक्ष
आंखर	<	अक्खर	<	अक्षर
ईख	<	इक्खु	<	इक्षु
वखाण	<	वक्खाण	<	व्याख्यान

'ष' का 'ख' की तरह प्रयोग प्राचीन लेखन-प्रक्रिया मे तो किया जाता था, परन्तु अब 'ख' का 'ख' ही उच्चारण होता है, 'ष' नही ।

ग्—(1) मे० ग्	<	अप० (प्रा०) ग्	<	स० ग्, ग्र, क
गूजर	<	गुज्जर	<	गुर्जर
ग्याभण	<	गब्भिणी	<	गर्भिणी
गूथणो	<	गुथण	<	ग्रथन
गाहग्	<	गाहक	<	ग्राहक
गीडो	<	गेंदुअ	<	कन्दुक
ग्यारह	<	एगारह	<	एकादश

(2) विदेशी ध्वनियों से (अरबी-फारसी)—

गुस्सा > गुस्सो,		गुलाव > गुलाव,		
गन्दा > गन्दा,		गरीब > गरीब		

□ **स्वर मध्यग तथा पदान्त-ग्**

(1) मे० ग्	<	अप० (प्रा०) ग्ग	<	स० ग्र, ग्न्, ग्य्, द्ग, ल्ग्
आगे	<	अग्गे	<	अग्रे
आग	<	अग्गि	<	अग्नि
सुहाग	<	सोहग्ग	<	सौभाग्य
जोग	<	जोग्ग	<	योग्य
मूंग	<	मुग्ग	<	मुद्ग
फागण	<	फग्गुण	<	फाल्गुण
वाग	<	वग्गा	<	वल्गा
(2) मे० ग्	<	अप० (प्रा०) ग्	<	स० ङ्ग
सींग	<	सिंग	<	शृङ्ग
लोंग	<	लोंग	<	लवङ्ग

(3) मे० ग् < अप० (प्रा०) ग < स० क
सुगन < सगुन < शकुन
साग < साग < शाक

(4) फारसी आदि का ग बोलचाल मे 'ग' बोला जाता है—
बाग > बाग, चिराग > चिराग

घ्—(1) मे० घ् < अप० (प्रा०) घ < स० घ्
घडो < घडग्रो < घटक
घोडी < घोडिग्रा < घोटिका
घी < घिग्र < घृत
(2) मे० घ < (प्रा०) घ < स० गृह्
घरवाली < घरवालिग्रा < गृहपालिका

☐ **स्वर मध्यग तथा पदान्त-घ्**
(1) मे० घ् < (प्रा०) ग्घ < स० द्घ्
उघाडो < उग्घाड < उद्घाटय
(2) मे० घ < (प्रा०) घ < स० घ
जांघ < जघ < जङ्घ

☐ **मूर्द्धन्य-(ट् ठ् ड् ढ्)**

ट्—(1) मे० ट् < प्रा० ट्, ट्ट < स० ट, त, त्र
टीडी < टिड्डिहि < टिट्टिभि:
टांग्रो < टकियो < टकित:
टाल < टाल < ताल
टल (णो) < टल < तर
टूढ+ई < तुड < तुण्ड
टूट (णो) < टुट्ट < त्रुट

(2) अग्रेजी ट् से —
टरालीन < टेरालीन टीप < ट्यूब
टेसण < स्टेशन टैर < टायर

(3) देशी ट् से—
टटोलणो (ढूढना, खोजना), टाट (हरे चने की फली), टोलो (पत्थर), टोलो (सिर मे उंगली से मारना) टाडा (गायो का समूह), टायरो (ठल्वर बैठना, बेकार), टुल्लक (गुदगुदी, ध्वन्यात्मक), ।

□ मध्य एवं पदान्त ट्—

(1) मे० ट्	<	प्रा० ट्, ट्ट	<	स० ट्, ट्ट, र्त, त्र, ष्ट्
लगोट	<	लिंगवट्ट	<	लिङ्गपट्ट
पोटली	<	पुट्टलिग्रा	<	पुट्ठलिका
हाट	<	हट्ट	<	हट्ट
ग्रटारी	<	ग्रट्टालिग्रा	<	ग्रट्टालिका
काटो	<	कटग्रो	<	कण्टक
फोडो	<	फूटो	<	स्फुट
काटणो	<	कट्टण	<	कर्तन
उबटणो	<	उव्वटण	<	उद्वर्तन
कुलाँट	<	करवट्ट	<	करपत्र
ऊट	<	उट्ट	<	उष्ट्र

ठ्—

(1) मे० ठ्	<	प्रा० ठ	<	स० ठ, स्त, स्थ
ठाकुर	<	ठक्कुर	<	ठक्कुर
ठग	<	ठग	<	स्थग
ठहर	<	ट्ठिर	<	स्थिर

(2) देशज— ठट्ठड, वृद्ध, ठोठ (मूर्ख) ठोड (स्थान) आदि।

□ मध्य एवं ग्रन्त ट्—

(1) मे० ठ	<	प्रा० ण्ठ	<	स० थ
गाँठ	<	गण्ठि	<	ग्रंथि
(2) मे० ठ	<	प्रा० ट्ठ	<	स० ण्ठ, ष्ट्र, ष्ट
गूंठो	<	ग्र गुट्ठ	<	ग्र गुष्ठ
कोठो	<	कोट्ठग्रो	<	कोष्टकः
राठ	<	राट्ठ	<	राष्ट्र
मीठो	<	मिट्ठ	<	मिष्ट
लाठी	<	लट्ठिग्रा	<	लष्टिका

ग्रादि ड्—

ड्— (1) मे० ड्	<	प्रा० ड्	<	स० ड
डर	<	डर	<	डर
डाकण	<	डाइणि	<	डाकिनी

(2) मे० ड् < प्रा० ड < स० द्
डोलो < डोलग्रो < दोलकः
डोरी < डोरिग्रा < दोरिका
डाब < डब्भ < दर्भ
डूहा < डूहा < दोहा
डेढ < डिग्रड्ढ < द्वि+ग्रर्द्ध

(3) देशज ड् से—
डटणो (ठहरना), डवनो (दूध ढकने का मिट्टी का बर्तन), डहर (शख्त जमीन), डहलो (बडी खाट) डोकरी (बुढिया) डोंगा (नाव)

(4) अंग्रेजी से ड्—
डाग्दर, डाग्डर (डाक्टर), डिलाईवर (ड्राइवर), डिगरी (डिग्री)।

□ मध्य एवं पदान्त ड्—

(1) मे० ड < प्रा० ड < स० ट
घोड़ो < घोडग्रो < घोटकः
कडाह् < कडाह < कटाह

(2) मे० ड् < प्रा० ड, ण्ड < स० स्थ, ण्ड, ड्य, न्द
हड्डी < हड्डिग्रा < ग्रस्थि
माडो < मण्डग्र < मण्डप
माड < मण्ड < मण्ड
जाडो < जड्डग्र < जाड्य
सदेसो < सण्देसो < सदेश

(3) अंग्रेजी ड् से—
रिकाड (रिकार्ड), गाड (गार्ड), पोसकाड (पोस्टकार्ड)।

(4) देशज—
टोडर (पक्षी विशेष), टडो, भड्डो, गड्डमड्ड गड्डो, डॅड (बुड्ढा)

[. आदि ढ्

(1) मे० द् < प्रा० ढ < स० द
ढोलो < दुल्लहो < दुर्लभः

(2) मे० ढ < प्रा० ड्ढ < सं० र्ध
ढाई < अड्ढतिय < अर्द्ध+तृतीय

(3) देशज ढ से—

ढब (ढग), ढब्बर (गन्दे पानी का खड्डा), ढाप (मिट्टी का बर्तन) ढुमला (मिट्टी का कटोरा), ढूमगी (बर्तन), ढेरे (प्रात.), ढेम (ढेला), ढोकला (दही बिलोने का बर्तन), ढोमगी (मिट्टी का बड़ा बर्तन, जिसमें बारात चावल खाती हैं)। ढोर (पशु), ढोलकी, ढक्णो, ढमढम (ध्वन्यात्मक)

☐ मध्य एवं पदान्त ढ्—

(1) मे० ढ < प्रा० ड्ढ < सं० ध्द, र्ध

बूढो	<	बुड्ढो	<	वृद्ध
ड्रेढ	<	दिवड्ढ	<	द्विप्रर्ध

(2) देशज ढ से—डड्ढल (दाढी वाला)।

☐ दन्त्य-(त् थ् द् ध्)

त्-ग्रादि त्—

(1) मे० त्	<	प्रा० त	<	सं० त् त्र् तृ, त्व
तालो	<	तालग्रो	<	तालकः
तपत, तातो	<	तत्त	<	तप्त
तेरा	<	तेरह	<	त्रयोदश
तिरिया	<	तिरिग्रा	<	त्रिया
तिसना, तिछ्ना	<	तिण्णा	<	तृष्णा
तुरत	<	तुरत्त	<	त्वरित
तू	<	तुग्र	<	त्वया

(2) विदेशी त से—(ग्ररबी-फारसी)-यथा—

तुक्क, तुरक, तुरबन, तोबा, तखत, तखदीर, तकसीर, ततबीर, तहमद, तल्लाक, ताजिया, तवड, ताक, तम्बू, ताश, तसमई।

☐ मध्य एवं पदान्त-त्—

(1) मे० त्	<	प्रा० त्त	<	सं० त्र्, र्त, त्य्, क्त्, त्त, प्त्
ऊत, पूत	<	पुत्त	<	पुत्र
ग्रात	<	ग्रत	<	ग्रत्र
पोतो	<	पोतग्र	<	पौत्रक
सूत	<	सुत	<	सूत्र
बात	<	बत्ता	<	वार्ता
बाती	<	बत्तिग्रा	<	वातिका

ऐत (वार)	<	अइत्त	<	आदित्य
भात	<	भत्त	<	भक्त
भीत	<	भित्त	<	भित्ति
उतरो	<	उत्तरओ	<	उत्तरित
मातो	<	मत्त	<	मत्त
तातो	<	तत्त	<	तप्त
सात	<	सत्त	<	सप्त
सोतो	<	सुत्त	<	सुप्त

(2) विदेशी (अरबी-फारसी) त् से---यथा---
तखत, तूहमत, तुरबत, ततबीर

(3) देशज---

तगड (लकडी की बनी डोली, जिसमे पत्थर भर कर कुए मे नीचे ले जाये जाते हैं), तडकं प्रात), तागडी (करधनी), तवड (पीतल या अल्मूनियम की बडी प्लेट), तील (विवाह का वेश), तुक्का, तु'गली (कान का गहना), तुलि (सरकडो की गिल्ली)।

थ्--आदि थ्--

(1) मे० थ्	<	प्रा० थ	<	स० स्त, स्थ
थण	<	थण	<	स्तन
थाली थाडी	<	थाली	<	स्थाली
थेप (णो)	<	थापइ	<	स्थापयति

(2) देशज---
थावर (शनिवार का दिन), थप्पड, थोबडो (मुह) आदि।

□ मध्य एवं पदान्त-**थ्**--

मे० थ	<	प्रा० त्थ	<	स० र्थ, स्त, स्थ
बिरथा	<	विरत्थ	<	व्यर्थ
पोथी	<	पोत्थिअ	<	पुस्तिका
माथो	<	मत्थओ	<	मस्तक
पालथी	<	पल्हत्थिआ	<	पर्यस्तिका
फत्तर	<	पत्थर	<	प्रस्तर

द्--आदि द् --

(1) मे० द्	<	प्रा० द	<	स० द्, द्र, द
दक्खण	<	दक्खिण	<	दक्षिण

दूबलो	<	दुब्बल	<	दुर्बल
दाख	<	दाक्ख	<	द्राक्षा
दाम	<	दम्म	<	द्राम
दुमुही	<	दुमुहि	<	द्विमुखि
दख्यो	<	दिक्ख	<	दृश

(2) अरबी-फारसी द् से – यथा—

दलेल (दिलेर), दीन, दूरस, दुस्मन, दोजग (दोजख), दोसत (दोस्त), दरखत (दरख्त), दरगाह, दुरवेश (दर्वेश), दलक (दल्क अरबी)।

(3) देशज—

दड़ादड़ (ध्वन्यात्मक), दमड़ो (रास्ता), दमोड़ी (क्रीडा विशेष)

मध्य एवं पदान्त–द्

(1) मे० द्	<	प्रा० द, द्द, अ	<	सं० द, र्द, द्र, द्
भादवो	<	भद्दवअ	<	भाद्रपद
हलद	<	हलिद्दा	<	हरिद्रा
चोदा	<	चउद्दह	<	चतुर्दश
नणदी, नणद	<	णणंदा	<	ननान्दृ
कद	<	कआ	<	कदा
कदी	<	कआवि	<	कदापि

(2) अरबी-फारसी द् से—

दरद, दीदार, आजाद, खुद, उमीद, ईद, आदमी, अन्दर।

ध्—

आदि ध्—मे० ध्	<	प्रा० ध	<	सं० ध
धोलो	<	धवल	<	धवल
धरम	<	धम्म	<	धर्म

मध्य एवं पदान्त-ध्

(1) मे० ध्	<	प्रा० द्ध	<	सं० र्ध, ग्ध
धेलो	<	अधेला	<	अर्ध+एला
आधो	<	अद्धओ	<	अर्धक
ओंधी	<	अधिआ	<	अग्धिका

(2) देशज-धड़ (शरीर), धड़ी (5 सेर), धलक (झटका), धाड़ो (लूट), धाणी (भुने हुए जौ), धामण (मिट्टी खाना माप), धींग (मालदार), धसणो (घुसना)।

□ ओष्ठ्य-(प् फ् ब् भ्)—

प्—आदि प्—

(1) मे० प्	<	प्रा० प	<	स० प्, प्र
पाणी	<	पाणीअ	<	पानीय
पीण	<	पउण	<	पादोन
पीपल	<	पिप्पल	<	पिप्पल
पिच्छम	<	पच्छिम	<	पश्चिम
पुहुकर	<	पोक्खर	<	पुष्कर
पणाह	<	उपाणह	<	उपानह
पोली	<	पओलिअ	<	प्रतोलिका
पाडोस	<	पडोस	<	प्रतिवेश
प्यारे	<	पिआरह	<	प्रियकारयते

(2) विदेशी—अंग्रेजी प से—

पम्प, पिक्चर, पास, पुलस, पेण्ट, पालिस, पिक्चर।

अरबी फारसी प् से—

पाकस्तान, पुख्ता, पुलाव, पुस्त।

□ मध्य एवं पदान्त प—

(1) मे० प्	<	प्रा० प्प म्प	<	म० त्प्, प्प्, र्प्, प
उपजे	<	उप्पज्जइ	<	उत्पद्यते
साप	<	सप्प	<	सर्प
कापडो	<	कप्पड	<	कर्पट
कुपास	<	कप्पास	<	कर्पास
अपणो	<	अप्पण	<	आत्मन्
सपै	<	सपइ	<	सम्पत्ति
जप	<	जप	<	जम्प

(2) विदेशी प् से—अपील, पम्प।

(3) देशज—पडरेट (भैंस का बच्चा) पडपड (ध्वन्यात्मक)।

फ्-आदि फ्—

(1) मे० फ्	<	प्रा० फ	<	स० फ्, स्फ प्
फागण	<	फग्गुण	<	फाल्गुन
फूल	<	फुल्ल	<	फुल्ल
फोडो	<	फोडअ	<	स्फोटक

फारी	<	पहेलिग्र	<	प्रहेलिका
फूस	<	पोह	<	पोष
फाँस	<	फाँस	<	पाश

(2) विदेशी-ग्रंग्रेजी—फैसन फीस ।

अरबी-फारसी—फरज (फर्ज), फरमा. फिजूल, फौज ।

(3) देशज– फटफट, फडफडा (णो) (ध्वन्यात्मक', फलेंडी, फाक, फाल, फुलक, (कोपल) ।

ब्-ग्रादि ब्—

(1) मे० ब्	<	प्रा० ब, व	<	स० व्, ब्र्, द्, भ्, प्
वहरो	<	वहिरो	<	बधिरः प्र्, व्, व्य्
बाँझ	<	बझा	<	वन्ध्या
वकरो	<	वक्कर	<	बर्कर
बाह्मण	<	बम्हण	<	ब्राह्मण
बारा	<	बारह	<	द्वादश
बाहण	<	बहिणी	<	भगिनी
वैठ (णो)	<	बइट्ठ	<	उपविष्ट्
बहोत	<	बहुत	<	प्रभूत
बिकरम	<	बिक्कम	<	विक्रम
बारस	<	वरसा	<	वर्षा
बछड़ा	<	बच्छ	<	वत्स
बीहमाता	<	विमाता	<	विमातृ
बखाण	<	वक्खाण	<	व्याख्यान

(2) विदेशी ब् से–(अरबी-फारसी)— बुजरग, बुरखा, बिसम्मिल्ला, बकदीद ।

(3) देशज—बोगा (छप्पर), बबरो (घुसना), बाडी (गहना), बनाहा (गहना), बूटो (चने का पौदा), बाखल (ग्रन्दर की जगह), बगेलो (फेंका) ।

[] मध्य एवं पदान्त-ब्—

(1) मे० ब्	<	प्रा० ब	<	स० म्ब्, ड्ब, र्ब, र्व
नीबू	<	निम्बुग्र	<	निम्बुक
छब्बीस	<	छब्बीस	<	षड्विंशति
दूबलो	<	दुब्बल	<	दुर्बल

दूब	<	दुब्वा	<	दूर्वा
चाब (णो)	<	चब्बण	<	चर्वण
(2) मे० ब्	<	प्रा० म्ब्, व्व	<	स० म्र, द्
ताम्बो	<	तम्ब्	<	ताम्र
उबटणो	<	उब्वटन	<	उद्वर्तन

(3) अरबी-फारसी से—बाबल, बेताब, अदब, कुतब।

(4) देशज—बबरो (घुसा)।

भ्—मे० भ्	<	प्रा० भ्, ब्, म्	<	स० भ्, ब्, भ्र्
भात	<	भत्त	<	भक्त
भाडो	<	भाडग्रो	<	भाटक:
भीव	<	भीम	<	भीम
भैयो	<	भोमिग्र	<	भूमिक
भोटिया	<	बहुडिग्रा	<	वधुटिका
भोरी	<	भवरिग्रा	<	भ्रमरिका
भींग (णो)	<	भिज	<	ग्रम्यज
भैंस	<	महिस	<	महिष

☐ मध्य एवं पदान्त भ्

(1) मे० भ्	<	प्रा० व्भ	<	स० भं, ह
ग्याभण	<	गब्भिणि	<	ग्याभण
जीभ	<	जिब्भ	<	जिह्वा

(2) देशज—

भलकतो (चमकता), भहगी (दो व्यक्तियों द्वारा पत्थर भ जाने की लकड़ी की टोकरी), भाटा (पत्थर),

☐ स्पर्श संघर्षी (च् छ् ज् झ्)—

च्—(1) मे० च्	<	प्रा० च्	<	स० च्
चैत	<	चइत	<	चैत्र
चणो	<	चणग्र	<	चणक
चून	<	चुण्ण	<	चूर्ण
(2) मे० च्	<	प्रा० त	<	स० त्
चावल	<	तण्डल	<	तन्दुल

□ मध्य एवं पदान्त—च्

(1) मे० च् < प्रा० च्च < स० च्, त्य्, र्च

चूंची	<	चूंचिअ	<	चूचिका
कचेडी	<	किच्चहरिआ	<	कृत्यगृहिका
आच	<	अच्चि	<	अर्चि

(2) फारसी, अंग्रेजी च् से—

चमचो (फा०), बिरच (बैंच), इंच (अंग्रेजी)।

(3) देशज —

चक्ता (विदेशी), चट्ट (समाप्त), चटियो (छोटा कुल्हाड़ा), चमली (बर्तन विशेष), चिपकण (गहना विशेष)।

छ्- मे० छ < प्रा० छ, च्छ, < स० छ, क्ष्, ए्, त्स्

छेली	<	छअलिआ	<	छगलिका
छतरी	<	छत्तरिय	<	क्षत्रिय
छुरी	<	छुरिया	<	क्षुरिका
छठ	<	छट्ठ	<	षष्ठ
छोरी	<	बच्छरिआ	<	वत्सरिका

□ मध्य एवं पदान्त छ्

(1) मे० छ् < प्रा० च्छ, छ < स० च्छ्, त्स, त्स्य, श्र, श्च, च

पूंछ	<	पुच्छ	<	पुच्छ
बाछो, बछ (डो)	<	बच्छ	<	वत्स
माछी	<	मच्छिआ	<	मत्स्यका
मूंछ	<	म्हच्छू	<	श्मश्रु
बीछ्	<	बिच्छूअ	<	वृश्चिक
छूछक	<	चुचुअ	<	चुचुक

(2) देशज—

छल्ला (चांदी की अंगूठी), छोला (हरे चने), छैंलकडा (पैर का गहना)

ज्—(1) मे० ज् < प्रा० ज < स० ज्, ज्य्, य्

जीरो	<	जीरओ	<	जीरक
जागो	<	जागओ	<	जाग्रत
जाडो	<	जाड्डअ	<	जाड्य
जेठ	<	जेट्ठ	<	ज्येष्ठ
जग्ग	<	जग्ग	<	यज्ञ

जादना	<	जायणा	<	यातना
जुबना	<	जोवन	<	यौवन
जँधड़	<	जुग्घड	<	युगघट

(2) विदेशी (अरबी-फारसी, अंग्रेजी)—
जन्नत, जवरा, जबराईल, जरब (घन), जरदा (चावल), जुबान, जुम्मेरात, जुम्मा, जुलाब, जज्ज (जज), जाक्ट (अंग्रेजी)

☐ **मध्य एवं अन्त ज्**

मे० ज्	<	प्रा० ज, ज्ज	<	स० ज्, ज्य्, ज्व्, द्य्, र्ज, र्य
काजल	<	काजल	<	कज्जल
राज	<	रज्ज	<	राज्य
बिणजारो	<	बणिज्जारो	<	वाणिज्यकार
ऊजलो	<	ऊजलओ	<	उज्ज्वलक
बीजली	<	विज्जु	<	विद्युत्
खाज, खिजूर	<	खज्जुर	<	खर्जुर
कारज	<	कज्ज	<	कार्य

झ्—'झ्' ध्वनि का प्रा भा आ. भा मे अभाव था, परन्तु भ. भा. आ भाषाओ मे इस ध्वनि का प्रचुर प्रयोग हुआ। 'झ्' ध्वनि पर अनार्य भाषाओ का प्रभाव पडा है। यही कारण है कि प्रत्येक 'झ्' ध्वनियुक्त शब्द का उद्भव सस्कृत मे खोजना कठिन हो जाता है। फिर भी कुछ रूप ऐसे हैं जो मूल रूप तक ले जाने मे सहायक हो जाते हैं।

आदि **झ्** —

(1 सस्कृत मे आदि झ् रूपो का अभाव है। प्राकृत मे ऐसे रूप मिलने लगे हैं। यथा—

मेवाती झ	<	प्रा० झ्	<	स० झ्
झगड़ो	<	झक्कड	<	—

(2) स० ज्व से मेवाती झ,

झलका	<	झलकिअ	<	ज्वलक्ति

☐ **मध्य एवं पदान्त झ्** —

(1) मे० झ्	<	प्रा० झ	<	स० ध्य
बाँझ	<	बज्झा	<	वन्ध्या
बूझ	<	बुज्झ	<	बुध्य

(2) देशज—

माँटा (कमजोर), भीडा (पेड का नाम), झूमका (काम का गहना) झून (बैलो को ग्रोडाने का करडा), झेला (सिर पर बाँधने की डोरी)

□ अनुनासिक (ण् न् न्ह म् म्ह)—

मेवाती मे सस्कृत के ङ् ञ् अनुनासिक प्रयुक्त नही होते। इनके स्थान पर अनुस्वार या अनुनासिक न् का प्रयोग किया जाता है। शेष मे ण्, न् म् एव इनके महाप्राण रुप प्रचलित हैं। ण् का प्रयोग तो सीधा म भा आ भाषाओ से चला आ रहा है। परन्तु ण् का आदि प्रयोग लुप्त हो गया है। आदि मे 'ण्' की जगह 'न्' का प्रयोग सर्वत्र होता है। यहाँ मेवाती मे प्रचलित अनुनासिको का इतिहास प्रस्तुत किया जाता है।

ण—सस्कृत मे 'ण' का आदि प्रयोग नही मिलता है। प्राकृत मे इसका अत्यधिक प्रयोग हुआ है। पूरे प्राकृत-साहित्य मे तीन हजार से अधिक ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जिनके आदि मे 'ण्' का प्रयोग हुआ है।[84] हिन्दी मे तो 'ण्' की जगह अधिकतर 'न्' का ही प्रयोग होता है, परन्तु पजाबी, मेवाती, अहीरवाटी, मालवी जयपुरी, हाडौती, मारवाडी, मेवाडी, हरियानवी, कौरवी तथा पहाडी बोलियो म आज भी 'ण्' का प्रयोग होता है। साथ ही ब्रज, बुदेली, कन्नौजी, अवधी, छत्तीसगढी बिहारी आदि मे इसका प्रयोग सीमित-सा हो गया है। डा० उदयनारायण तिवाडी का कहना है कि 'आधुनिक भारतीय आर्य भाषा की गगा के काँठे की सभी भाषाओ एव बोलियो मे तद्भव शब्दो मे 'ण' ध्वनि लुप्त हो गई है और यह 'न्' मे परिणत हो गई है।[85]

□ मध्य एवं पदान्त ण्

मे० ण्	<	प्रा० ण	<	स० ण्, न्
भक्ण	<	भक्खण	<	भक्षण
ग्रोगण	<	ग्रोगुण	<	अवगुण
ऊणी	<	ऊण्ण	<	ऊर्ण
बहाण	<	बहिणी	<	भगिनी
पणहा	<	उवाणह	<	उपानह्
पाहुणा	<	पाहुनो	<	प्राहुमक
पाणी	<	पाणीय	<	पानीय
पणहार	<	पाणीयहारिआ	<	पानीयधारिका

न्—'न्' दन्त्य न रहकर वर्त्स्य ध्वनि बन गई है। इसका प्रयोग मेवाती में सभी स्थितियों में होता है। पाँचों अनुनासिकों में से अब 'न्' और 'म्' का ही सर्वाधिक प्रयोग होता है।

आदि न्—

(1) स० न् से—

ननाद्	>	नणद	न्याय	>	न्याव,
नग्न	>	नागा,	नक्षत्र	>	निच्छतर
निम्नपट्ट	>	निवाड	नकुल	>	नुक्ल

(2) स० ल से—

लवण > नूण

(3) स० ण् से—

कृष्ण > किसन तृष्णा > तिछना, तिसना

पण्डित > पन्डत

(4) स० ञ से—

पञ्चदस > पन्दरा

(5) विदेशी न् से-(अंग्रेजी)—

टेरेलीन > टेरालीन नाइलान > लाइलोन

अरबी-फारसी न् से—

नूसनी, पाकस्तान, बेहिमान, नफस्त (मन), नादानी नादर, निकाह, निजर, निदारद, नुक्तो।

(6) देशज न् से—नोल, नाडो, नेजू, नाड, नानी, नीड़।

न्ह्—न्ह्, स० स्न् से—स्नान > न्हाण स्नानघट > न्हावडो, स्नेह > नेह

म्—इसका सभी स्थितियों में प्रयोग होता है।

आदि म्-स० म् से—

मत्स्यिका	>	मछली,	मर्कटिका	>	मकडी
मणि	>	मण,	मातृ	>	मा, माई
मातृजान	>	माजाया,	माघ	>	माह
मातृष्वसा	>	मौसी,	मित्र	>	मिन्तर
मूषिका	>	मूसी,	मेद	>	मेव।

(2) स० श्म से—श्मश्रु > मूँछ श्मशान > मुसाण।

(3) अंग्रेजी म् से—टिमाटर

अरबी-फारसी म् से —

मुणसी, मजल, मदत, मह्रबानी, मालक, माल, मिसाल, मिसरी (तलवार), मुलाखात, मुलमा ।

(4) देशज—ममकणिग्रा, मौडी (जल्दी) आदि ।

☐ मध्य एवं पदान्त-म्—

स० म् से—

विमाता	>	वीह्माता,	भूमि	>	भुम
सम्पत्ति	>	सम्पं,	सम्मुख	>	सनमुख
समुद्र	>	समद, समदर,	स्मरण	>	सुमरणो
ग्राम	>	गाम,	ग्राम्लिका	>	ग्रमलो
ग्रमूल्य	>	ग्रमोलो	ग्रमृत	>	ग्रमरत इमरत

स० भ से —वल्लभ > बलभ

स० म्र से—आम्र > आम, ताम्र > ताम + ड़ी (तामड़ी)

स० म्ब से—निम्ब > नीम

स० र्म से—चर्मकार > चिमार, कर्म > काम

स० ह्म से—ब्राह्मण > बामण, बिराह्मण, बाह्मण

विदेशी म् से—पजामो, बेमार, हाकम, हराम, हुक्म, तमाखू, ग्रमन, तम्बू ।

☐ म्ह्-आदि म्ह्-स० स्म से—ग्रस्मे+करको > म्हारो

स० म्भ् से—कुम्भकार > कुम्हार

☐ पार्श्विक ल्, ल्ह ल्—

ल्-आदि ल्-यह ग्रल्प प्राण, वर्त्स्य, पार्श्विक ध्वनि है । इसकी व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से हुई है—

मे० ल्	<	ग्रप० (प्रा०) ल	<	स० ल
लक्खी	<	लक्खी	<	लक्ष्मी
लगोट	<	लिंगवट्ट	<	लिङ्गपट्ट
लोकस	<	लोकुस	<	लवकुश

☐ मध्य एवं पदान्त-ल्-

(1) मे० ल्	<	प्रा० ल	<	स० ल्
बगला	<	बउल	<	बकुल
दूबलो	<	दुब्बल	<	दुर्बल
ग्रमली	<	ग्रमलिग्रा	<	ग्रम्लिका

(2) मे० ल्	<	प्रा० ल	<	स० य् र् ड्
लाठी	<	लट्ठिग्रा	<	यष्टिका
कलोठ	<	कलवट	<	करवट
सोला	<	सोरह	<	षोडश

अरबी फारसी ल् से—अकल, अरजुल्ला (जमीन), असराल ईल्म, उलि, औलिया, क्लाम, कलमो, कलाकन्द, सलीका, मुलक, मुल्ला।

अंग्रेजी ल् से—कलट्टर, साइकल, जियल जेल), मील, दमेल (ड्रिल)।

अंग्रेजी न से—लोट < नाट, लोटस < नोटिस
लम्बर < नम्बर

पुर्त० ल से—घमला, आल्टी।

देशज—कड्ला, गलेटी (बर्तन), टुल्लक, ढोकला, पलाकडा आदि।

ल्ह—खडी बोली हिन्दी मे ल्ह ध्वनि का आदि प्रयोग नही मिलता। यह ल का महाप्राण रूप है। मेवाती मे इसका आदि प्रयोग भी मिलता है। जैसे–ल्हसवो।

☐ **मध्य एवं पदान्त-ल्ह—**

स० ल्ह् से—मे० चूलहो < प्रा० चुल्हग्रो < स० चुल्हक
प्रा० ल्ह से—मे० कोल्हू < प्रा० कोल्हुग्र
देशज—कूल्हो (नितम्ब)

ळ—काल्डवैल,[36] ज्यूलब्लाक,[37] एव चटर्जी[38] आदि विद्वानो ने 'ळ' ध्वनि को द्रविड भाषाओ का प्रभाव माना है। मराठी, उडिया एव राजस्थानी मे 'ळ' विद्यमान है। पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी मे 'ळ' नही प्रयुक्त होता। द्रविड भाषाओ के इस 'ळ' का प्रभाव इतना अधिक पड़ा है कि संस्कृत तत्सम शब्दों मे भी 'ल' का 'ळ' हो जाता है। जिस प्रकार द्रविड भाषाओं मे 'ळ' का आदि प्रयोग नही होता, मेवाती म भी 'ळ' का आदि प्रयोग नहीं होता।

मध्य ळ—मेवाती	<	प्रा०	स०
कामळी	<	कम्मलिग्रा	कम्बलिका
बळद	<	बलिवद्द	बलिवर्द

अन्त्य ळ—मे० ळ	<	प्रा० ल	<	स० ल्
काळो	<	काल	<	काल
धोळो	<	धउल	<	धवल
साळी	<	सालिग्रा	<	श्यालिका
फाळी	<	पहेलिग्रा	<	पहेलिका

देशज व ओगाल, कोली, खरल-खरल (ध्वन्यात्मक), टोला, तील, पला, वाघाली, बटला (गहना विशेष), भेलो (इकट्ठा)।

☐ लुण्ठित–र्—आदि र्

(1) मे० र्

(1) मे० र्	<	प्रा० र	<	स० र्
रगत (लय)	<	रगिति	<	रङ्गि
राव	<	राय	<	राजन्
रीत	<	रीइ	<	रीति
रट्टावत (मेवोका एक गोत्र विशेष)	<	ट्टउत्त	<	राष्ट्रपुत्र
रई (मथानी)	<	रइग्र	<	रचित
राड (लडाई)	<	राडि	<	राटि
रत्तवाई, रतवाई	<	रत्तवाय	<	रात्रिवाचम्

(2) स ऋ > प्रा० र से-यथा—

ऋतु	>	रिउ	>	रुत्त
ऋण	>	रिण	>	रिण
ऋक्ष	>	रिच्छ	>	रीछ
वृक्ष	>	रक्ख	>	रूख। (अनुनासिक का आगम)

(3) अरबी-फारसी र् मे—
रगनर (गहरी), रजा, रजाई, रब, रवाज, रसूल, राय, रिसालो, रियात, रिहाड, रुजगार (रोजगार), रेसमी, रोजा।

(4) अंग्रेजी र से—रिजट्ठर (रजिस्टर), रिम, रेल आदि।

☐ मध्य एवं पदान्त—

(1) स० र, ऋ > प्रा० र से—

हरिण	>	हरिण	>	हीरण
अव+ओरुह	>	ओरुह	>	ओरो, खेत मे बीज योते समय हल से बांधी हुई थोयी नालिका)
उरभ्र	>	उरब्भ	>	उरना (भेड का बच्चा)
अवसर	>	ओसर	>	ओसरो
अन्धकारित	>	अन्धारिग्र	>	अंधेरी (आंधी)

व्--शब्द के आदि मे प्राय व् का ब् होता है। यथा--

वधू	>	बहू,	वद्री	>	बदरी,
वैरिन	>	बैरी,	वीर	>	बीर,
सर्व	>	सब,	वार्ता	>	बात

'व' का विकास निम्न प्रकार हुआ है--

□ आदि **व्**--

(1) स० व् से-यथा--

विधाता > बिधना, विपत्ति > बिपदा

□ मध्य एवं पदान्त **व्**--

(1) स० व से-यथा--

श्रावण	>	सावण	>	सावण

(2) स० प से-यथा--

ताप	>	ताव	>	ताव
कच्छपक	>	कच्छवओ	>	काछवो
कूप	>	कुव	>	कूवो

(3) स० म् से-यथा--

श्यामल:	>	सांवलो	>	सांवलो
आम्लक:	>	आमलओ	>	आंवलो
भीम	>	भींव	>	भीव

(4) स० द् से-यथा--

पाद	>	पाअ	>	पाव
भेद	>	भेअ	>	भेव

(5) अरबी-फारसी व से-यथा--

हवार, दीवान, पुलाव, स्वाद, बेवकूफ आदि।

(6) अंग्रेजी 'व' से-यथा--

वास्कट (वेस्टकोट), वैल (वायल)।

(7) देशज--

गीडवा (मिट्टी का कीडा), गीदवा (तकिया), डिडावं (चिल्लाना)।

संदर्भ संकेत

1. हिं. भा. इ. (इतिहास) अनु॰ 7, पृ॰ 78
2. हिं भा., भोलानाथ तिवारी, अनु॰ 1. 1. 6. 1., पृ॰ 15
3. द. हि. उ वि, श्रीराम शर्मा, पृ॰ 35
4. हिं. भा. इ. (इतिहास) अनु॰ 18, पृ॰ 104
5. हिं. फो., कादरी, पृ॰ 51 (6) भो. इे. वै. लै, अनु॰ 140
7. हि. भा. उ वि., अनु॰ 19, पृ॰ 321
8. हिं. भा. इ. (इतिहास), अनु॰ 28, पृ॰ 107
9. नोटस आन आर्यन एण्ड द्रविडियन फिलोलाजी, शेषगिरी शास्त्री, पृ॰ 2, 3
10. क. ग्रा. ग्रा., अनु॰ 59, पृ॰ 233 (11) हिं. भा. इ., अनु॰ 41, पृ॰ 117
12. भो. इे. वे. लै., अनु॰ 130, पृ॰ 242
13. हिं. फो, अनु॰ 18, पृ॰ 82-83 (14) ए. अ., अनु॰ 30
15. हिं. भा. इ., अनु॰ 53, पृ॰ 118 (16) हिं. भा. उ. वि., अनु॰ 27, पृ॰ 323
17 ग्रा हि. लै, केलाग, अनु॰ 27, 17 (18) हिं. भा. इ., अनु॰ 60, पृ॰ 120
19. वही, अनु॰ 61, पृ॰ 120 (20 हिं. फो., पृ॰ 89
21. ए. अ., अनु॰ 62 (22) हिं. भा. (इतिहास), पृ॰ 37
23. द. हि. उ. वि., श्रीराम शर्मा, अनु॰ 60, पृ॰ 43 से उद्धृत
24. ग्रा. हि. लै, अनु॰ 30, पृ॰ 18 (25) हिं. फो., कादरी, अनु॰ 28 पृ॰ 90
26. हिं. भा., इ. अनु॰ 68, पृ. 123 (27) हि. भा. अनु॰ 1. 2. 1. 1. 6, पृ. 38
28. हि. व्या., अनु॰ 56, पृ॰ 41
29. ने. हि. लि व., जर्नल आव द डिपार्टमेंण्ट आव लेटर्स, कलकत्ता, भाग 18
30. क ग्रा. ग्रा., वीम्स, ग्रंथ 1, अनु॰ 65, पृ॰ 254-255
31. भो इे. वे, अनु॰ 235 (32) क. ग्रा. ग्रा., ग्रंथ 1 अनु॰ 73, पृ॰ 281
33. इ. ग्रा, बुल्हर, पृ॰ 12-16 (भाषा रहस्य, श्यामसुन्दरदास, पृ. 293 से उद्धृत)
34. हिं. भा, भो. ना. तिवारी, (इतिहास), पृ॰ 77
35. हिं. भा. उ. वि., अनु॰ 171, पृ॰ 389 (36) क. ग्रा. द्र., पृ॰ 56
37. ला. फा. लै. म., अनु॰ 144, पृ॰ 182-183
38. भो. इे. वे., अनु॰ 80, 292, पृ॰ 170, 538

पंचम् अध्याय
रूपात्मक विकास
संज्ञा

☐ मूल रूप एवं विकृत रूप

व्याकरणगत परिवर्तन से पहले का साधारण शब्द-रूप मूल रूप कहलाता है एवं परसर्ग या विभक्ति लगने से पहले का संज्ञा या सर्वनाम का विकृत रूप तिर्यक या विकृत रूप कहलाता है। प्रा० भा० आ० भाषा में जो लिंग–वचन तथा कारक का विधान था वह न० भा० आ० भा० ने स्वीकार नहीं किया। इन भाषाओं ने तत्सम और तद्भव संज्ञाओं को स्वीकारते हुए भी म० भा० आ० भा० की लिंग, वचन और कारक संबंधी व्यवस्था का अनुसरण नहीं किया। मेवाती का विकास भी इसी दिशा में प्रगतिशील है। लिंग-वचन संबंधी शैथिल्य इसके विकास का सूचक है। वचन की दृष्टि से मेवाती के पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग शब्द-रूप हिन्दी, दक्खिनी एवं ब्रजभाषा के समान ही हैं।[1] पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश में द्विवचन नहीं होता। पालि से लेकर अपभ्रंश तक तथा आधुनिक भा० आ० भा० हिन्दी आदि में द्विवचन का जो अभाव पाया जाता है उसका कारण यह है कि वैदिक जन–भाषा में ही द्विवचन का अभाव था। परिनिष्ठित संस्कृत के रूढिबद्ध हो जाने के कारण उसका स्वाभाविक विकास रुक गया और उसके स्थान पर वैदिक जनभाषा से विकसित जन भाषाएँ चल पड़ीं। स्वभावत उन जनभाषाओं में भी द्विवचन का अभाव हो गया।[2]

मेवाती एक विकासशील बोली है। प्राचीनकाल से ही हिन्दी की विविध बोलियों की लिंग-वचन प्रणाली का इस पर प्रभाव पड़ा है।

☐ पुल्लिंग मूल रूप –

(1) अकारान्त –

मेवाती अकारान्त पुल्लिंग रूप, दोनों वचनों तथा दोनों लिंगों में उपलब्ध हैं—

मूल रूप

एक वचन	बहु वचन (विकृत रूप)
हात	हातां की
बरस	बरसां तैं
घर	घरां मैं

एक वचन से बहुवचन बनाने की यह प्रणाली जयपुरी, दक्खिनी हिन्दी, पजाबी तथा भीली मे भी देखने को मिलती है। मेवाती मे अकारान्त पुल्लिगवाची शब्दो के बहुवचन बनाने के लिए 'न' या 'अन' का भी प्रयोग किया जाता है। अन की व्युत्पत्ति सबध-षष्ठी के बहुवचन के चिन्ह, 'आनाम्' (आम्) से सभव है। जैसे—

मूल रूप एक वचन	बहुवचन
सरदार	सरदरान की
ट्रक	ट्रकन का
रुख	रुखन को

बीम्स महोदय का कहना है कि मूल अवस्था मे पुल्लिग एव स्त्रीलिंग शब्दो के बहुवचन बनाते समय हिन्दी और उसकी उपभाषा-बोलियो में अन्तिम 'अ' का बहुवचन 'ए' 'अन' अथवा 'आँ' लगाकर बनाया जाता है, उनमे सस्कृत के अकारान्त नपुसकलिगी शब्दो के प्रथमा के बहुवचन मे प्रयुक्त 'आनि' प्रत्यय का प्रभाव देखा जा सकता है। पुरानी राजस्थानी मे 'आन्' के सयोग से बहुवचन के उदाहरण मिले है, जो 'आनि' का विकृत रूप है। यह 'आन्' ही आगे चलकर 'आ' मे परिवर्तित हुआ।[3] डा० तेस्सितोरी भी 'आनि'–(अइ) से ही–आँ को व्युत्पन्न मानते हैं।[4] केलाग महोदय भी उपर्युक्त मत का समर्थन करते हैं।[5] अकारान्त विदेशी शब्दो मे वचन-लिग मेवाती व्याकरण के अनुसार प्रयुक्त होते हैं। यथा—

मरदन वाला बोल (मर्द–मरदन)–मर्दों जैसी बात।

वहीं-कही अकारान्त पुल्लिग सज्ञा का बहुवचन पालि की तरह 'आ' लगाकर भी बनाया जाता है, यथा—

मे०–'धरती का रुखडा सूखगा।' हिन्दी–धरती के वृक्ष सूख गये।

□ आकारान्त—

आकारान्त शब्दों में एक वचन मे बहु वचन बनाते समय अनुस्वार या 'न' का प्रयोग किया जाता है। यथा—

गलियारां को कुत्तो, गलियारा (एक वचन), गलियारा, गलियारान (बहुवचन)।

इसी तरह—

आंखडां (आखों), उपला (कन्डे), उरनां (बकरी के बच्चे), ओछां (छोटे), कागलां, काचवां (कछुवे), चेलां, चेलान (अपना चेलान नै बुलार अलवर की यमासत करी)। स्पष्ट है कि मेवाती मे आ– आ वाला रूप राजस्थानी

की देन है। इस 'आ' की व्युत्पत्ति भी संस्कृत के नपुंसकलिंगी 'आनि' से ही सबन्धित है। डा० तेस्सितोरी[6] ने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई है—

आनि (स०) > आई (> अइ) > आ

'आइ' का सकोचन 'आ' मे हो जाता है[7] तथा 'आ' पर अनुस्वार लग जाता है।

☐ ईकारान्त—

मेवाती मे ह्रस्व इकारान्त शब्दो का प्रयोग नहीं होता। ईकारान्त पुंल्लिग शब्दो के बहुवचन मे 'ई' को 'इयां' तथा 'या' बन जाता है। यहाँ यां' तथा 'इयां' मे 'आ'' नपुंसकलिंगी प्रथमा के बहुवचन के 'आनि' का द्योतक है तथा 'य' श्रुति का आगम हो गया है। उदाहरण के लिए—

एक वचन		बहुवचन	एक वचन		बहुवचन
चौधरी	—	चौधरियां	हाथी	—	हाथ्यां
छतरी	—	छतरियां	ग्रहस्ती	—	ग्रहस्थियां
धणी	—	धणियाँ	जोगी	—	जोगियां

☐ ऊकारान्त—

ऊकारान्त पुंल्लिग वाची शब्द से अविकृत रूप म बहुवचन बनाने क लिए 'न' लगा दिया जाता है। जैसे—

दे कै बीस लड्डून नै अपने घर आयो।

इसी तरह—

एक वचन	बहु वचन	एक वचन	बहु वचन
आलू	आलून	गीहू	गीहून
चक्कू	चक्कून	पखेरू	पखेरून

'न' संस्कृत < आनि से व्युत्पन्न है। ऊकारान्त पुंल्लिग शब्दो मे मेवाती किसी का अनुसरण नही करती। किसी भी अन्य भाषा मे यह रूप नहीं मिलता।

☐ ओकारान्त—

ओकारान्त पुंल्लिग सज्ञाओ के अविकृत रूप के बहुवचन मे 'ओ' का 'आ' हो जाता है। 'आ' की व्युत्पत्ति डा० चटर्जी संस्कृत की चतुर्थी विभक्ति से मानते हैं।[8] लेकिन 'ओ' का बहुवचन 'आ' रूप संस्कृत की अपेक्षा पालि से आया जान पडता है। पालि मे बहुत पहले प्रथमा बहुवचन मे-आ रूप मिलते हैं, यथा—बुद्धो-बुद्धा। पुरानी राजस्थानी मे कर्ता कर्म बहुवचन पुंल्लिग स्वरान्त प्रतिपदिको के अन्त मे -आ विभक्ति जुड जाती है, जो अपभ्रंश -आ स० आः से मेल खाती है।[9]

मेवाती की प्राय सभी ओकारान्त पुल्लिग सज्ञाए पालि का ही अनुसरण करती हैं। यथा—पालि में वुद्धो (ए, व) बुद्धा (ब व.) बनते हैं। मेवाती के ए व और ब. व. रूप निम्न प्रकार होंगे।

एक वचन	बहु वचन	एकवचन	बहुवचन
आर्‌यो	आर्‌या	चौपी (गधा)	चौपा
दादो	दादा	बिनजारो	बिनजारा
भायलो	भायला	भाणजो	भाणजा
मामो	म मा	नागो	नागा

ब्रजभाषा मे – ओ या औकारान्त सज्ञाओं मे = ओ – औ के स्थान पर 'ए' हो जाता है। दक्खिनी म तो ओकारान्त पुल्लिग सज्ञाए होती ही नही। यही हाल हिन्दी का है। ओकारान्त एक वचन सज्ञा का आकारान्त बहुवचन रूप होना राजस्थानी की ही विशेषता है।

☐ स्त्रीलिंग – मूल रूप -

अकारान्त

मेवाती मे अकारान्त, स्त्रीलिंग, एक वचन सज्ञाओं को बहुवचन बनाने के लिए न का प्रयोग किया जाता है। यथा –

या तो औरतन की काम है। (औरत – औरतन)

च्यारू अपणी अपणी बातन कर रही ही। (बात – बातन)

परीतन मे परीत तो अन्न परीत और दूसरी परीत नहीं।

(परीत (प्रीत) – परीतन)

जै कदी मैं मरगो तो इन चीजन नै कौण बतावैगो ? (चीज – चीजन)

औलाती सूखी की सूखी आंखन मे बरसात है। (आंख – आंखन)

खड़ी बोली मे अकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो के बहुवचन बनाने के लिए –ए, दक्खिनी मे –आ, राजस्थानी की मारवाड़ी-मेवाड़ी मे –आ, ब्रज मे ए, लगाये जाते है। हिन्दी के प्रथमा बहुवचन – ए, तथा ई का सबध सस्कृत नपु० प्रथमा बहु वचन के 'आनी' से जोड़ा जाता है। स० आनि > आइ > एँ-> ए > इआ > ई।[10] मेवाती के 'न' पर संस्कृत के अकारान्त नपु० शब्दो के प्रथमा बहुवचन मे प्रयुक्त आनि प्रत्यय का प्रभाव देखा जा सकता है। पुल्लिग बहुवचन के समान स्त्रीलिग बहुवचन का – 'न' भी स० नपु ० 'आनि' से ही व्युत्पन्न है।

☐ आकारान्त—

मेवाती मे एक वचन स्त्रीलिग शब्दो मे जहां – या होता है। वहां बहुवचन मे 'यां' हो जाता है। इसके एक वचन के अन्तिम – आ को सानुनासिक

बनाकर – याँ रूप प्रयुक्त करते हैं। जैसे—चिड़िया-चिड़ियाँ, तिरिया-तिरियाँ, बछिया-बछियाँ, मोटिया-मोटियाँ कुत्तिया-कुत्तियाँ। दक्खिनी हिन्दी में भी यही प्रक्रिया देखी जा सकती है। हरियानी राजस्थानी आदि बोलियों में भी – या का याँ हो जाता है।

कुछ आकारान्त शब्दों मे–आ का सानुनासिक–आँ हो जाता है। जैसे—आसा-आसाँ, माला-मालाँ, जादना-जादनाँ, आदि। पंजाबी, मारवाड़ी आदि में–याँ, का प्रयोग होता है। –आँ, याँ का सम्बन्ध नपुंसकलिंगी 'आनि' ही से है। –याँ में –य् श्रुति का आगम हुआ है। हिन्दी की बोलियों में प्राय ये ही रूप प्रयोग में लाये जाते हैं।

☐ ईकारान्त—

मेवाती में ईकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञा के बहुवचन में–इन लगाया जाता है। यथा–

छोरे छोरिन को मेलो जाय री ऐसी कहा मिताबी है। (छोरी-छोरिन)

कहीं कहीं—य श्रुति का आगम भी हो जाता है यथा—

'मन दोयन छतियन का पलड़ा करा दोय नैन बणाया बाट'। (छाती-छतियन)

बहुवचनान्त –इन रूप की व्युत्पत्ति कर्ता कारक एवं कर्मकारक नपुंसकलिंगी संज्ञाओं के बहुवचन रूपों के–आनि प्रत्यय से हुई है।[11] स्त्रीलिंग बहुवचन के रूपों में मेवाती पश्चिमी हिन्दी की ब्रजभाषा (यारिन), बुन्देली (कुनियन, गारिन), कन्नौजी (घोड़िन) बोलियों का अनुसरण करती है। जबकि अन्य बोलियों मे स्त्रीलिंग ईकारान्त एक वचन संज्ञा के बहुवचन बनाने के लिये –याँ प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे—

खड़ी बोली या कौरवी मे	(गूँठी – गूठियाँ),
बागरू या हरियानवी मे	(छोह्‌री – छोह्‌रियाँ),
दक्खिनी हिन्दी में	(मूरतियाँ)
राजस्थानी मारवाड़ी मे	(घोड़ियाँ)

इस–याँ का विकास भी–'आनि' से सम्भव है। –य श्रुति का आगम हुआ है।

☐ ऊकारान्त—

ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन बनाते समय अविकृत शब्द के 'ऊ' के स्थान पर 'उवा' लगा दिया जाता है। वहा 'व' श्रुति के रूप में प्रयुक्त होता है।—'आँ' तो संस्कृत नपुं० के–आनि से उद्भूत है। उदाहरणार्थ—गऊ-गउवा, भऊ-भउवा, वस्तु–वस्तुवा आदि। मेवाती के समान ही मारवाड़ी में भी–उवा का ही प्रयोग होता है। पश्चिमी हिन्दी एवं उसकी बोलियां–बाँगरू, बुन्देली एवं ब्रज में तो यह रूप प्राप्त ही नहीं होता है।

□ पुल्लिंग-विकृत रूप—

अकारान्त—

मेवाती में अकारान्त पुल्लिंग बहुवचन के तिर्यक रूपों के सविभक्तिक प्रयोग में 'न' प्रत्यय लगाया जाता है। यथा—

एक वचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
मेव मैं	मेवन मैं	घर कू	घरन कू
मरदूद का	मरदूदन को	महल मैं	महलन मैं
लोग पै	लोगन पै	नर कू	नरन कू

मेवाती का यह 'न' प्रत्यय हिन्दी की अन्य बोलियों में भी प्राप्त होता है। यथा—

ब्र०	खड़ी	अवधी	भोज०	द० हिन्दी	कन्नौजी	बुन्देली	राज०
अन (न)	ओ	न	अन, अनि	आ, ओ	न	न	आँ
ओं, नि			न, न्ह	अन (न)			

मेवाती न < मप० अणउ, णउ, आण < स० आनाम्

मेवन < मेअणउ < मेवानाम्

□ आकारान्त—

मेवाती आकारान्त पुल्लिंग बहुवचन के विकृत रूपों में भी 'न' प्रत्यय का प्रयोग होता है। यथा—

एक वचन	बहु वचन	एकवचन	बहुवचन
दालका नैं	दालकान् नैं	पूला की	पूलान की
बच्चा के	बच्चान के	कचरा को	कचरान को
बाडा मैं	बाडान मैं	सूरमा कैं	सूरमान कैं

अन्य भाषा और बोलियों में भी यह प्रत्यय दिखाई देता है—

मेवाती	ख० बो०	हरियानवी	दक्खिनी हि०	ब्रज
न	ओ	आ	ओं, याँ	न (अन)

बुन्देली	कन्नौजी	राजस्थानी	अवधी
न	अन	आँ, वा	इनी

इसकी व्युत्पत्ति भी अकारान्त के 'न' प्रत्यय की तरह 'आनाम्' से ही हुई है।

□ ईकारान्त—

मेवाती ईकारान्त पुल्लिंग बहुवचन के तिर्यक रूपों में 'न' प्रत्यय प्रयुक्त होता है, जिसकी व्युत्पत्ति स० आनाम् से हुई है। यथा—

एक वचन	बहुवचन	एक वचन -	बहुवचन
बैरी नै	बैरीन नै	बराती की	बरातीन की
भाई मे	भाईन मे		

ब्रजभाषा के 'इन' (न) प्रत्यय के अतिरिक्त अन्य बोलियो मे ईकारान्त बहुवचन का तिर्यक रूप न' रहित ही प्रयुक्त होता है।

☐ ऊकारान्त—

मेवाती मे ऊकारान्त पुल्लिग बहुवचन रूप का तिर्यक रूप बनाने के लिए भी 'न' प्रत्यय का ही प्रयोग किया जाता है। यह विशेषता ब्रजभाषा आदि मे भी मिलती है। न < आए < आनाम्। उदाहरणार्थ—

एक वचन	बहुवचन
लड्डू की	लड्डून की

☐ स्त्रीलिग : विकृत रूप—

अकारान्त—

मेवाती मे अकारान्त स्त्रीलिग रूपो के बहुवचन मे 'न' प्रत्यय का प्रयोग होता, जिसका विकास सं० आनाम् > प्रा० आए > न से हुआ है।

एक वचन	बहुवचन	एक वचन	महुवचन
सौक नै	सौकन नै	मूछ की	मूछन की
नैन मैं	नैनन मैं	चीज नै	चीजन नै
परीत मैं	परीतन मैं	किताब मैं	किताबन मैं

यही प्रक्रिया दक्खिनी हिन्दी, व्रज, नेपाली, भोजपुरी, मैथिली आदि भाषाओ मे भी पाई जाती है।

☐ ईकारान्त—

ईकारान्त स्त्रीलिग के बहुवचन रूपो मे 'न' प्रत्यय प्रयुक्त होता है यथा—

एक वचन	बहुवचन	एक वचन	बहुवचन
छोरी मैं	छोरीन् नै	रोटी मैं	रोटीन मैं

कहीं-कहीं आदि दीर्घ स्वर 'ई' का ह्रस्व स्वर होकर 'य' श्रुति का आगम हो जाता है। यथा—

एक वचन	बहुवचन
छाती का	छतियन का

(आनाम् > आए > न)

☐ लिंग—

मेवाती में दो लिंग होते हैं—

1 स्त्रीलिंग और 2 पुल्लिंग ।

निर्जीव सज्ञाए भी इन्ही दो मे से एक होती हैं । इन्ही दोनो रूपो मे प्राकृतिक और व्याकरणिक लिंग स्थितियो का निर्धारण होता है ।

प्राकृतिक लिंग-भेद तो प्रत्येक भाषा मे समान रूप से वर्तमान है, किन्तु व्याकरण सबधी लिंगो की सख्या तथा मात्रा भिन्न-भिन्न भाषाओं में पृथक-पृथक है । उदाहरण के लिए सस्कृत मे विशेषण, कृदन्त तथा अन्य पुरुषवाची सर्वनाम के रूप पुल्लिंग–स्त्रीलिंग तथा नपु सक लिंग मे भिन्न होते हैं । लिंगो की सख्या के सबध मे भारतीय आर्य भाषाओ मे ही कई भेद मिलते हैं । प्रा० भा० आ० भाषाओ (सस्कृत और प्राकृत) मे तथा आधुनिक भाषाओ (मराठी, गुजराती और सिंहली) मे तीन लिंग होते हैं । हिन्दी पजाबी, राजस्थानी तथा सिंधी मे दो लिंग होते हैं । बगाली, उडिया, असामी तथा विहारी मे व्याकरण सम्बन्धी लिंग-भेद बहुत ही कम किया जाता है ।[12] नेपाली म भी व्याकरण सम्बन्धी लिंग-भेद लुप्त हो गया है ।[13] डा० चटर्जी भारतीय पूर्वी भाषाओ के लिंग शैथिल्य का कारण कोल भाषाओ का प्रभाव मानते हैं ।[14] डा० ज्यूल ब्लाख का कहना है कि 'यह भी निस्सन्देह एक आधार है तिब्बती और मुण्डा का प्रभाव है जो पूर्वी समुदाय मे लिंगो के पूर्ण लोप के मूल म है ।'[15] इसी प्रकार मराठी, गुजराती आदि पर द्राविड परिवार की भाषाओ का प्रभाव होने के कारण उनम तीनो लिंग सुरक्षित हैं । परन्तु हिन्दी एव इसकी बोलियाँ इस प्रभाव से विमुक्त रही । अत यहाँ नपु सकलिंग का अभाव ही है ।

हिन्दी एव उसकी बोलियो की तरह मेवाती का व्याकरणिक लिंग-भेद दुस्तर है । सामान्यत. अभ्यास एव प्रयोग ही प्रमाण माने जाते हैं । लिंगानुशासन की यही दुरुहता अहिन्दी भाषियो का सिर दर्द बनी है । मेवाती ने भी अपनी पडोसी बोलियो का लिंग-विधान स्वीकार कर केवल स्त्रीलिंग एव पुल्लिंग दो लिंगो को ही मान्यता दी है । वैदेशिक लिंगहीन सज्ञाए मेवाती लिंगानुशासन मे रहती हैं । हिन्दी की प्राय सभी बोलियो में इस विशेषता के दर्शन किए जा सकते हैं । डा० धीरेन्द्र वर्मा कहते हैं कि 'विदेशी शब्दो के लिंग निर्धारण मे कोई निश्चित सिद्धान्त नही होता है । साधारणतया विदेशी शब्द से निकटतम अर्थ देने वाले घरेलू शब्द का लिंग नवागत शब्द के लिंग निर्धारण मे अपना प्रभाव डालता है । रेल (Railway) स्त्रीलिंग है क्योंकि गाडी स्त्रीलिंग है । कुछ स्थलो पर किसी लिंग विशेष मे किन्ही परिचित रूपो मे अन्त होने वाले शब्दो से विदेशी शब्दो के अन्त मे रूपो का आकस्मिक ध्वन्यात्मक साम्य होने के कारण उद्धृत शब्द को भी उसी

लिंग मे रख लिया जाता है। कदाचित इ-प्रन्त होने के कारण ही काफी (म ग्रे० Coffee) स्त्रीलिंग है, अन्यथा अनेक पेय पदार्थों के द्योतक शब्द पुल्लिग है। तथापि ऐसे विदेशी शब्द बडी सख्या मे हैं जिसके लिंग निर्धारण का कोई तर्क पूर्ण कारण बता सकना कठिन है।[16]

हिन्दी की तरह मेवाती की क्रियाओ मे भी लिंग के कारण विकार हो जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक मेवाती क्रिया के दो रूप होते है—पुल्लिग एव स्त्रीलिंग। यथा—

मे०	हिन्दी
एक मेव पालो काटरो हो।	एक मेव पाला काट रहा था।
एक मेवणी पालो काटरी ही।	एक मेवनी पाला काट रही थी।

प्रायः हिन्दी और पजाबी के आकारान्त विशेषणो मे लिंग-भेद क कारण अलग-अलग रूप होते है। इसी प्रकार सिंधी और गुजराती के ओकारान्त विशेषणो मे भी होते हैं। अन्य विशेषणो मे इस प्रकार की भिन्नता बहुत कम होती है। लिंग के कारण विशेषणो मे हुआ यह परिवर्तन निश्चित और नियमित होता है। इन परिवर्तनो की तालिका यहाँ प्रस्तुत की जाती है—

	एक वचन		बहुवचन	
	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
हिन्दी	आ	ई	ए	इ, ई आ
पजाबी	आ	ई	ए	ईआ
सिंधी	ओ	ई	आ	इयु
गुजराती	ओ	ई	आ	ई[17]

ई लगाकर बने हुए स्त्रीलिंग रूपो की व्युत्पत्ति सस्कृत तद्धित प्रत्यय इका > प्रा० इआ से हुई है।[18]

मेवाती के सर्वनामो एव क्रियाविशेषणो मे लिंग भेद के अनुसार परिवर्तन नही होता। मैं, तू, ऊ, ओ आदि सर्वनाम दोनो लिंगो मे समान भाव से प्रयुक्त होते हैं।

मेवाती मे जो सस्कृत सज्ञाए (तत्सम – तद्भव) प्रचलित है, वे सस्कृत के ही लिंग-विधान का अनुसरण करती हैं। सस्कृत की नपु० लिंग की सज्ञाएँ पुल्लिग मान ली जाती हैं। बीम्स महोदय ने पुल्लिग एव स्त्रीलिंग सम्बन्धी अनेक नियमो को प्रस्तुत किया है।[19]

☐ **लिंग परिवर्तन—**

सिंधी की तरह मेवाती मे भी ओकारान्त पुल्लिग शब्द ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों में परिवर्तित हो जाते हैं।

पुल्लिग	स्त्रीलिग
मामो, काको, दादो	मामी, काकी, दादी
मावसो, मायलो	मावसी, मायली
ग्रादो भाणजो, घोडो	ग्रादी, भाणजी, घोडी

व्युत्पत्ति की दृष्टि से ग्रो < प्रा० ग्रग्रो < स० ग्रय से तथा स्त्रीलिग ई' < प्रा इया < स० इका से व्युत्पन्न है।

मेवाती में पुल्लिग से स्त्रीलिंग बनाने के लिए नी' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। नी < प्रा० ग्रणीग्र < स० ग्रनीय से व्युत्पन्न है।

कुछ विद्वान इसकी व्युत्पत्ति स० इनी प्रत्यय से मानते है। यथा—

ऊट	ऊटनी	मोर	मोरनी

ग्राणी–बीम्स[20] एव केलाग[21] के ग्रनुसार इस प्रत्यय की उत्पत्ति स० ग्रानी प्रत्यय से हुई है। मेवाती मे ग्रकारान्त पुल्लिग शब्दो मे इसका प्रयोग इस प्रकार होता है—

पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
जेठ	जिठाणी	देवर	दौराणी
पडत	पडताणी	धणी	धणियाणी

हिन्दी मे 'ग्राणी' प्रत्यय की जगह 'ग्रानी, ग्राइन', प्रत्ययो का प्रयोग होता है। पजाबी मे मेवाती की तरह ग्राणी प्रत्यय लगता है। विदेशी शब्दो मे भी इसे लगाकर स्त्रीलिंग बना लिया जाता है। यद्यपि यह प्रयोग विरल है। यथा—

मुगल	मुगलाणी

ग्रण–मेवाती मे ईकारान्त पुल्लिग शब्दों को स्त्रीलिंग बनाने के लिये–ग्रण प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। इसकी व्युत्पत्ति सस्कृत–ग्रन से हुई है। यथा—

पडोसी या पाडोसी	पडोसण या पाडोसण
चोधरी	चौधरण

मेवाती मे कुछ ग्रोकारान्त पुल्लिग सज्ञाग्रों मे भी इस प्रत्यय का प्रयोग देखा गया है—

विणजारो (पु०)	बिनजारण (स्त्री०)

लिंग परिवर्तन की दृष्टि से मेवाती म कुछ ऐसे शब्द भी प्रयुक्त होते हैं जिनके मूल लिग वर्तमान लिंग से एकदम भिन्न थे। उदाहरणार्थ—

सस्कृत	मेवाती
ग्रक्षि (नपु०)	ग्राँख (स्त्री०)
बाहु (पु०)	बाह (स्त्री०)

अन्न (नपु०)	आन, अनडी (स्त्री०)
वस्तु (नपु०)	बस्त (स्त्री०)
गौ (पु०)	गऊ, गाय (स्त्री०)
मधु (नपु०)	मोह (पु०)
तनु (स्त्री)	तन (पुल्लिंग)

विदेशी शब्दों का लिंग निर्धारण मेवाती व्याकरण से होता है। विदेशी पुल्लिंग संज्ञाएँ मेवाती में अकारान्त, आकारान्त तथा ईकारान्त रूपों में प्रयुक्त होती है। यथा—

अ—आसक (आशिक), उमीर, मुसाफर, खसम।
आ—अदना, जरदा, जिल्ला, फदा।
ई—इनामी, काजी, गाजी।

स्त्रीलिंग शब्द अधिकतर अकारान्त एवं ईकारान्त होते हैं।

अ—औरत, चाबक, दरगाह, न्यामत, पोसाक।
ई—सुसरी, दारी, मुगलाणी, आदि।

अंग्रेजी की संज्ञाएँ प्रयोगानुसार पुल्लिंग या स्त्रीलिंग मानी जाती है। यथा—

पुल्लिंग—पासबोट, रेडियो, रिजट्टर, कम्पोडर, आदि।
स्त्रीलिंग—कार, टिकट, टीप (ठ्यूब), पुलस, बुरसैंट।

कारक-विभक्तियां (परसर्ग)—

कर्त्ता (कर्मणी भाव)	—ने, नें, नं, नै।
कर्म	—कु, कू, कूं, को, कौ नैं, लू।
करण	—तैं, पे, सू, सूं, सें, सै सेती, सैती, सं, सं।
सम्प्रदान	—कौ, कू, कूं, के लिए, को, लू।
अपादान	—सैं, सू, सूं, से।
सम्बन्ध	– का, की, के, कं, को।
अधिकरण	—ऊपर, पर, मै म, माय, मा, मे, मै, मैं, माही।
सम्बोधन	—अर, अरा, अरे, रे।

मेवाती की अधिकांश विभक्तियां प्राकृत के माध्यम से संस्कृत से व्युत्पन्न हैं, लेकिन इन भाषाओं के विपरीत मेवाती की विभक्तिया एक वचन एवं बहुवचन में समान रहती हैं। हिन्दी में भी यही विधान देखने में आता है।[22] हिन्दी, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, बंगाली, उड़िया और नेपाली में भी एक वचन और बहु वचन की विभक्तियाँ एक रूप ही रहती है।[23]

C कर्त्ता कारक—

मेवाती में कर्त्ताकारक में कोई चिन्ह प्रयुक्त नहीं होता। परन्तु कर्त्ता कर्मणि भावे प्रयोग में– न – (ने नें नै, नै) विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। यह 'न' पश्चिमी हिन्दी की प्रधान विशेषता है। इस विभक्ति प्रत्यय के सम्बन्ध में गुरु जी का कथन है कि 'बोलना, भूलना, बकना, लाना, समझना, जानना, आदि सकर्मक क्रियाओं को छोड़ शेष सकर्मक क्रियाओं के और नहाना, छींकना, खांसना, आदि अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कृदन्त से बने हुए कालों के साथ सप्रत्यय कर्त्ता कारक आता है।[24] पूर्वी बोलियों में इस विभक्ति का प्रयोग नहीं होता। मेवाती में इस विभक्ति का निम्न प्रकार से प्रयोग किया जाता है -

ने—हूं मू उनन माल लिकाड लियो (बोलो)
नें—तहां हू गरसी साथ नें कियो बखान (ला० नु०)
नै - मायण ने दूध गरम करो (बोली)
नै—ऊंट नै पीठ पे चढा लिया (बोली)

कर्त्ता के अतिरिक्त इस विभक्ति का प्रयोग कभी-कभी कर्म कारक के साथ भी होता है।

केलाग महोदय के अनुसार हिन्दी और उसकी बोलियों में प्रयुक्त ने-विभक्ति का प्रयोग अधिक प्राचीन नहीं है। वे इसे 200-300 वर्ष पूर्व का प्रयोग मानते हैं।[25] लेकिन कुछ विद्वान इस चिन्ह का प्रयोग 600 वर्ष पूर्व का मानने लगे हैं।[26] हिन्दी से सम्बन्धित भाषाओं एवं बोलियों में प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में नइ (नै) का प्रयोग प्राचीन काव्य में देखने में आया है परन्तु वहाँ इसका प्रयोग कम एवं सम्प्रदान के साथ हुआ है।[27] अत. प्रयोग की दृष्टि से इस चिन्ह का सम्बन्ध राजस्थानी से सर्वाधिक प्राचीन है। इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं—

(1) ट्रम्प[28] महोदय के अनुसार—'न' विभक्ति की व्युत्पत्ति संस्कृत के करण कारक एक वचन की (तृतीया) विभक्ति—एण > एन से हुई है, जो वर्ण विपर्यय से 'नै' में परिवर्तित हो गई है। ट्रम्प महोदय के इस मत की आलोचना करते हुए बीम्स महोदय[29] ने निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किए हैं—

(क) 'नै' विभक्ति प्रत्यय नहीं है, यह एक परसर्ग है। अत: इसकी व्युत्पत्ति किसी स्वतन्त्र शब्द से होनी चाहिए, विभक्ति प्रत्यय 'एन' से नहीं।

(ख) एन > नै का परिवर्तन असाधारण है। कारण कि प्रा० भा० आ० भाषा की अन्य विभक्तियों के जो प्रा० भा० आ० भाषा में मूल रूप

बनाने की प्रवृति प्रकट की है, जैसे—रातें वातें, आदि मे ए < अति लड़को, घोड़ो आदि मे ओ < आनाम्। इससे स्पष्ट है कि न' की परिणति अनुस्वार मे हुई है, वर्ण-व्यत्यय द्वारा दीर्घ रूप मे नही। अत. 'एन' से 'ने' की व्युत्पत्ति मान्य नही।

(स) 'न' का प्रयोग आधुनिक है, प्राचीन नहीं। यदि एन' ही 'ने' होता तो प्राचीन हिन्दी अथवा पश्चिमी अपभ्रश मे उसके उदाहरण मिलते जो अनुपलब्ध हैं।

(द) प्राचीन साहित्य मे सर्वनाम के कर्त्ता कारक मे केवल विकारी रूप का ही प्रयोग हुआ है, जहा हिन्दी मे स्वभावत: ने का प्रयोग आवश्यक है। अत: 'एन' से 'ने' व्युत्पन्न नही हो सकता।[30]

(2) ट्रम्प के मत का खण्डन करते हुए केलाग महोदय ने कर्ता कारक की ने विभक्ति का सम्बन्ध सस्कृत लग्य (लग्भूतकालिक कृदन्त कर्तृवाच्य) से माना है। स० लग्य > प्रा० लागिग्रो > हि० लगि > लइ > ले > ने।[31]

बीम्स के अनुसार 'ने' की व्युत्पत्ति सस्कृत के करण कारक से हुई है, परन्तु हिन्दी मे यह कर्मणि एव भावे प्रयोग का अर्थ द्योतित करती है। गुजराती मे 'नि' कर्म तथा सम्प्रदान के लिए प्रयुक्त होती है। इस दृष्टि से पश्चिमी अपभ्र श की इन सन्तानों की प्रवृत्ति एक ही है। इस मत के समर्थन मे कहा जाता है कि नेपाली मे भी सम्प्रदान तथा करण कारक के चिन्ह मिलते जुलते हैं। नेपाली मे सम्प्रदान मे 'लाई' तथा करण मे 'ले' का प्रयोग होता है। प्राचीन हिन्दी के 'ने' (कर्म) तथा आधुनिक हिन्दी के 'ने' मे भी काफी समता है। मराठी मे 'ने' का प्रयोग करण कारक के चिन्ह के रूप मे होता है। अत: ने, ले आदि परसर्ग सस्कृत 'लग्य' से व्युत्पन्न है।

(3) बीम्स के उपर्युक्त मत का समर्थन डा० केलाग ने भी किया है। उनका कहना है कि पश्चिमी हिन्दी के नें 'नें' और 'न' परसर्गों की व्युत्पत्ति नेपाली परसर्ग 'ले' से हुई है। 'ले' का सबध सस्कृत लग् हिन्दी 'लगि' से है। 'ल' का 'न' म परिवर्तन हो गया और 'ने' बन गया। जैसे अरबी लानत के लिए भारतीय नानत।[32]

(4) डा० हार्नले के अनुसार सस्कृत के 'लब्ध' (हि० लिया) के अधिकरण कारक (सप्तमी) के रूप 'लब्धे' से हुई है। स० लब्धे > प्रा० लद्धे > ने।[33]

(5) ज्यूल ब्लाक और ग्रियर्सन के अनुसार ने की व्युत्पत्ति स० तन से हुई।[34]

(6) डा० सुनीति कुमार चटर्जी[35]के अनुसार 'ने' की व्युत्पत्ति स० कर्ण शब्द से हुई है । स० कर्णे > प्रा० कण्ण > कन्न > अप० अधिकरण रूप कन्नहि > नै ।

इनके अतिरिक्त डा० धीरेन्द्र वर्मा,[36]श्री कामता प्रसाद गुरु,[37]डा० उदय नारायण तिवाडी[38] आदि विद्वानों ने भी बीम्स एव केलाग के मतो का ही समर्थन किया है लेकिन बाबू श्याम सुन्दरदास,[39] ट्रम्प महोदय का समर्थन करते हैं ।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी का कहना है कि 'हिन्दी की प्रमुख सज्ञा विभक्ति 'ने' का निर्माण भी वर्ण व्यत्यय से ही हुआ है, यह निश्चय पूर्वक कहने की स्थिति मे हम है । हिन्दी मे अधिकाश क्रियाए कृदन्त है और कृदन्त कर्म वाच्य तथा भाव वाच्य सस्कृत क्रियाओ के कर्ताकारक तृतीयान्त रहते है, जहां बालक आदि के बालकेन आदि रूप होते है । हिन्दी ने अपनी सब कृदन्त (कर्मवाच्य तथा भाववाच्य) क्रियाओ के लिए बालकेन का 'एन' निकाल कर अपना रग देकर स्वीकार किया । सस्कृत के इस रूप में किंचित वर्ण व्यत्यय कर दिया–ए उधर और 'न' इधर–नए । 'न' के स्वर (अ) का लोप–न् ए । न् मिला ए मे–नें ।[40]

निष्कर्ष—ऊपर वर्णित मतो के आधार पर चार प्रकार के मत हमारे समक्ष आते हैं—

(1) –एण, एन से ने की उत्पत्ति
(2) लग् धातु से 'ने' की उत्पत्ति,
(3) लबजे से 'न' की उत्पत्ति,
(4) कर्ण से 'नें' की उत्पत्ति ।

प्रथम कोटि के मत का खण्डन अनेक विद्वानो ने किया है । कारण कि एण–ने का ऐतिहासिक विकास उपलब्ध नहीं है । द्वितीय मत के विद्वानो का आक्षेप है कि 'ने' विभक्ति नेपाली की 'ले' विभक्ति क समान ही प्रयुक्त होती है, परन्तु इसका प्रयोग जहागीर के शासन काल[41]के आसपास 16–17 वी शताब्दी का है । लेकिन यह कहना उचित नही है कि 'ने' का प्रयोग अपेक्षाकृत आधुनिक है । नइँ > ने का प्रयोग प्राचीन राजस्थानी–गुजराती मे प्रयुक्त होता था ।[42] वर्ण व्यत्यय से लब्वे > लद्दे > लँ > ने की व्युत्पत्ति सम्भव मानी जा सकती है, परन्तु सर्वाधिक प्रमाण पुष्ट व्युत्पत्ति स० कर्ण से हुई प्रतीत होती है । स० कर्णे > प्रा० कन्ने > अप० कन्हइ > हिन्दी कने > ने । कर्म और सम्प्रदान मे प्रयुक्त 'ने' विभक्ति की उत्पत्ति डा० ट्रम्प इसी से मानते है । डा० तेस्सितोरी का भी कहना है कि 'कन्हइँ < अपभ्रंश 'कण्णहिं' < स० कर्णस्मिन् (कर्ण')

से निकला है । कन्हई का ही' घिसा-कटा रूप आद्याक्षर के बना है ।[44] डा० चटर्जी भी इस मत के पक्षपाती हैं ।[45]

कर्तरि अर्थ मे 'नइ' का परसर्गवत प्रयोग इस भाषा अधिक बढ़ता हुआ दिखाई पडता है । आजकल यह केवल की मेवाती और मालवी जैसी कुछ बोलियों मे ही प्रचलित हिन्दी, नेपाली, पंजाबी और मराठी मे भी है ।[46] मेवाती आदि कई रूप प्रयुक्त होते है ।

[] **कर्म (द्वितीया) कारक—कु, कू, कूं, को, नैं, लू**

(1) कु, कू, कू , को—मेवाती मे इन परसर्गों का प्रयोग

कु–चरणा कुटकबा कु न रहा है ।
कू–अस सारा लड्डून कू लागो । (बोली)
कू –साध सत कू राह गहावो । (ला. नु)
को–उनके लाग को नाज ना हो । (बोली)

मेवाती कु, कू, कू , को, बीम्स[47] को तथा हार्नले[48] अधि० ए० व०) से मानते हैं । इस कक्ष से क्रमश कक्ख > काहु, कूहू , कहुँ, को, कौं तथा को रूपो की उत्पत्ति हुई है । वर्मा एव उदयनारायण तिवाडी भी बीम्स के मत का समर्थन के अनुसार–क–कर्मकारक रूपो की उत्पत्ति स० 'कृत' से हुई, > किओ > को रूप हो जाता है ।[50] डा० श्याम हैं,[51] परन्तु बीम्स इस पर आपत्ति करते हैं ।[52] निष्कर्षतः स० कक्ष ही–क विभक्ति का जनक है ।

(2) नैं–'नैं' विभक्ति का प्रयोग मेवाती मे कर्म इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध से हम कर्ताकारक के सम्बन्ध में प्रकाश डाल चुके हैं । यहाँ तो इतना ही कहना है कि नैं' वि की तरह प्रयोग उसके राजस्थानी के प्रभाव को लक्षित करता इसका प्रयोग ब्रज मे भी होता है, पर कर्म के रूप मे नहीं । मे आधुनिक गुजराती ने, मारवाडी ने, नैं तथा मेवाती चाहिए । मेवाती में इसका प्रयोग इस प्रकार होता है—

क—जै कदी मैं मरगो तो इन चीजननैं कोरग बता
ख—वो बैहनें आपणा खेता मे सूर चरावण नैं

जा बरछा सूर खाय हा उन तें वो ग्रणए पेट भरण ने राजी थो ।

(ग्रियर्सन)

(2) सू, सैं—मेवाती मे 'स' विभक्ति करण एव अपादान दोनो कारको मे प्रयुक्त होती है । इस विभक्ति की उत्पत्ति अत्यधिक विवादास्पद रही है ।

मेवाती मे प्रधानतया सू, सैं कारक विभक्ति का प्रयोग होता है। इसी प्रकार ब्रज मे सौं दक्खिनी हिन्दी मे सु, सू, पश्चिम राजस्थानी मे सउ, सू, सु, स्यउ, कुमायुनी मे सू का व्यवहार प्रचलित है । बांगडू, बुंदेली मे 'से' प्रयुक्त होता है तथा हिन्दी, गढवाली, भोजपुरी आदि मे 'से' कर्ण कारक विभक्ति प्रचलित है । उत्पत्ति की दृष्टि स बीम्स[59] की मान्यता है कि 'स' विभक्ति की उत्पत्ति स० क्रिया-विशेषण के 'सम्' रूप से हुई है । इसका प्राचीन रूप 'सो' है जिससे हिन्दी करण-अपादान की 'से' विभक्ति उत्पन्न होती है । डा० केलाग के अनुसार से (अपने विविध रूपो-स, सें सै सने, सन, सेनी आदि के साथ) –की उत्पत्ति सस्कृत 'सगे' से हुई है, तथा 'सो' और 'सौं' की व्युत्पत्ति स० 'सभं' से हुई है, जिसके भ् का ओ और औ हो जाता है । [60] हार्नली स-विभक्ति का सबध प्रा० सतो, सुतो तथा स० अस् से बताते हैं ।[61] प० गोविन्द नारायण मिश्र[62] कामता प्रसाद गुरु[63] डा० श्यामसुन्दर दास,[64] आदि विद्वान हार्नली से सहमत हैं । डा० बाबूराम सक्सेना[65] सस्कृत सहितन से तथा डा० ज्यूल[66] स० सगे से डा० उदय नारायण तिवारी स० 'सम-एन' (> सए, सइ > सें > से) स,[67] डा० तेस्सितोरी[68] स० साकम् (-अप० सहुँ-सूँ) से, डा० नामवर सिंह[69] स सह (-अप० सहुँ सूँ) से एव आचार्य किशोरीदास वाजपेयी[70] करण कारक की 'भिम्' विभक्ति मे वर्ण व्यत्यय से सू, सैं को व्युत्पन्न बताते हैं ।

उपर्युक्त मतो मे से डा० तेस्सितोरी का मत सर्वाधिक मान्य है । स० साकम् > अप० सहुँ > प्रा० रा० सउ > मे० सू । प्राकृत मे स० शब्द का अन्त्य कम् अप० मे उ और ऊ हो जाता है । जैसे हृदयम् > हिअउउ, अहकम् > हउ, त्वकम् > तुहुँ ।[71] सैं की व्युत्पत्ति स० सार्थेन (< प्रा० सत्थें > अप सए > सें सैं) से हुई है । मेवाती म इनका प्रयोग निम्न प्रकार स किया जाता है—

(1) करी सूंड सूँ तीन सलाम । (लानु)

(2) सोच किया मूँ होय अवार । (लानु)

(3) मुज सैं तो यो ना चालै । (मेविल)

(4) फेर वैह ही सैं दौन कुचर्यो । (मविल)

ब्रज भाषा म 'सू' का प्रयोग नही होता । यहाँ सौं—सो का प्रयोग होता है ।

का, के, की, गढवाली मे कु, की, के, अवधी मे कर, केर, पश्चिमी राजस्थानी म रा, रो, री, नेपाली को का प्रयोग सबंध कारक के संदर्भ मे होता है। मेवाती मे इसका प्रयोग इस प्रकार किया जाता है—

1. बिरामण का लडका दो कासी करोन पढबा चला गया।
2. सम्मन की ग्रौरत ही।
3. जोडो नर ही नरन कू जाणे माके जाये बीर।
4. सूरभान के सिर नहीं घर घर साधू नाहू।
5. योही बस परताप को।

का—की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे डा० हार्नले[74] का मत है कि यह स० कृत से व्युत्पन्न है जिसका क्रमिक विकास इस प्रकार होता है-स० कृतः > प्रा० करितो करिग्रो या कर्यो > ग्रप० या पुरानी हिन्दी-केरग्रो, केरो > हि० केर, का,। बीम्स,[75] केलाग,[76] धीरेन्द्र वर्मा एव सक्सेना का भी यही मत है। परन्तु डा० पिशेल इसे स० कार्य (> प्रा० कज्ज, काज > ग्रप० काग्र > का) से व्युत्पन्न मानते हैं। डा० उदयनारायण तिवारी स० कृत > प्रा० कग्र > का व्युत्पन्न मानते हैं।[77] परन्तु डा० चटर्जी उपर्युक्त विद्वानो से भिन्न मत रखते हैं। उनके अनुसार स० कृतः के प्राकृत रूप 'कग्र' से का की व्युत्पत्ति सभव नहीं ग्रपितु प्रा० क्क से सभव है।[78] प० कामता प्रसाद गुरु[79] एव आचार्य किशोरीदास वाजपेयी[80] स० तद्धितीय प्रत्यय 'क' से 'का' की व्युत्पत्ति मानते हैं। विद्वानो का बहुमत स० कृत से ही 'का' की व्युत्पत्ति मानता है।

की—'की' सबंधकारक की स्त्रीलिंग की विभक्ति है। का मे स्त्री प्रत्यय 'ई' के सयोग से यह उत्पन्न हुई है।

के, कै— का के विकारी रूप हैं। इनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है— स० कृते > प्रा० केरए, कए > ग्रप० कइ, कै > हि०, मेवाती के।

को—'की' व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे कर्म कारक की को विभक्ति देखिए।

☐ ग्रधिकरण—मां, मांय, मांही, मे मैं, पर, पै

(क)—म के विभिन्न रूपो—मा माय माँही मे, मै–का सम्बन्ध स० मध्ये ग्रपभ्र श ग्रधिकरण परसर्ग 'मज्झे' मे है। बीम्स महोदय के ग्रनुसार ग्रधिकरण कारक का सबसे मुख्य गुण मकारान्त होना है। इसकी व्युत्पत्ति स० के मध्ये से हुई है। स० मध्ये > प्रा० मज्झि, मांझ, मज्झ > ग्रप० महि, माही, माँही, माँहे महे > मे।[81] केलाग,[82] डा तेस्सितोरी,[83] नामवरसिंह,[84] धीरेन्द्र वर्मा,[85] उदयनारायण तिवारी,[86] डा० श्यामसुन्दर दास[87] ग्रादि विद्वान बीम्स के मत का समर्थन करते हैं।

इधर 'मे' की व्युत्पत्ति प्रो० वेबर[88] स० 'स्मि' से, गुरु जी[89] प्रा० 'म्मि के अपभ्रंश रूप से मानते हैं। परन्तु केलाग[90] महोदय इसका विरोध करते हुए 'मध्ये' को ही 'मे' का भी मूल रूप मानते हैं। मेवाती मे इन परसर्गों का प्रयोग इस प्रकार होता है—उदाहरणार्थ—

रस्ता मा आई नन्दी। (बोली)
तेरे माय भीड पडेगी जब मैं तेरे काम आऊ गो। (मेक्लिस्टर)
तुम साहब समझो मन माही। (ल॰ नु.)
बाघसिंह सब मेवन में सरस। (बोली)
वो अपने घर मैं गुजर बसर करे हो। (बोली)

(ग) पर, पै—डा० केलाग,[91] चटर्जी,[92] धीरेन्द्र वर्मा,[93] प्रभृति विद्वान 'पर' का सम्बन्ध स स्कृत 'उपरि' से मानते हैं। परन्तु डा० हार्नले,[94] उदय नारायण तिवारी[95] स० परे > प्रा० पर > हि० पर से मानते हैं। प० कामता प्रसाद गुरु[96] 'पर' को किसी से व्युत्पन्न न न मानकर स्वतन्त्र शब्द मानते हैं। डा० चटर्जी 'पे' की व्युत्पत्ति स० 'प्रति' से मानते हैं।[97] अतः कहा जा सकता है कि मेवाती पर की व्युत्पत्ति स० उपरि > प्रा० उप्परि से तथा 'पै' की व्युत्पत्ति स० प्रति' से ही सम्भव है। उदाहरणार्थ—

(1) आये मूसी वडबेर पर बैठो। (बोली)
(2) ऊट नै पीठ पै चढा लियो। (बोली)

☐

☐ संदर्भ-संकेत—

1 द. हि. उ वि., श्रीराम शर्मा, पृ० 167
2 मू. अ व्या, परममित्र शास्त्री, पृ० 139-40
3 क. ग्रा. ग्रा, भाग 2, अनु० 45, पृ० 205 4) पु रा अनु० 58, पृ० 55
5 ग्रा हि. लें, अनु० 192, पृ० 128 (6) पु रा अनु० 58 पृ० 55
7. वही, अनु० 14 पृ० 30 (8) रा. भा. पृ० 29
9. पु रा, अनु० 58, पृ० 54 (10) हि. भा. ई, वर्मा अनु 243, पृ. 258
11 ग्रा हि लें., केलाग, अनु० 192, पृ० 128
12 क ग्रा. ग्रा, बीम्स, भाग 2, अनु० 29, पृ० 146-47
13 भा आ. भा, ज्यूल ब्लाख (अनु० वार्ष्णेय), पृ० 164
14 ओ. डे बैं, उनु० 483, पृ० 722 (15) भा आ भा पृ० 164
16 ब्र भा, अनु० 141, पृ० 55

17 क ग्रा ग्रा, बीम्स, भाग 2, अनु० 31, पृ० 150
18 हि भा इ, वर्मा, पृ० 253
19 क ग्रा ग्रा, भाग 1, अनु० 32-33, पृ० 151-52
20 वही, अनु० 35, पृ० 166 (21) ग्रा. हि लें., अनु० 149, पृ० 94
22. हि व्या, गुरु, का ना प्र स अष्टम संस्करण, पृ० 221
23 क ग्रा ग्रा, बीम्स, भाग 2, अनु० 56, पृ 253
24 हि व्या, अनु० 515, पृ० 425 (26) ग्रा हि ले, अनु० 196, पृ० 131
26 द हि उ वि, अनु० 315, पृ० 183
27 पु रा, तेस्सितोरी, अनु० 69, पृ० 68
28 सि ग्रा., पृ० 113 (29) क ग्रा ग्रा, बीम्स, अनु० 57, पृ० 266
30 हि भा उ वि अनु० 304, पृ० 431
31 क ग्रा ग्रा, भाग 2, अनु० 57, पृ० 265
32 ग्रा हि लें, अनु० 195, पृ० 130 (33) वही, (फुट नोट)
34 हि मा इ, अनु० 245, पृ० 260 (35) भा ग्रा भा हि पृ० 136
36 हि भा. इ, अनु० 145, पृ० 260
37 हि. व्या., गुरु, अनु० 306 पृ० 223
38 हि भा. उ वि, अनु० 303, पृ० 430
39 हि मा, पृ० 135 (40) भा भा, पृ० 53-54
41 क ग्रा. ग्रा, बीम्स, अनु० 57, पृ० 57
42. पु. रा तेस्सितोरी, अनु० 71, पृ० 72-73
43 सि ग्रा, पृ० 401 (44) पु रा, अनु० 71, पृ० 72
45 भा ग्रा भा हि, पृ० 137 (46) पु रा, पृ० 70
47 क ग्रा. ग्रा, अनु० 56, भाग 2, पृ० 257 (48) ग्रा गो लैं, अनु० 376
49 ग्रा हि लै अनु० 195, पृ० 130 (50) सि ग्रा पृ० 115
51 हि भा, पृ० 135 (52) क गा ग्रा, अनु० 56, पृ० 255
53. क. ग्रा ग्रा, अनु० 56, पृ० 260 (54) व्र भा, अनु० 200, पृ० 58
55 पु रा, तेस्सितोरी, अनु० 32, पृ० 39
56 क ग्रा ग्रा, भाग 2, अनु० 58, पृ० 273
37 ग्रा गो लें, पृ० 225-226 (58) ग्रा हिं लै, पृ० 132
59 क ग्रा ग्रा, भाग 2, अनु० 58, पृ० 274
60 ग्रा हि लैं, पृ० 132 (61) ग्रा. ई. हि. पृ० 132
62 हि व्या, गुरु, पृ० 223 से उद्धृत (63) वही, पृ० 324
64 हि भा, पृ० 136 (65) कीर्ति०, भूमिका, पृ० 54

66 भा आ भा, (अनु॰ वार्ष्णेय) पृ॰ 186
67 हि भा उ वि, अनु॰ 306, पृ॰ 433
68 पु रा, अनु 11, पृ॰ 29 (69) हि वि, अप॰ पृ॰ 123
70 भा भा, पृ॰ 161 (71) आ, भा व्या (अनु॰ जोशी), अनु॰ 352, पृ॰ 497
72 हि भा, पृ॰ 136 (73) कीर्ति॰, (भूमिका), पृ॰ 44
74 ई हि आ अनु 377 (75) क आ आ, अनु॰ 59, पृ॰ 285
76 प्रा हि लै, अनु॰ 194 पृ॰ 129
77 हि भा उ वि, अनु 308, पृ॰ 264
78 ओ ह वं अनु 503 (79) हि व्या, पृ॰ 225 (80) भा भा, पृ॰ 158
81 क आ आ भाग 2, अनु 60, पृ॰ 292-94
82 प्रा हि लै, अनु 198, पृ॰ 132-33
83 पु रा अनु 74, पृ॰ 90–91 (84) हि वि, अप 1, पृ॰ 120
85 हि भा इ, अनु 252, पृ॰ 214
86 हि भा उ वि अनु 309, पृ॰ 433 (87) हि भा, पृ॰ 141
88 प्रा हि लै, अनु 198 पृ॰ 132-33 (पाद टिप्पणी से उद्धृत)
89 हि व्या, पृ॰ 225 (90) प्रा हि लै, अनु 198, पृ॰ 132 33
91 वही (92) भा आ भा हि, पृ॰ 137
93 हि भा इ, अनु 252, पृ॰ 264 (94) ई हि आ, अनु 378
95 मौ भा सा, अनु 326, पृ॰ 191 (96) हि व्या, पृ॰ 225
97 भा आ भा हि, पृ॰ 137

सर्वनाम

(1) पुरुष वाचक—

(क) उत्तम पुरुष—मेवाती में उत्तम पुरुष के लिए निम्न लिखित रूप प्रचलित हैं—

	एक वचन	बहु वचन
मूल रूप	मैं, हूं	हम, म्हे, हमन
विकृत रूप	मो, मोकू, मुंज् मुनैं, मोय, मोलु, मोहि	हम, हमा, म्हाने
सम्बन्ध	मेरा, मेरे, मेरो	म्हारो, हमारा, हमारे, म्हांका

☐ **मूल रूप-एक वचन—**

मैं—पुरुष वाचक सर्वनाम के उत्तम पुरुष 'मैं' रूप की व्युत्पत्ति संस्कृत 'अस्मद्' के तृतीया के एक वचन 'मया' से हुई है। प्राचीन मेवाती मे 'मे' तथा आधुनिक मे 'मैं' का प्रयोग होता है। विद्वान् द्वय जोन बीम्स[1] एव केलाग[2] 'मैं' का विकास स० मया > अपभ्रंश मइ, मई-से हुआ मानते हैं। डा० चटर्जी 'मैं' मे प्रयुक्त अनुनासिकत्व को तृतीया के एक वचन के प्रत्यय 'एन' (टा) का अवशेष मानते हैं।[3] अतः यह कहा जा सकता है कि मैं' का सवध संस्कृत 'मया' से है—स० मया > प्रा० मए, मई > अप० मई > मैं। स० के 'अहम्' से इसका किंचित्मात्र भी सम्बन्ध नही है। मेवाती मे 'मैं' का प्रयोग इस प्रकार होता है—

1. मैं उठूगों अपणा बाप के कनें जाऊंगो अर वैंहने कहूंगो बाबा मैं ईसुर को पाप करयो अर तेरो बेटो कहण लायक नाय। (ग्रियर्सन)
2. मैं भैया की जोत का माय तैं बाली लेकर गाँव मे पूर द्यू गो। (मैविल.)
3. मैं समेरा को डोल रह्यो हूं वाकी तलास मे। (बोली)
4. मैं नहि पिता तुम्हारो चोर। (ला० नु०)

'हूं'—कहीं-कहीं मेवाती बोलचाल में 'हू' का भी उत्तम पुरुष एक वचन की तरह प्रयोग किया जाता है। यह ब्रजभाषा का प्रभाव है। 'हूं' की व्युत्पति संस्कृत 'अह' से हुई है। स० 'अह' या 'अहक' > प्रा०-अहअ > अप० 'हउ' > हौं, हू। मेवाती मे 'हू' का अधिक प्रयोग स्थानवाचक निर्देशात्मक अव्यय 'वहाँ' के अर्थ मे भी होता है। 'हूं' वा 'मैं' रूप मे प्रयोग पुरानी राजस्थानी, पुरानी गुजराती तथा पुरानी ब्रज में सर्वत्र मिलता है।

☐ विकृत रूप—

उत्तम पुरुष एक वचन मे विकारी रूपों-मू, मो, मोहि, मोय तथा मुज् का प्रयोग होता है। डा० तेस्सितोरी के अनुसार 'मू' की व्युत्पत्ति सस्कृत 'मह्यम्' > अप० 'मह्' से हुई है।[4] मेवाती मे 'मू' के साथ 'नें' परसर्ग प्रयुक्त होता है। मो, मोय, मोहि की व्युत्पत्ति प्रा० 'मह्'-से मानी गई है।[5] परन्तु डा० तेस्सितोरी का कहना है कि 'मो' रूप की व्युत्पत्ति अपभ्रश 'महह' से हुई है जो षष्ठी के सामान्य रूप 'मह' और षष्ठी विभक्ति-'ह' के सयोग से बना है।[6] जोन-बीम्स 'मो' की व्युत्पत्ति 'मह्'[7] एव डा० चटर्जी स० मय से मानते हैं।[8] मेवाती मे प्रयुक्त इस 'मो' रूप पर भी व्रजभाषा का प्रभाव अधिक पडा है। उडिया तथा बगाली मे भी 'मो' प्रचलित है। खडी बोली के 'मुझे' के सम्पर्क से मेवाती मे 'मुज' रूप भी प्रयुक्त होता है। इसका कारण मेवाती की अल्पप्राण की प्रवृत्ति हो सकती है। डा० हार्नली[9] इसे स० 'मदीय' से और डा० तेस्सितोरी[10] एव डा० चटर्जी[11] स० 'मह्यम्' से व्युत्पन्न मानते हैं। स० मह्यम् > अप० मज्झु > पुरानी राज० मझ > गुजराती मज', हिन्दी मुझ। सस्कृत के 'तुह्यम्' से उत्पन्न 'तुझ' के अनुकरण पर ही मझ' या 'मज' से 'मुज' बन गया है। 'मोहि' मे प्रयुक्त 'हि' अप०-प्रा० सबध कारक के परसग 'हं'-स० 'स्य' से व्युत्पन्न है। मेवाती मे इन सर्वनामो का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है—

1 तू मूने काढले तो तेरे मांय भीड पडेगी जब मैं तेरे काम आऊगा। (मैक्लिस्टर)
2 तेरा नौकरी मैं मू नैं बी राख लैं। (ग्रियर्सन)
3 मो जन कू राखो चरनन पास। (ला नु)
4 उबी मालम है मोय। (बोली) (मुझे वह भी मालूम है।)
5 जोबन आगे सायबो सखी मोलू ये ई लाकू किगेड। (लोकगीत)
6 मुज सैं तो यो नांह् चालै। (मैक्लिस्टर)

मेरा—सम्बन्ध कारक के लिये मेवाती मे 'मेरा, मेरे, मेरो तथा मोय' आदि रूप प्रचलित हैं। 'मेरा' की उत्पत्ति सस्कृत मम-केर > प्रा० ममेर > अप० मेर-मा > मेरा से सभव है। डा० चटर्जी[12] एव डा० उदयनारायण तिवारी[13] का भी यही अभिमत है। लेकिन बीम्स[14] एव केलाग[15] महोदय इसे प्राकृत के 'महकेरो' से व्युत्पन्न मानते हैं। मेवाती मे इनका प्रयोग इस प्रकार होता है—

1 उतरगो ढोला मेरा मनमू जैसे बागन से उतरगो अमरूद। (लोकगीत)
2 मेरे ऊपर पोट धरले। (मैक्लिस्टर)
3. क्यू यो मेरो बेटो मर गयो थो जो फिर बे जीवायो है। (ग्रियर्सन)

☐ मूल रुप-बहुवचन—

हम, म्हे, हमन, हमी, म्हाँनै, म्हारो हमारा, म्हाँका—मेवाती मे हम तथा म्हे का बहुवचन मे प्रयोग किया जाता है। हम का प्रयोग सम्पूर्ण मेवात मे होता है। दक्खिनी की तरह प्राचीन मेवाती मे 'हमने' का भी प्रयोग मिलता है। 'म्हे' का प्रयोग प्राचीन मेवाती मे पश्चिमी राजस्थानी के प्रभाव के कारण मिला है। उदाहरणार्थ—

1 हमनै इनको बाप भी देखो हो। (बोली)

2 जीसू म्हे प्रसन होर श्री जी की सेवा थाके तालुके करी। (स० 1833)

3 न हमन मे कहू भूक न प्यास। (ला नु)

'हम' की व्युत्पत्ति स० स्म > प्रा० म्ह से हुई है। बाद मे हिन्दी एव उनकी बोलियो मे स्थान परिवर्तन से 'हम' बन गया है।[16] डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार 'हम' का सम्बध स० अस्मे प्राकृत अम्हे या म्हे से है जिनके 'म और 'ह मे स्थान परिवर्तन हो गया है।[17] 'म्हे' की व्युत्पत्ति भी अस्मे > अम्हे स समव है।[18]

☐ विकृत रूप—

हम, हमी म्हानै—*प्रथम पुरुष बहुवचन के विकारी रूपो मे 'हम हमी, म्हानैं' का प्रयोग किया जाता है। 'हम' की व्युत्पत्ति ऊपर बता चुके हैं। 'हमी की व्युत्पत्ति अम्ह+अइ > हमहि से हुई है। प्राचीन हिन्दी मे 'हमइ' रूप भी देखा गया है जिसका विकसित रूप हमी सभव है। हमइ' म 'अइ सज्ञा की कर्त्ता विभक्ति प्रतीत होती है। 'म्हाँ' की व्युत्पत्ति स० अस्माकम् > प्रा० अम्हाइ > अप० अम्हइ > अम्हाँ से सभव है। डा तेस्सितोरी भी यही मानते हैं।[19] 'म्हाँ के 'नै' परसर्ग लगाकर विकारी की तरह प्रयोग किया जाता है। इसी तरह सबध क रूप 'म्हाँका' की व्युत्पत्ति हुई है।

सम्बन्ध कारक के अन्य रूपों मे 'म्हारो हमारा' का प्रयोग किया जाता है।' 'म्हारो की व्युत्पत्ति स० अस्मत्कार्यक > अप० अम्हारउ से समव है। 'हमारा' की व्युत्पत्ति 'अस्मकर से हुई है।[20] प्रथम पुरुष बहुवचन के प्रयोग निम्न लिखित रूपो मे होते हैं—

1 हमी झूठे हैं। (बोली)

2 म्हारो जाणो धरकार है। (बोली)

3. हमारे बी आयो है एक आदमी। (बोली)

□ मध्यम पुरुष—

मेवाती मे इनके निम्नलिखित रूप प्रचलित हैं—

	एक वचन	बहु वचन
मूल रूप	तू, तैं	तम, तुम
विकृत रूप	तो, तोह, तोहि, तोइ	थाँ, थे
सम्बन्ध	तेरी, तेडी, तेरे, तेरै तेरा, तोप	थाका, तिहारो, तिहारे, तुम्हारा, तुम्हारो

□ मूल रूप-एक वचन—

तू, तै—तू की व्युत्पत्ति संस्कृत 'त्वकम्' से हुई है। अनुनासिक के लोप होने से तू का प्रयोग प्रारम हुआ। मेवाती के अतिरिक्त दक्खिनी हिन्दी, मराठी, राजस्थानी, पजाबी एव गुजराती मे भी 'तू' का प्रचलन मिलता है। मैं > मया के अनुकरण पर जो लोग 'त्वया' से 'तू' की व्युत्पत्ति मानते है, वह उचित नही। डा० तेस्सितोरी,[21] बीम्स[22] एव केलाग[23] 'तू' को संस्कृत त्वकम् > अप० तुहुँ > तूँ से व्युत्पन्न मानते हैं।

'तैं' की व्युत्पत्ति त्वया+एन से हुई है।[24] बीम्स 'तैं' की व्युत्पत्ति 'मैं' के अनुकरण पर अपभ्रंश के मध्यम पुरुषवाची 'तइ' से मानते हैं।[25] स० त्वया > प्रा० तइ, तए > अप० तई-तै। मेवाती में इन रूपों का प्रयोग निम्न प्रकार से होता है—

1 तू पर त्रिया सू रहो लुभानो। (ला नू)
2. तू मूनै काढले। (मैक्लिस्टर) 3. तैं कहाँ हो। (बोली)
4 तैं मूनैं बवैं एक बकरी को बच्चो बी ना दियो। (ग्रियर्सन)

□ विकृत रूप-एक वचन—

तो, तोहि— 'तो' का सबध स० तव > अप० तउ से है। 'तो' मे अन्य कारकों की विभक्तियां प्रयुक्त कर तोहि (कर्म) आदि रूप बनालिए जाते हैं। लेकिन डा० धीरेन्द्र वर्मा[26] स० तुस्स > अप० तत से, एव बीम्स अप० तुहु से 'तो' व्युत्पन्न मानते हैं। ब्रज, सिंधी आदि मे 'तो' का प्रयोग भी मिलता है। मेवाती में 'तो' का प्रयोग निम्न प्रकार से होता है—

1. धोती बाँधवो आवै तो दै। (बोली)
2. तेरो पुत्र तोमू जो मिलै। (ला. नू)

☐ सम्बन्ध सूचक-एक वचन—

तेरो, तेरे, तेरा तेडी, तोय—तेरो तेरे, तेरा आदि रूपों की व्युत्पत्ति केरो, केरे, केरा आदि प्राकृत प्रत्ययों के प्रभाव से सभव है। उदाहरणार्थ—प्रा० तुह+केरो स तेरो। 'र' का 'ड' जिससे 'तेडी' बनता है। 'तोय' की व्युत्पत्ति के सबध मे ऊपर विचार किया जा चुका है। सर्वधकारक के इन रूपो का प्रयोग निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा —

1 स्याड कए ऊट सै कि भाई तेरी पीठ मै मोकू चढाले। (ब्रजभाषा, परिशिष्ट)
2 मैं ईसुर को पाप कर्यो अर तेरो बेटो कहण लायक नाय। (ग्रियर्सन)
3 तेरा नौकरां मैं मूनै बी राखले। (ग्रियर्सन)
4. तेरो पुत्र तोसू जी मिले। (ला नु)
5 तेरे माँय भीड पडेंगी जब मैं तेरे काम आऊगो (मैक्मिस्टर)
6 मोय तोय पडग धन के बीचा। (ला नु)
7. भाईला तेडी पीठ पै मोकू चढाले। (बोली)

☐ मध्यम पुरुष-बहुवचन—

तम, तुम—आदर प्रकट करने के लिए एक वचन मे भी इनका प्रयोग होता है। स० त्वम् > प्रा० तुम्ह, तुम > अप० तुह > तुम मेवाती के समान हरियानी एव गुजराती मे भी तम' का प्रयोग बहुवचन मे ही होता है। मेवाती म इनका प्रयोग देखिए—

1 तुम साहब के पासा यार। (ला नु)
2 तुम दाता गुण के धणी, तम कू सब मुमकल आसान। (मीख)
3 रुपैया पाच मु डत का लू गा जब मैं तम कू जाएँ दू गा। (ला नु)

☐ म. पु. ब. व विकृत रूप—

थानें, थैं मध्यम पुरुप बहुवचन के विकृत रूप पश्चिमी राजस्थानी के समान हैं। थानें आधुनिक मेवाती मे तथा थ' प्राचीन मेवाती मे व्यवहृत है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'थानें' का सबध तुम्हा स तथा थे' का सर्वध तुहे' से है।[28] यथा—तुम्हाणम् > तुम्हां > था। सम्बन्ध बहुवचन के रूप थारा, तिहारा तिहारे मे थाका की व्युत्पत्ति के सबर्ध 'में ऊपर बताया जा चुका है। तिहारो, तिहार का सबध सस्कृत 'तुहकार्यक' से है जिससे अप० तुहारऊ > ताहरऊ, तिहारो आदि रूप सभव है।[29] लेकिन बीम्स के अनुसार तुम्ह+करो स तिहारो, तुम्हारो की व्युत्पत्ति हुई है। अनुस्वार का लोप हो गया है।[30] ब्रजभाषा मे भी इनका प्रयोग मेवाती के समान ही होता है। मेवाती में आदर दिखाने के लिए इनका प्रयोग एकवचन के साथ भी किया जाता है। उदाहरणार्थ—

1 तिहारो कहा गौन है ? 2 तिहारो वही बजार है। (बोली)
3 तिहारो मैं ई मू (बोली) 4 मैं नहिं पिना तुम्हारो चोर। (ला नु)
5 दीन तुम्हारा किनहू न जाएगा ।। (ला नु)
6 थे थाँकी खातर जमा राखो ।[31]

2 निश्चयवाचकसर्वनाम—

(क) निश्चयवाचक दूरवर्ती—

	एक वचन	बहु वचन
मूल रूप	सो, वो, उ (उ, ऊ)	वँ, वो
विकृत रूप	वा, वाय, वँह, वाई, वो, वँ, ता	वँह, उन

☐ मूलरूप-एकवचन —

सो, वो, ऊ—'सो' की व्युत्पत्ति संस्कृत 'स' के प्राकृत रूप 'सो' से हुई है। वह' की व्युत्पत्ति स० अदस् के 'ग्रोइ' से संभव है। डा० चटर्जी स० 'अव' मे संभाविन मानते हैं। वह, वो. वो कभी-कभी ग्रोह, यही वह' वो वो, ग्रोह, ऊ, ग्रोह, वह मे परिवर्तित होकर समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं मे मिलता है।[3४]

दूरवर्ती निश्चयवाचक उ (ऊ), वो की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वानों की खोज अधूरी ही है। वैसे जो कुछ अध्ययन अभी हो सका है उसकी स्थिति अनिश्चित सी है। यद्यपि तथ्य के समक्ष कल्पना का कोई अस्तित्व नहीं है। फिर भी कभी-कभी कल्पना तथ्य तक ले जाने का माध्यम होती है। डा० चटर्जी के अनुसार हिन्दी के वह (वो, ग्र) की व्युत्पत्ति स० के कल्पित रूप अव-प्रा० ग्रो मे हुई है।[33] लेकिन डा० टर्नर इससे असहमत है।[34] केलाग महोदय इसकी व्युत्पत्ति 'ग्रोवः' और 'उम्ह' से मानते हैं।[35] अपभ्रंश साहित्य मे ग्रो ग्रोइ, ग्रोहु, ग्रोइ आदि रूप देखे गए हैं। इनका सम्बन्ध स० अदस् से माना गया है।[36] स० अदस्–प्रा० ग्रोइ–ग्रो। हेमचन्द्र ने इसका प्रयोग बहुवचन में किया है। परन्तु परिनिष्ठित अपभ्रंश के समय मे ही संकेतनिर्देश के लिए 'ग्रोइ' से 'ग्रो' मात्र अवशिष्ट रहा जैसे 'ग्रो गोरि मुहनिज्जग्रउ' (हेम०)[37] कीर्तिलता में 'ग्रो' का सात बार तथा 'ग्रोहु' का तीन बार प्रयोग हुआ है।[38] डा० श्यामसुन्दर दास भी इन्हें स० अदस् तथा अव० पाठ से व्युत्पन्न मानते हैं।[39] अतः कहा जा सकता है कि मेवाती उ (ऊ), व, वा की व्युत्पत्ति संस्कृत के कल्पित रूप 'अव' से नहीं अपितु संस्कृत अदस्–अप ग्रोइ, ग्रोह, ग्रोहु से संभव है। 'वो' में 'व' श्रुति के रूप में आया है। मेवाती मे इनका प्रयोग इस प्रकार होता है—

1 जो आवे सो वाई बूझे। (ला नु)

2 तुरत मुगल वह मार गिरायो। (ला नु)

3 माव, उ तो सरमागो। (बोली)

4 दोनू भाई है रामू वो उ वो। (बोली)

3 ऊ मू म्हे पहला तो जुवाव करां। 6 ऊ बी मालम है मोय। (बोली)

7 वो अपन घर मे गुजर बसर करे ही। (बोली)

8 वा उख्यो अर आपणा वाप कने आयो। (ग्रियर्सन)

विकृत रूप एक वचन—

वा, वाय, वेह, वाई, वो, वै, ता—मेवाती के निश्चयवाचक दूरवर्ती सवनाम तथा अन्य पुरष के विकृत रूप ब्रजभाषा के समान है। इसमे हिन्दी के 'उस' वाले रूप अनुपलब्ध हैं।

विकारी एक वचन वा' की उत्पत्ति किसी कल्पित सस्कृत सर्वनाम 'आव' से हुई है। स्वर परिवर्तन से 'आव' का 'वा' हो गया जो कारक परसर्गों के साथ प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु केलाग महोदय 'वा' की उत्पत्ति स० उमस्या (> अप० उमाह > वा) से मानते हैं।[40] 'वा' मे करण कारक बहुवचन की विभक्ति वैदिक स० एभिस > प्रा० एहि > अइ > ऐ जोडकर 'वैं' रूप निष्पन्न हुआ लगता है। 'वो' की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे ऊपर विचार किया जा चुका है। 'ता' की व्युत्पत्ति स० तद-प्रा० ता से हुई है। हेमचन्द्र ने भी इसका प्रयोग किया है।[41] कीतिलता मे 'ता' का पृ० 22, 10, 100 पर प्रयोग हुआ है।[42] मेवाती मे उपर्युक्त सर्वनामो का निम्नलिखित रूपो मे प्रयोग होता है।

1 वा पेड मैं एक बदर बैठो हो। (बोली)

2 वाही ! वाई न सूई लगाई। (बोली)

3 उन लोगन नैं वा महतर सू सारी बात कह दी। (बोली)

4 वेहनैं अपन् धन उनने बाट दोयो। (ग्रियर्सन)

5. वेहमा से लाडू की डली कुत्ती न गेर दई। (मैकेलस्टर)

6 ताकी गत कोई बिरला पावे। (ला नु)

7. वा अंधे कू राम न सूझे। (ला नु)

मूल रूप बहुवचन—

वे, वो—अविकृत वे, वो की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे हम ऊपर विचार कर चुके हैं। मेवाती मे 'वो' एक वचन तथा बहुवचन दोनो मे प्रयुक्त होता है। दक्खिनी हिन्दी तथा आधुनिक उर्दू मे भी इसका इसी प्रकार प्रयोग होता है। मेवाती मे इनका प्रयोग निम्न प्रकार होता है—

1. व दोनू भाई झूठ न वोलो कर हा। (बोली)
2 वे सतगुर सत वादी ग्यानी। (ला नु)

☐ निश्चयवाचक दूरवर्ती विकृतरूप बहुवचन—

वैह, उन—'वैह' की व्युत्पत्ति ऊपर दी जा चुकी है। विकृत बहुवचन 'उन' रूप का प्रयोग पूर्वी भाषाओं को छोडकर लगभग सभी आ भा आ भाषाओं मे होता है। 'उन' की व्युत्पत्ति 'अदस् के कल्पित रूप 'अव' के षष्ठी के बहुवचन वाले रूप 'अवानाम' स मानी जाती है।[43] परन्तु डा० टर्नर अब से इसकी व्युत्पत्ति सभव नहीं मानते हैं।[44] केलाग महोदय[45] 'उन्ह' से तथा डा० उदयनारायण तिवारी स० अमूष्याम > अमूनाम > अउण > उण्ह, उन्ह मे मानते हैं।[46] डा० तिवारी का मत अधिक तर्क सगत है। मेवाती मे इन सर्वनामों का प्रयोग इस प्रकार होता है—

1. ना किल बूझी नां उन कही। 2 उनका ऐसा सांना दीन। (ला नु)
3 हू सू उननं माल लिकाइ लियो। 4 अब उन नू कार बी ना मिलै। (बोली)
5 वैह नौकरां मैं तं एक बुलायो अर वैह नैं पूछो यो के बात हो रही है।

(ग्रियर्सन)

(ख) निश्चयवाचक निकटवर्ती—

	एकवचन	बहुवचन
मूल रूप	यो, ई, यह, या,	वे
विकृत रूप	या, याथी, याय, यो, तो	इन

☐ मूलरूप-एकवचन—

ई यह, या, यो—केलाग महोदय स० 'एष' स ही यह यिह यिहु, इह, एह एहु है आदि सर्वनामों की व्युत्पत्ति मानते हैं। इनम अन्त्य 'ह' ध्वनि का लोप करन से यि, इ ए' आदि सवनाम बन जाते हैं।[47] 'इ' का ही बाद मे ई' बन गया है। कीर्तिलता मे मूलरूप मे हमें 'ई' पृ० 4 पर तथा 'एहु' पृ० 8, 18 50, 96 पर मिलता है। यहा 'ए' के स्थान पर 'ई' मिलता है। एहु एहो, एहि स कदाचित 'ई' व्युत्पन्न है। कीर्तिलता में इसका प्रयोग इस प्रकार है—

( ) 1 ओ परमेसर हरसिर सोहइ
ई णिच्चइ नाअर मन मोहइ।[48]

अत 'ई' की व्युत्पत्ति इस प्रकार से होती है—स एष (एतद्) प्रा० एहि-अप० इह, ई। ई का मेवाती मे प्रयोग दृष्टव्य है—

1 ई सब मू वही चीज है हूंगा। 2. ना ई होय ना मोय होए दे। बोली)
यह—यह की व्युत्पत्ति स० सर्वनाम 'एष.' (एतद्) से मानी जाती है।

स० एषः > पा० प्रा० एसो > अप० एहो > यह। इसका प्रयोग इस प्रकार होता है—

1. माय मोगरी यह जस लीयो। 2. पुत्र नहीं यह शत्रु तेरो। (ला. नु.)

'या, यो—'या' एवं 'यो' निकटवर्ती सर्वनाम के एकवचन रूप की व्युत्पत्ति प्रा० के कर्त्ताकारक पुल्लिंग एक वचन के 'इमो' 'म', का लोप होने से 'इयो' > यो से हुई है।[49] वस्तुतः निकटवर्ती निश्चयवाचक का 'य' का रूप समस्त आ. भा. आ भाषाओं में प्रचलित है। राजस्थानी, ब्रज, हरियानी में तो यह रूप विशेष रूप से प्रयुक्त होता है। मेवाती में 'यो' रूप की प्रमुखता है। संभवतः 'यो' के अनुकरण पर 'वो' का प्रचलन हुआ है। मेवाती में 'या' एवं 'यो' सर्वनामों का प्रयोग निम्न प्रकार से होता है

1. नामण तो समझी ना या बात अर जाट समझगो। (बोली)
2. क्यू यो मेरो बेटो मर गयो थो जो फिर कै जियायो है। (ग्रियर्सन)
3. *यो गहरण् काहीं तै आयो। 4 यो ही बंस परताप कौ।*[50]
5 यो तो नाही मौनवा, बखतावर श्रोतार।[51] 6. या बखतेष की बाणए।[52]

☐ निश्चय वाचक सर्वनाम निकटवर्ती विकृत रूप—

या, यायी, याय, यी, ती—मूलरूप के एक वचन में कारक विभक्तियां जोड़ कर विकृत रूप यामैं, यानैं, याका आदि बनाये जाते हैं। *या' की व्युत्पत्ति ऊपर* बताई जा चुकी है। 'या' हिन्दी के 'इस' सर्वनाम का सूचक है। यायी और याय अधिक नैकट्य के द्योतक हैं। ब्रज में भी 'या' 'इस' सर्वनाम का अर्थ प्रकट करता है। पश्चिमी राजस्थानी में इसका प्रयोग विरल है। *मेवाती के प्राचीन पट्टे परवानों* में 'ती' (इस) का प्रयोग भी देखने को मिला है, जो आधुनिक मेवाती में अप्राप्य है। 'ती' की व्युत्पत्ति स० तस्य > प्रा० तिस्स > अप तिस से हुई है।[53] इन सर्वनामों का मेवाती में निम्न प्रकार से प्रयोग होता है—

1. या दौर मैं खारी सू बेहतर सदूक है। (बोली)
2. वानै कही यानै पहुंचा दे। 3. यामैं कानूनी बात रह गई। (बोली)
4. या कलजुग पै दया करी। 5. कै याय माल परायो पायो। (ला नु.)
6. याई सबद जै मानै कोई। (ला. नु) 7. यायी नैं दगो विचारो। (बोली)
8 जो यी श्राग जमीनो हम पाय श्राया हा। परि० पट्टा सं० 1755)
9 अपरवा हिजूर लछमनगढ पधार्‌या ती बात की बोहत पात्र जमा हुई।

(परि० वि० 1837)

☐ मूलरूप निश्चय वाचक सर्वनाम निकटवर्ती बहुवचन—

ये—'ये' रूप पश्चिमी राजस्थानी में प्राप्त नहीं हैं। केवल पश्चिमी हिन्दी की बोलियों में प्राप्त होता है। 'ये' की व्युत्पत्ति स० एते > प्रा० > एए, एये (य श्रुति से) > अप० एह > ये मानी जाती है।[54] डा० हार्नेली इसका सम्बन्ध स० एष से जोड़ते हैं।[55] डा० चटर्जी समस्त निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनामों की व्युत्पत्ति स० के मूल शब्द 'एतत' से मानते हैं।[56] जिसके 'तत्' को लोप हो गया है। हेमचन्द्र के व्याकरण में 'एइ' के उदाहरण प्राप्त होते हैं।[57]

1. एइ ति घोड़ा एह थलि, एह ति णिसिग्रा खग्ग (4/330)
2. एह पेच्छ। 4/363

अत 'ये' कि व्युत्पत्ति इस प्रकार होती है—
स० एतद् > पालि एते > प्रा० एए > अप० एइ > ये।

मेवाती मे इस सर्वनाम का प्रयोग निम्नलिखित ढग से होता है—

1. लोग कहे ये हमनेई मारे। (ला नु.)
2. नैनन में ये सुरमो सारा। (बोली)
3. ये च्यारू अघ कुवा में पड्या था। (मैकिलस्टर)

☐ विकृत निकटवर्ती निश्चयवाचक—

इन—विकृत 'इन' सर्वनाम की व्युत्पत्ति संस्कृत सबध रूप अस्य > प्रा० अस्स > अप० 'इह' से हुई है, जिसमे स० सबध बहुवचन के आनाँ के प्राकृत रूप आण > से व्युत्पन्न 'न' को जोड़ देते हैं तथा 'इह' के 'ह' का लोप कर देते हैं।[58] कुछ लोग 'उक्ति व्यक्ति' मे व्यवहृत 'यह' के बहुवचन अप० 'एण्ह' से इन, इन्ह की व्युत्पत्ति मानते हैं।[59] डा० उ. ना. तिवारी का भी यही मत है।[60] मेरे विचार से 'इन' सर्वनाम की व्युत्पत्ति स० विकारी सम्बन्ध बहुवचन के एतानि>प्रा० एयाणी एइण>अप० एण्ह से होती है। 'ए' का 'ई' 'इ' हो गया जिससे पश्चिमी राजस्थानी का 'इण' एव मेवाती, ब्रज, दक्खिनी हिन्दी, हरियानी आदि का 'इन' सर्वनाम व्युत्पन्न हुआ है। विकृत बहुवचन 'इन' रूप पश्चिमी हिन्दी प्रदेश में अत्यन्त प्रचलित है। मेवाती में इसके प्रयोग को निम्नलिखित उदाहरणों मे देखा जा सकता है—

1. इनकू जहर कुई का पाणी प्यावो। (ला. नु)
2. जे कही मैं मरगो तो इन चीजन नैं कोण बतावेगो। (बोली)
3. इन बातों माहिं खशी बिरला बातो कोई।[61]

☐ अनिश्चय वाचक सर्वनाम--

	एक वचन	बहुवचन
मूल रूप	कोई कोइ, कोय काय, कुछ कछु, किमैं	कोई
विकृत रूप	किसी, कस, काई	किन

कोई, कोइ, कोय, काय—अनिश्चयवाचक सर्वनामों की व्युत्पत्ति संस्कृत के प्रश्नवाचक सर्वनाम क से सम्बधित है। मूल रूप एकवचन कोई की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—स० को पि > प्रा० कोवि > अप० कोहि, कोइ (ह का लोप) कोइ, कोई। कीर्तिलता मे 'कोइ' का प्रयोग पृ० 16 पर एक बार हुआ है। मूलरूप बहुवचन मे भी यही रूप होता है। कभी-कभी बहुवचन मे सब < सब्ब < सर्व सवनाम के साथ भी 'कोई' का प्रयोग होता है। अनिश्चय वाचक का 'यह' रूप ब्रजभाषा (ब. व. मे कोई) पश्चिमी राजस्थानी म कोई, कोइ) हरियानी (कोई) दक्खिनी हिन्दी (कोई) तथा हिन्दी कोई) मे भी प्रचलित है। ब्रजभाषा एकवचन मे 'कोउ' रूप प्रचलित है। मेवाती मे इसके उदाहरण दृष्टव्य है—

1 ग्रैसा सत राखै कोई। (ला नु)
2. पुन नहिं कोई है औतारी। (ला नु)
3 एक दिन उनका घर पर कोई मीहमान आगो। (ग्रोली)
4 बैलाको समभलो कोय पोरा कोस। (वोली)
5. कोई आदमी बैह नैं किमैं बी नाय देतो। (ग्रियसन)

☐ अनिश्चय सर्व० विकृत रूप एकवचन -

किसी, कस, काई—'किसी' की उत्पति इस प्रकार मानी जाती है—
स० कस्यापि > प्रा० कस्सवि > अप० कस्सइ > किसी

पूर्वी हिन्दी की बोलियो 'भोजपुरी आदि) मे इस सर्वनाम का सर्वथा अभाव है। हरियानी म किस' के स्थान पर 'किस्से' प्रयुक्त होता है। पश्चिमी राजस्थानी मे 'किहि' प्रयुक्त होता है। ब्रज और राजस्थानी म 'किसी' सवनाम का प्रचलन नही है।

किसी' के साथ साथ मेवाती मे 'कस एव काई' का भी प्रयोग किया जाना रहा है। 'कस' की व्युत्पत्ति स० कस्य प्रा० कस्स से हुई है तथा 'काई की व्युत्पत्ति स० कस्यापि > प्रा० काहाइ > अप० काइ > काईं, काई। मेवाती मे इनका प्रयोग निम्न प्रकार से होता है—

1 साँची बात न भावे काई। (ला नु)
2 काई के मन भावे काची। (ला. नु.)
3 ग्रौर किसी सू काज न सरे। (ला नु.)
4. काई सौत्न् नें ग्रान बहकायो। (बोली)

☐ **अप्राणीवाचक अनिश्चयवाचक सर्वनाम—**

कछ, (कछू) कुछ, किमैं—'कछु' ग्रौर 'किमैं' सर्वनामो का एकवचन एव वहुवचन मे मूल एव विकृत दोनों रूपों में प्रयोग होता है। क्योंकि 'कुछ' सर्वनाम की कारक रचना नही होती। यह कुछ रूप ही पुरानी हिन्दी मे कछु सर्वनाम की कारक रचना नहीं होती। यह कुछ रूप ही पुरानी हिन्दी मे 'कछु' पजाबी मे 'कुछ' उडिया मे 'किछि', बगला मे किछु' मगही मे 'कुछू' या कुच्छो, भोजपुरी मे 'किछु या कुछू खडी बोली में 'कुछ', ब्रजभाषा मे कछ या कछु', गढवली मे 'किछ', अवधि में कुछ, छत्तीसगढी मे कुछु, मैथिली मे कुछ, किछु प्रयुक्त होता है। इनके अतिरिक्त सिधी, गुजराती, मराठी तथा पश्चिमी राजस्थानी मे क्रमश की, कइ काही, कँई रूप प्रचलित हैं। यहा मेवाती कुछ या कछु बोलियो से अधिक सम्पर्कित है। कुछ रूप हिन्दी (पूर्वी तथा पश्चिमी) बोलियों की विशेषता है। कुछ शब्द की व्युत्पत्ति के सदर्भ मे विद्वानों के दो प्रकार के विचार प्रकाश मे ग्राये हैं। एक वर्ग का कहना है कि 'कुछ' की व्युत्पत्ति सस्कृत कश्चित् > प्रा० कच्चुक से हुई है[62] तथा दूसरा वर्ग इसे 'किञ्चित्' > प्रा० किचि > अप० किच्चित से व्युत्पन्न मानता है।[63] प्रथम वर्ग म केलाग, डा० धीरेन्द्र वर्मा ग्रादि ग्राते हैं तथा दूसरे मे बीम्स, तिवारी ग्रादि। मेरे विचार से कछु, कछू, कुछ रूपों की व्युत्पत्ति स० कत् + चित-कच्चित मे सभव है। अपभ्रंश मे इसका कच्चु[64] ग्रादेश होता है। जिससे दक्खिनी हिन्दी का कछु व्युत्पन्न है। सस्कृत कच्चित् पूर्वी ग्रौर पश्चिमी हिन्दी के किछु, किछि तथा कछु, कछू, कुछ की व्युत्पति दो समानान्तर धाराओं में हुई। इनकी व्युत्पति इस प्रकार होती है—

1 स० कत् + चित्-कच्चित > प्रा० कच्चि, किछि > पूर्वी हिन्दी किछि किछु

2 स० कत् + चित्-कच्चित > प्रा० कच्छ > अपभ्रंश कच्चु > प० हिन्दी कछू, कुछ

मेवाती में 'कछु' का प्रयोग दृष्टव्य है—

1. कोई कहे कछु हमको दे। 2 या पुत्र कछु काम न कीयो। (ला. नु.)
3. कछु तो है तुम्हारे याद। (बोली)
4. ज्यो कुछ लिखो कलाम में विधना रची स होय।[65]

किमैं—मेवाती मे अनिश्चय वाचक (निर्जीव) सर्वनाम की जगह कहीं-कहीं 'किमैं' (कुछ) रूप का भी प्रयोग होता है। 'किमैं' की व्युत्पत्ति स० प्रश्नवाचक सर्वनाम 'किम्' पुल्लिग की सप्तमी एक वचन के 'कस्मिन्' रूप से सभव है।

स० कस्मिन् > प्रा० किम्हि > प० रा० किमि > मेवाती किमैं।

इसके उदाहरण दृष्टव्य हैं—

1 कोई आदमी वँह नै किमैं बी नाँय देतो। (ग्रियर्सन)

2. जो किमैं मेरे कनै है सो तेरो ही है। "

☐ अनिश्चय वाचक विकृत बहुवचन—

किन—प्राचीन मेवाती मे 'किन' सर्वनाम का अनिश्चय बहुवचन के विकृत रूप की तरह प्रयोग हुआ है। आधुनिक मेवाती मे इसका अभाव है। मेवाती मे प्राप्त यह रूप पूर्वी ब्रज एव हिन्दी के प्रभाव का द्योतक है। ब्रज भाषा मे 'किन' का प्रयोग मिलता है जबकि पश्चिमी राजस्थानी मे 'किण' रूप प्राप्त होता है। दक्खिनी मे भी 'किन' का इसी अर्थ मे प्रयोग मिलता है। विश्वरी ब, व 'किन' की उत्पत्ति कल्पित रूप 'कानाम्' से मानी जाती है।[66] केलाग महोदय[67] इसे स० 'क.' से तथा डा० उदयनारायण तिवारी स० केपाम्–काण से व्युत्पन्न मानते हैं। काण बाद मे काण मे परिवर्तित हो गया किन्तु पालि किस्स–कस्य तथा किण के प्रभाव से यह किण बना तथा किण से बाद मे किन हुआ।[68] डा० परममित्र शास्त्री अपभ्रंश 'कवण' से किन व्युत्पन्न मानते हैं।[69] अतः 'किन' की व्युत्पत्ति इस प्रकार मानी जा सकती है—

स० कस्मिन् + पुन > पालि किम्हिवण > अप० किंवुण > किन।

मेवाती मे इसका प्रयोग निम्न प्रकार होता है—

1. ना किन बूझी नाँ उन कही। (ला नु)

2. दीन तुम्हारा किन हू न जाणा (ला. नु)

☐ प्रश्नवाचक सर्वनाम—

मेवाती मे निम्नलिखित प्रश्नवाचक सर्वनाम प्रयुक्त होते हैं। इनके रूपान्तर नही होते। ये एक वचन और बहुवचन मे समान रहते हैं।

	एक वचन	बहु वचन
मूल रूप	कौण, कान, को	कौण
विकृत रूप	कुण, कोण, कौन	कुण

कौण—डा० धीरेन्द्र वर्मा 'कौन' की व्युत्पत्ति स० कः पुनः > कोउण, कवण, कवन > कौन से मानते हैं। केलाग महोदय 'को', की, का सं० कः से, 'का'

का स० वस्य > काह से, कौन' का स० क पुन' से व्युत्पन्न बताते हैं, जिसके कवन, कौन, कोउण, कुण और कण आदि विविध रूप हैं। यह बहुवचन में भी अपरिवर्तित रहता है।[70] 'कौ' की व्युत्पत्ति स० क >प्रा० को से हुई है। मेवाती में इनका प्रयोग निम्न प्रकार से किया जाता है।

1 कौण हा ? (बोली) 2 तो सू होस्यार कौण है ? (बोली)

3 अब तेरी को करै सहाई ? 4 फकर कौन तुम्हारी जात ? (ला नु)

5 कुण लू दोष लगावै दखियो ठसरू गई घर-बार की ?

कहा (क्या), के, काइ क्या—मेवाती मे 'क्या' के 'कहा' काई के क्या' रूप प्रचलित हैं। 'कहा' पर ब्रजभाषा का, 'काई' पर जयपुरी का, के' पर हरियानवी का तथा 'क्या' पर खडी बोली का प्रभाव स्पष्ट है। 'कहा' एव क्या' की उत्पत्ति बीम्स स० नपु० किम् से मबद्ध करते हैं, अपभ्रंश के विकृत सबध रूप 'कह' अपादान रूप 'कह' अधिकरण रूप 'कहिं' से 'कहा' व्युत्पन्न है। 'ह्' का लोप कर कहा से 'कआ' बना जिसमे व श्रुति का आगम हुआ, जिससे 'क्या' बना।[71] केलाग स० वस्य-अप० काह् से 'कहा' को तथा अपभ्रंश रूप 'किहा' से 'किआ > क्या तथा स० किम' > प्रा० नपु० कात्किक से काई उत्पन्न मानते हैं।[72] डा० श्यामसुन्दर दास 'क्या' को स० किम् अप० काई और 'काहि' प्राकृत के अपादान कारक रूप 'काहे' से सीधा आया मानते हैं।[73] कवण 'का' काई रूप अपभ्रंश मे पाया जाता है।[74] क' की उत्पत्ति इस प्रकार हुई है—कल्पित रूप कक > कके> कगे>कए > कँ > के।[75] ऐसा लगता है कि पश्चिमी हिन्दी की बोलियों में यह कारक रूप पूर्वी बोलियो से आया है। मेवाती मे इसके उदाहरण निम्न प्रकार दृष्टव्य हैं—

1 हाली लोगन पै कहा याद है ? 2 तिहारो कहा नाम ? (बोली)

3 यार काई भाख्या काढै है ? (बोली)

4 वेहनै पूछो यो के बात हो रही है। (ग्रियर्सन)

5 या की गत क्या जाणूँ कोय। ला नु। 6 क्या मागते का मान है ?[76]

□ सम्बन्ध वाचक सर्वनाम—

जो—सबन्ध वाचक सर्वनाम 'जो' तथा इसके अन्य विकृत रूप संस्कृत यत >प्रा० 'ज' के विविध रूप हैं। जो अपभ्रंश से आधुनिक काल तक उसी रूप में चले आ रहे हैं। इस सर्वनाम के मेवाती म निम्नलिखित रूप प्राप्त होते हैं—

	एक वचन	बहु वचन
मूल रूप	जो	जौ
विकृत रूप	जा	जिन

मेवाती में मूलरूप एकवचन 'जो' का सर्वाधिक प्रयोग होता है। ब्रजभाषा की भी यह विशेषता है। वस्तुतः मूलरूप के बहुवचन को छोड़कर 'जो, जा, जिन' आदि सभी रूप ब्रज के समान ही प्रयुक्त होते हैं। 'जिन' का प्रयोग अत्यन्त व्यापक है जो पश्चिमी हिन्दी बोलियों के अतिरिक्त मालवी, लहदा आदि में भी होता है। प्राचीन हिन्दी के 'जोइ' का भी उल्लेख मिलता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि 'जो' की व्युत्पत्ति स० यः > प्रा० यो > अप० जो से हुई है। 'जोइ' की उत्पत्ति यः + अपि-प्रा योवि-जोइ से संभव है। 'जोई' की 'इ' का जो के 'ओ' से पहले 'य' होने से ज्यो' बन गया। 'जा' की उत्पत्ति स० यस्य > प्रा० जस्स > अप० जाह, जाअ से होती है। 'जिन' विकृत बहुवचन की व्युत्पत्ति संस्कृत षष्ठी बहुवचन यानां (येषां) > प्रा० 'जाण', जाण से हुई है। इस पर करण कारक की 'एभि' का प्रभाव भी है। मेवाती में इसके उदाहरण निम्न प्रकार से देखने में आते है

1 जो आवे सो बाई बूझ। 2 जोइ कहै सो साँची होइ। (ला नु)
3 ज्यो कुछ लिखी कलाम में। (बख्तावर सिंह की बारह खडी से)
4 जो वरछा सूर खाय था। (ग्रियर्सन)
5 जा घर जनम लियो लालदास। (ला नु)
6. जामू या कर्नं ही चल। 7 जा पै मुरग बैठो हो। (बोली)
8. जा का हो जो ले गया। (मीक)
9. जिन मोय दीना पिंड र प्राना। (ला. नु)

☐ नित्य सम्बन्धी—

सो—'सो' का प्रयोग दक्खिनी और ब्रजभाषा की तरह मेवाती मे भी होता है। मेवाती मे इसका प्रयोग निश्चय वाचक तथा पुरुष वाचक अन्य पुरुष सर्वनाम की तरह होता है। सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'जो' के साथ इसका प्रयोग सम्बन्ध सूचक की तरह होता है। 'सो' की व्युत्पत्ति कल्पित स० सक (स) > प्रा० सको, सगो, > अप० सओ सो से मानी जाती है। लेकिन यह स० 'स.' > पा० 'सो' से भी संभव है। इसका विकृत रूप 'सोइ' है। जो सः + एव से व्युत्पन्न है। मेवाती में इसका प्रयोग इस प्रकार होता है

1. जो कोई करे सो भुगते आप। 2 जिन पिंड दिया सोइ दुख हरे। (ला नु)
3 स्याह हो सो पुकार कै भग गयो। (बोली)
4 जातो रह्यो थो सो पा गयो। (ग्रियर्सन)

☐ निजवाचक (आदर वाचक) सर्वनाम—

आप - मेवाती मे निजवाचक सर्वनाम 'आप' के विभिन्न रूप प्रयुक्त होते हैं। आप' बहु वचन रूप ही आदर वाचक सर्वनाम के लिए प्रयुक्त किया जाता

है। निजवाचक सर्वनाम 'आप' के निम्नलिखित रूप मेवाती मे प्रयुक्त किये जाते हैं। आपन, अपने अपण, अपणा, अपणी, अपण, अपणे, अपणो आपां, आपस।

डा० चटर्जी का मत है कि स० 'आत्मन्', उदीच्य मध्यदेशीय तथा पूर्वी प्राकृतो मे मागधी का काल्पनिक रूप 'अत्त' आता है, शौरसेनी मागधी एव अर्द्ध मागधी का 'अत्ता', दक्षिण पश्चिम की प्राकृतो के अप्पा' म लुप्त हो गया। कालान्तर में यही 'अप्पा' अथवा 'अप्प' 'आप' के रूप मे विकसित हुआ।[77] बीम्स,[78] हार्नले,[79] केलाग,[80] तेस्सितोरी,[81] आदि का भी यही मत है। 'आपस' की व्युत्पत्ति अनिश्चित है। बीम्स प्रा० 'आपस्य' से इसका सम्बन्ध जोडते हैं परन्तु केलाग महोदय इसे उचित नही मानते। कारण कि इसके प्रमाण साहित्य मे नहीं मिलते।[82] 'आप के सबधवाचक विशेषण के रूप मध्यकालीन आर्य भाषाओ म प्रचलित 'अप्पण' से सबधित है। अपभ्रश व्याकरण मे हेमचन्द्र न 'अप्पणउ का प्रयोग किया है।[83] 'उक्ति व्यक्ति' मे आपण आपणी बोलिना म अपन, अपने पश्चिमी राजस्थानी मे आंप, आपण, विकारी सबध म 'आपा', 'आपणइ' तथा पुरानी खडी बोली मे 'अप्पणइ' का विकसित रूप अपनइ' मिलता है जो बाद म 'अपन' हो गया है मेवाती म इनका प्रयोग दृष्टव्य है —

1 आप कहे और पं कहला वं। (ला. नु)
(स० आत्मन् > प्रा० अप्पा अप्प > अप० अप्प > आप)
2 आपन कौन कहावो भाई। (ला नु)
(स० आत्मनम् > प्रा० अप्पाणँ > आपन)
3 अपन पाप आप ई जलँ। (ला नु।
4 अपण दोनू वा लेज लू गला मैं माद लेंगा। (बोली)
(स० आत्मन > प्रा० अप्पणो > अप० अप्पण > अपण)
5 जब हर अपणे जन सू बोले। (ला. नु)
(अप० अप्पणइ > अपणे > अपने)
6 अपणा भाई सू मिल लियो। (बोली)
(स० आत्मन > प्रा० अप्पणो > अप० अप्पाण, अपण > पु० प० रा अपण > अपणा)
7 अपणी अपणी बातन कर री ही। (बोली) (ई स्त्री प्रत्यय)
8 जब छब देखी पीव की अपणी भूल गई। (भीक)
9 वैह ने अपण धन उनन बाट दियो। (ग्रियर्सन)
(आत्मन > अप्पणो > अप्पण)
10 अपणो हर जाणकर लीजो। (ला नु)
(स० आत्मन > प्रा० अप्पणो > अप अप्पण)

11 आपा तीन होना चाहिए। (बोली)

(सं० आत्मन > प्रा० अप्पाण > पु० रा० आपाँ > आपा-आपान)

12 आपान लू निवाज फडा सके। (बोली)

13 उननैं आपस मैं गलान नैं मांद ली। (बोली)

(सं० आत्मस्य > प्रा० अप्पस्स > आपस)

□

सदर्भ-सकेत

1 क ग्रा ग्रा. ग्रथ 2 पृ० 303, ग्रनु० 63

2 ग्रो डे वे, पृ० 808, ग्रनु० 539 (3) ग्रा हि लै, पृ० 208, ग्रनु 351

4 पु रा, पृ० 106, ग्रनु० 83 (5) ग्रा हि लै, केलाग, पृ 210, ग्रनु 353

6 पु रा, पृ० 106, ग्रनु० 83 (7) क ग्रा ग्रा, ग्रथ 2, पृ० 305

8 ग्रो डे वे, ग्रनु० 541 (9) क ग्रा ग्रा ग्रनु० 430, पृ० 282

10 पु रा, पृ० 106, ग्रनु० 83 (11) ग्रो डे व, पृ० 813, ग्रनु० 543

12. वही (13) हि भा उ वि पृ० 451, ग्रनु० 3 5

14 क ग्रा ग्रा ग्रथ 2, पृ० 314, ग्रनु० 66

15 ग्रा हि लै, पृ० 210, ग्रनु 355 (16) वही, पृ० 209, ग्रनु० 351

17 हि भा इ पृ० 281, ग्रनु 287 (18) पु रा, पृ० 107, ग्रनु 84

19 वही (20) हि भा उ वि, ग्रनु 335, पृ० 451

21 पु रा, पृ० 108, ग्रनु 86 (22) क ग्रा ग्रा., ग्रथ 2 पृ० 310 ग्रनु 65

23 ग्रा हि लै, पृ० 209, ग्रनु 352

24 ग्रो भा सा, खण्ड 1 पृ० 216, ग्रनु 387

25 क ग्रा ग्रा, ग्रथ 2, पृ० 310, ग्रनु 65

26 हि भा, इ., पृ० 283, ग्रनु 290

27 क ग्रा ग्रा, ग्रथ 2, पृ० 310, ग्रनु 65

28 पु रा पृ० 109, ग्रनु 87 (29) वही, पृ० 108, ग्रनु 86

30 क ग्रा ग्रा ग्रथ 2, पृ० 314, ग्रनु 66

31 पुरातत्व, बीकानेर (ग्रलवर। 3, पृ० 20)

32 ब्र भा, पृ० 70, ग्रनु 170 (33) ग्रो डे वे, ग्रनु 572

34 ने डि पृ० 42 (35) ग्रा हि लै, पृ० 214, ग्रनु 365

36 ग्रदम ग्रोई 4 ॥ 364 ॥ (सिद्ध-हेम, ग्रपभ्र श विभाग)

37 सू ग्र व्या, पृ० 175 (38) कीर्ति०, पृ० 40

39 हि मा, पृ० 46 40) ग्रा हि लैं, पृ० 216, ग्रनु 369

41 सिद्ध हेम 4/272 (42) कीर्ति०, पृ० 40

43 द हि उ वि., पृ॰ 205, अनु. 332 (44) ने. हि., पृ॰ 42
45. प्रा. हि. लै, पृ॰ 214, अनु 365
46. हि भा. उ वि, पृ॰ 452, अनु 337
47. प्रा हि लै, पृ॰ 214, अनु 364 (48) कीर्ति॰, पृ॰ 4
49 प्रा. हि. लै., पृ॰ 214, अनु 364
50 बख्तावरसिंह जी महाराज श्री बारहखडी, पुरातत्व बीकानेर, फा न. 257, न॰ 8 अलवर। (51) वही (52) वही
53 प्रा. हि. लै, पृ॰ 216, अनु॰ 369
54. हि. भा. उ. वि., पृ॰ 452, अनु॰ 336 (55) प्रा. ई. हि., अनु॰ 438
56 प्रो हे. बै. लै., अनु॰ 566 (57) एइजस शसो। हेम॰ 4/363
58. क प्रा. भा., ग्रन्थ 2, पृ॰ 319, अनु॰ 68
59 (क) हि. वि प्रप, नामवर सिंह, पृ॰ 13
(ख) सू म व्या, परम मित्र शास्त्री, पृ॰ 173
60. हि भा. उ. वि, पृ॰ 452, अनु॰ 326
61. प्र ग, पाउलट (लालदास की वाणी से)
62. प्रा हि लै., पृ॰ 218, अनु॰ 219 (63) क. प्रा. भा, पृ॰ 328, अनु॰ 72
64 सिद्ध हेम 8/4/329 (65) बख्तावर सिंह जी महाराज की बारहखडी, म्हादेव दीवाण कृत, पुरातत्व बीकानेर, सूची॰ 8, फा॰ 257, वि.स 1940
66. द हि. उ. वि, पृ॰ 209, अनु॰ 335
67 प्रा. हि लै, पृ॰ 218, अनु॰ 374
68. भो भा. मा., पृ॰ 233, अनु॰ 418 (69) सू. प्र. व्या, पृ॰ 172
70 प्रा. हि. लै, पृ॰ 316, अनु॰ 366-369
71. क. प्रा. भा., ग्रन्थ 2, पृ॰ 324, अनु॰ 71
72. प्रा. हि. ले, पृ॰ 219, अनु॰ 375-476 (73) हि. भा., पृ॰ 146
74. सिद्ध हेम॰-किम: काइ कवणौ वा। 8/4-367
75. हि. भा. उ. वि., पृ॰ 455, अनु॰ 341
76. प्र. ग, पाउलट (लालदास की वाणी से)
77. प्रो. हे. बै., पृ॰ 846, अनु॰ 591
78 क. प्रा. भा., ग्रन्थ 2, पृ॰ 328, अनु॰ 73
79. प्रा. गो. ले., पृ॰ 302, अनु॰ 445 (80) प्रा. हि. ले., पृ॰ 220, अनु॰ 380
81. पु रा., पृ॰ 116, अनु॰ 92 (82) प्रा. हि. ले., पृ॰ 220, अनु॰ 380
83. सिद्ध हेम॰ /8/4/350, 267, 422, 430

विशेषण

रचना की दृष्टि से मेवाती विशेषणो के दो रूप हैं—मूल एव विकृत । मूल विशेषण अपरिवर्तनीय होते हैं । वे संज्ञा के लिंग, वचन, कारक के अनुसार रूप नही बदलते । जबकि विकृत विशेषण सज्ञा शब्दो का अनुसरण करते हैं ।

▢ मूल विशेषण—

मेवाती मे मूल विशेषणो मे सामान्यत: व्यजनान्त विशेषण आते हैं । ये सज्ञा की विशेषताए वताते हुए भी अविकृत रहते हैं । जैसे—

1 मोटिया हो सुन्दर घणो । 2. जेठ बी सुन्दर ही हो । (बोली)

▢ विकारी—

मेवाती विशेषण ओकारान्त होते है । ब्रज भाषा की भी यही प्रवृत्ति है । विकारी विशेषणो मे ओ > आ हो जाता है । यथा

1. आछ्या कपडा ल्यावो अर वैहनै पहरा । (ग्रियर्सन)
2. धोली धरती कालो बीज, बोवण वालो गावै गीत । (बोली)
3 वैहको वडो बेटो खेत मैं हो । (ग्रियसन
4 बडे घरन पैदा हुई मिल्यो तेरो बडा घरन मैं सीर । (बोली)

स्त्रीलिंग सज्ञा पदों के साथ समस्त वचनो एव कारको मे ओकारान्त विशेषण पद का ओ > ई मे वदल जाता है । यथा—

1. ओलाती सूखी की सूखी आखन मैं बरसात है ।
2 काली लकडी कैर की माणस की ज्यू जाय । (बोली)
3 इकली लकडो ना जलै । (बोली)
4 धोली चादर ओढ के बैनर सो *गया खूटी ताण* । (बोली)
5 कच्ची कली कचनाल की । (बोली)
6. ज्वार वाजरो ऐगलो बेंगलो मोठ पको भारी मोटी । (बोली)

ओकारान्त विशेषण पदों के विकारी–आ के स्थान पर कभी कभी 'ओ' तथा स्त्री प्रत्यय 'ई' के स्थान पर ईं' भी हो जाता है । यथा—

1 फेर वैहका बावा गाल पर तीन आगली केसर की भरकर मारी । (मैक्लिस्टर)

2. वैहकी बावीं जांघ पर तिरमूल मार्यो । (मैक्लिस्टर)

मेवाती मे ओकारान्त विशेषणो के अतिरिक्त इतर विशेषणो मे रूप परिवर्तन नही होता ।

r सादृश्य सूचक विशेषण—

सा—संज्ञा या सर्वनाम पदों के साथ सादृश्य बोधक-सा-पद का प्रयोग किया जाता है। इसकी व्युत्पत्ति स० सम > प्रा० सम > अप० सम्र से हुई है। इसके उदाहरण निम्न प्रकार हैं —

1. गरब करा सू हार गया रावण सा जोधा। बोली)
2. आकट सी लिपटी रहे मेरे भरे चले की सास। (बोली)
3 सामण की सी घटा लूमरो जोबन तेरा। (बोली)

आधिक्य या अतिशयता व्यक्त करने के लिए विशेषण पद के साथ-'सो' पद का प्रयोग किया जाता है। ब्रजभाषा मे 'सो' तथा हिन्दी मे 'सा' प्रचलित हैं—

1 थोडो सो ही है। 2. हम छोटे से ज्यानमर तम हो पूरे भभ्भारी।
3 अर मोटो सो डन्डा लेकर वाही मे भगो। (बोली)

उत्पत्ति-मे० सा, सी, सौ > प्रा० सो > स० शम्

☐ तुलनात्मक कोटियाँ—

प्राय मेवाती विशेषणो मे तुलनात्मक श्रेणी निर्धारण के लिए तरवन्त तथा तमवन्त विशेषण पद प्राप्त नही होते। यह परपरा प्रा० भा० आ० एव म० भा० आ० भाषाओ तक ही समाप्त हो गई। यों कही-कहीं सस्कृत के तमवन्त तद्‌भव रुपों का प्रयोग मिल जाता है। यथा—

1 पैडा ही मैं पीतम मिले। (ला नु)
2 कहा नाँव कहा गाँव है, सुण उतम घर की नार। (बोली)
3 उतम घर को कवर है राजथान कोइ गाँव। (बोली)

☐ तरवन्त विशेषण—

मेवाती मे तुलना के भाव को व्यक्त करने के लिए सज्ञा या सर्वनाम पद के बाद-'सू' का प्रयोग किया जाता है। जैसे—

1 तो सू प्यागे कोण है जासू मैं भर देखू नैणा। (बोली)
2 खारी सू अच्छो औजार। (बोली)
3 सबल एक सू एक है सबको घटो गुमान। (बोली)

कभी कभी इस 'सू' युक्त रुप के साथ या स्वतत्र रुप से भी बहोत (भोत), घणा, घणी, घणे, घणो, घणेणोई आदि पदो का प्रयोग भी किया जाता है। यथा—

1 वासू बहोत बढिया है। (बोली)
2. वँह देस मैं भोत भार्‌यो काल पड्यो। (ग्रियर्सन)
3. भोटिया ही सुन्दर घणी। 4 एक आदमी बहोत घणो मालदार हो।

5 नदी में पाणी घणेणोई है। (बोली)

6 काल सू साब मोकू बुखार बहोत जोर सू श्रा रह्यो है। (बोली)

फारसी के तुलनात्मक रुप 'बेहतर' का प्रयोग भी देखने को मिला है। यथा-खारी सू बेहतर सिन्दूक है।

☐ तमवन्त विशेषण—

सबसे अच्छा (तमवन्त विशेषण) का भाव विशेषण पद के पूर्व 'सब सू, 'सब मे' आदि अपादान एव अधिकरण परसग युक्त पद जोड कर व्यक्त किया जाता है। यथा—

1 ई सबसू बडी चीज है हू ए। 2 वार्यासिह सब मेवन मे सरस। बोली)

☐ सार्वनामिक विशेषण—

पुरुषवाचक और निजवाचक सवनामो का छोडकर शेष सभी सवनाम वस्तुतः विशेषण हैं। मेवाती सार्वनामिक विशेषण ओकारान्त होते हैं। इनके रुप सज्ञा के लिंग वचन और कारक के अनुसार परिवर्तित होते रहते है। मेवाती मे मूल सार्वनामिक विशेषण निम्न प्रकार है—

1-परिमाण वाचक, और

2-गुण वाचक।

1-परिमाण वाचक विशेषण निम्नलिखित हैं—

(क) इतनो इतना (कही-कही इतेक येते)—मेवाती के समान व्रज मे इतनो इत्तो, कन्नौजी मे इतनो मारवाडी मे इतरो गढवाली मे इतना' प्रयुक्त होते हैं। इनकी व्युत्पत्ति स० इयतक > प्रा० एतिग्र एतग्र > इता, इतना से हुई है।[1] इसमे प्रयुक्त 'ना' को बीम्स महोदय लघुता का सूचक प्रत्यय मानते हैं।[2] डा० हार्नली[3] एव वर्मा[4] इनका सम्बन्ध स० इयत् से जोडते हैं। येते का सम्बन्ध स० इयत् > प्रा० एत्तिए, एत से है। मेवाती मे इनका प्रयोग इस प्रकार होता है—

1 ईतनी बात गदन सू भई अलवर गढ क पास। ला नु)

2 इतनी बात सईम काने राजा के लडके कही। (मैक्लिस्टर)

3 इतनी खं के व् म्हर एक खूट पै अपनी नाड फुलाकर बैठगो (बो)

4 इतनी खं के मुरग नैं बाँग मारी। 5 इतने म श्रागो गादड। (बोली)

(ख) उतनो—'उतनो की उत्पत्ति उ म-तक > तिग्र, तग्र, ता > तनो (नो' प्रत्यय लगाकर) आदि मे हुई है। इसका प्रयोग दृष्टव्य है—

उतनो ही ढमलो भर लियो। (वाली)

(ग) जितनो, जेते—आधुनिक मेवाती मे जितनो तथा प्राचीन मेवाती मे जेते जितना अर्थ मे प्रयुक्त होते हैं। जितनो का प्रयोग कन्नौजी 'जतनो' तथा ब्रजभाषा जितनो के समान है तथा जेते का प्रयोग उडिया जेते, बगाली जेतेक के समान है। मारवाडी मे 'जतरो' प्रचलित है। इसकी उत्पति स यनिक (यावत्) > प्रा० जेतिम से सभव है। यथा—जितनो हो उतनो दे दिये।

(घ) कितनो (कितना कितनी, कितनै), कितेक (केता, केते)—

कन्नौजी मे कितनो, ब्रज मे कितनौ, मारवाडी मे कतरो, गढवाली कतुना मराठी केतेक, मैथिली कतेक, उडिया 'केते' के समान आधुनिक मेवाती मे 'कितनो' तथा प्राचीन मेवाती मे कितेक' सर्वनामिक विशेषणो का प्रयोग होता है। इनकी उत्पत्ति स० कियत्तक (कियत्) > प्रा० केतिम से हुई। प्रथम मे—नो लघुता का सूचक है तथा दूसरे मे स० का 'क' सुरक्षित है। इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं—

1 कितनो सारो नाज को थोडो सोई दियो। (बोली)
2. कितना पैसा लग जावेगा। (बोली
3 कितने बाग जहान मैं भीक जी लग लग सूक गये। (भीव)

2—गुणवाचक सार्वनामिक विशेषण निम्नलिखित हैं—

(क) ऐसो (ऐसा, ऐसी, ऐसे)— मेवाती मे यह सार्वनामिक विशेषण आधुनिक और प्राचीन दोनो मे समान ही है। केवल अन्तर-लिखने मे आता है। आजकल 'ऐसो' लिखते है, जबकि प्राचीन साहित्य म 'अ‍ैसो' देखने को मिला है। उच्चारण की दृष्टि स कोई अन्तर नही है। मेवाती के अतिरिक्त कन्नौजी मे ऐसो, ब्रज० के ऐसो, मारवाडी मे इस्यो, अहीरवाटी मे इस्यो, नेपाली मे अ‍ैसो आदि प्रयुक्त होते हैं। इसकी उत्पत्ति स० इदृश > अपभ्रंश अइस, अस्सो (मारवाडी इस्यो) से हुई है। मेवाती मे इसक उदाहरण इस प्रकार मिलत हैं—

1 हुकुम खुदा को ऐसो हुओ वाका सिर जुड़गो (बोली)
2. ऐसी कहा सिताबी है ? (बोली)
3 उनका ऐसा साचा दीन। 4 अ‍ैसैं हरिचन्द हर भजें। (ला नू)

(ख) वैसो (वैसे)—कन्नौजी वैसो' ब्रज० वैसो, मारवाडी उस्यो के समान मेवाती मे 'वैसो' सार्वनामिक गुणवाचक विशेषण का प्रयोग होता है। इसकी उत्पत्ति काल्पनिक स० तत् के प्रथमा के एक वचन 'स' से जिस तरह 'ओ' अथवा 'वह' की व्युत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार वैसा का सम्बन्ध 'तादृश' से है।[5] मेरे विचार मे स० अोतादृग > अप० ओइस, ओइसो से 'वैसो' की उत्पत्ति सभव है। इसका प्रयोग इस प्रकार होता है—

1 मोनू ऐसो-वैसो मा समझ । (बोली)
2 *वैसे को वैसे ई मालामाल हो गयो ।* (बोली)

(ग) जैसो—यह स० यादृश > अप० जइस, जइसो, जैसो से व्युत्पन्न है। कन्नौजी मे जैसो, ब्रज० जैसो, जैसौ मारवाडी जिस्यो आदि इसी की तरह व्युत्पन्न हैं। इसके उदाहरण इस प्रकार मिलते हैं—

1 *जैसो मन मे तू बर्णो ऐसो ही हो आप ।* (बोली)
2 जैसा हथना पर पाण्डू लड़ा । (बोली)
3 मिन्तर ऐसो कीजियो जैसे जगल मे को रूख । (बोली)

(घ) कैसो—इसकी उत्पत्ति स० कीदृश > प्रा० कीइस > अप० कइसो से सभव है। कन्नौजी का कैसो, ब्रज० कैसो, मारवाडी किस्यो भी इसी प्रकार व्युत्पन्न है। मेवाती मे इसके उदाहरण देखिए—

1 कैसो-कैसो हुयो कैसो-कैसो ना हुयो । (बोली)
2 कैसे जाऊ मिलण कू मेरो मुलक पान सौ मील । (बोली)
3. वाजरो तो देखो जसपाल के कैसो भारी हुयो । (बोली)
4 कैसो हा तू जोधिया कैसो हा बलवान । (बोली)

▭ संख्यावाचक विशेषण

मेवाती के सख्यावाचक विशेषणो का वर्गीकरण[6] हम निम्न प्रकार कर सकते हैं—

सख्यावाचक विशेषण
- निश्चित सख्यावाचक
  - गणना वाचक
    - पूर्णांक बोधक
    - *अपूर्णांक बोधक*
  - क्रम वाचक
  - आवृत्ति वाचक
  - समुदाय वाचक
  - प्रत्येक बोधक
- अनिश्चित सख्यावाचक
- परिणाम बोधक

इन सख्यावाचक विशेषणो की व्युत्पत्ति एव विकास निम्न प्रकार से प्रस्तुत *किया जा सकता है—*

1. निश्चित संख्यावाचक—

(क) गणनावाचक – गणना वाचक विशेषण दो प्रकार के होते हैं—पूर्णांक बोधक एव अपूर्णांक बोधक।

मेवाती के प्राय: सभी पूर्णाङ्क बोधक संख्यावाचक विशेषण संस्कृत के उन्हीं विशेषणों से व्युत्पन्न हैं। मेवाती मे ये शब्दों एव अंकों दोनों में लिखे जाते हैं। यहाँ हम पूर्णाङ्क बोधक संख्यावाचकों की व्युत्पत्ति देते हैं। पहले मेवाती रूप फिर प्राकृत – अपभ्रंश रूप तथा बाद मे संस्कृत रूप क्रमश दिया गया है—

1. एक (येक) < यक, एक्क, < एक (2) दो, दोय < दो < द्वौ
3. तीन < तिण्णि, तिण्णि < त्रीणि (4) चार, च्यार < चारि, चत्तारि < चत्वारि
5. पाच (पान, पान) < पण्ण, पच, पञ्च > पञ्च
6. छं < छ < षष् (षट्) (7) सात < सात, सत < सप्त
8. आठ (आट) < अट्ठ < अष्ट
9 नौ (नो, नौ) < नउ, नय, णव < नव (10) दस < दस दह, रह < दश
11. ग्यारह, ग्यारा < एगारह, एग्गारह < एकादश
12. बारह, बारे, बारै < बारह, बारस < द्वादश
13. तेरह, तेर < तेरह तेरस (गु० तेर) < त्रयदश (त्रयोदश)
14. चौदह < चउद्दह < चतुर्दश
15 पदरहे, पदरह, पन्दरा < पण्णारह, पणरह < पञ्चदश
16 सोला, सोलह < सोलह, सोरह < षोडश (षट्दश)
17. सतरह < सत्तरह < सप्तदश
18 अठारे, अठारह < अट्ठारह अट्ठ ह < अष्टादश
19. गुनीस, गुन्नीस, गुन्नी < एगूणवीस < अपगुणविंशति
(प्रा० मा० व्या० पिशल, अनु० 444)
20. बीस < बीस (बीसअ, बीसई) बीसइ < विंशति
21 ईकीस, इक्कीस < एकवीस, एकवीसई < एकविंशति
22. बाइस < बावीस, बावीस < द्वाविंशति
23 तेइस < तेवीस, तवीस < त्रयोविंशति
24. चोबीस < चौविस, चउव्वीस, चउवीस चउवीसइ < चतुर्विशति
25. पचीस < पचीस, पञ्चवीस < पञ्चविंशति
26 छबीस < छव्वीस, छव्वीस, छहवीस < षड्विंशति
27. सत्ताईस < सत्ताईस < सत्ताईसा, सत्तावीस, < सप्तविंशति
28. अठाईस < अट्ठ इसमो, अट्ठावीसा, अट्ठावीस < अष्टाविंशति

29 उणत्तीस उणती, गुणनीस < अउणनीस, एगुनतीसा < ऊनत्रिंशत्, एकोनत्रिंशत्

30 तीस < तीसा, तीसम < त्रिंशत्

31 इकती, इकतीस < एकत्रीस, एकतीसा, एक्कतीसम < एकत्रिंशत

32 बत्ती, बत्तीस < बत्तीस, बत्तीसा < द्वात्रिंशत्

33 तैंती, तैंतीस < तेत्तीस, तेतीसा < त्रयस्त्रिंशत्

34. चोंती, चोंतीस < चउतीस. चौंतीस < चतुस्त्रिंशत्

35 पैंती, पैंतीस < पाँत्रीस, पन्ततीस पणतीस < पञ्चत्रिंशत्

36 छत्ती, छत्तीस < छत्रीस, छत्तीस. छत्तीसा < षटत्रिंशत्

37 सैंती, सैंतीस < सत्तीस सत्तीसा, सत्ततिसति < सप्तत्रिंशत

38 अडती, अड़तीस < अट्ठत्रीस, अट्ठतीसा, अट्ठवीस, अट्ठतीस, अट्ठतिसति < अष्टात्रिंशत्

39. उन्ताली, उन्तालीस < उनचतालीसा, एगुनचालीस, एगूणचत्तालीस, एगूनचत्तालीसति < ऊनचत्वारिंशत्

40 चाली, चालीस < चालीस, चत्तालीस < चत्वारिंशत्

41 इकताली, इकतालीस < एक्कचतालीस, एक्कचतालीसा < एकचत्वारिंशत्

42. बियाली, बियालीस < बायालीस, बितालीस, बइतालीस < द्विचत्वारिंशत्

43 तियाली, तियालीस < तेआलीसा < त्रिचत्वारिंशत्

44. चौवाली, चौंवालिस < चउआलीस, चोआलीस, चोयालीसहु < चतुश्चत्वारिंशत्

45 पैंताली, पैंतालीस < पचितालीस, पचतालीसहिं, पन्नचतालीसा < पञ्चचत्वारिंशत्

46 छियाली, छियालीस < छयालीस, छहइतालीस, छयायालीस, छच्चतालीसा < षट्चत्वारिंशत्

47. सैंताली, सतालीस < सततालीस, सत्तालीसा < सप्तचत्वारिंशत्

48 अडताली, अडतालीस < अठतालीस, अट्ठचत्तालीस < अष्टचत्वारिंशत

49 गुनचास, उणनचास, उणनचा < उगुणपचास, ऊणवचासा ऊणवचासा < ऊनपचाशत्

50 पचास < पचास, पचासा < पञ्चाशत्

51 इकावन < एक्कावण्ण < एकपञ्चाशत्

52. बावन < बावण, बावण्ण < द्वापचाशत्

53 तिरपन < त्रिप्पण, तेवण < त्रिपञ्चाशत्

54 चौपन < चोपण, चउप्पण < चतुःपचाशत्

55 पचपन > पचावन, पण-पण्णास, पचापण्ण < पचपञ्चाशत्

56 छप्पन < छप्पन, छप्पण < षट्पञ्चाशत्

57 सतावन < सतावण्ण < सप्तपञ्चासत् 58 अठावन < अट्ठवण्ण < अष्टपचाशत्

59 उणसठ, गुणसठ, गुणसट < एगुणसट्ठि, अउणट्ठि < एकोनषष्टि, ऊनषष्टि

60 साठ < सट्ठि, सट्ठ < षष्टि 61 इकसठ < इगसट्ठि < एकषष्टि

62 बासठ < बासट्ठि < द्वाषष्टि 63 तिरसठ < तेसट्ठि, तिरसट्ठि < त्रिषष्टि

64. चौंसठ < चोसट्ठि, चौसट्ठि चउसट्ठि < चतु षष्टि

65 पैंसठ < पइसटिठ पणसट्ठि < पचषष्टि

66 छियासठ < छावट्ठि < षट्षष्टि 67 सड़सठ < सत्तसट्ठि, सत्तसट्ठी < सप्तषष्टि

68. अड़सठ < अट्ठसट्ठि, अट्ठसट्ठि < अष्टषष्टि

69 गुणत्तर < एगूणसत्तरि, अउणत्तरि < एकोनसप्तति, ऊनसप्तति

70 सत्तर < सत्तरि < सप्तति

71 इकहत्तर, इकत्तर < एहत्तरि, एक्कहत्तरि, एक्कसत्तरि, एक्कसत्तरि < एकसप्तति

72. बहत्तर, बहत्तर < बाहत्तरि, बहत्तरि < द्वासप्तति

73 तिहत्तर, तिहत्तर < तेवत्तरि तेहत्तरि < त्रिसप्तति

74. चौहत्तर, चौहत्तर < चउहत्तरि < चतु सप्तति

75 पिचॅत्तर, पिचेत्तर < पञ्चहत्तरीए, पन्नतरि < पञ्चसप्तति

76 छियत्तर, छियतर < छहुत्तर, छावत्तरि < षट्सप्तति

77 सतत्तर, सतत्तर < सतहत्तरि < सतसत्तरि < सप्तसप्तति

78. अठत्तर, अठत्तर < अट्ठहत्तरि, अट्ठत्तरी < अष्टसप्तति

79 गुणासी उणासी < एगुणासीई, उणासीअइ, उणासी < एकोनाशीति
ऊनाशीति । 80 अस्सी < असि, असीइ < अशीति

81. इक्यासी < एक्कासीई, एक्कासीई < एकाशीति

82. बियासी < बेयासी, बासीइ < द्व्यशीति

83 तिरासी < तेसीई, तेयासीए < त्र्यशीति

84 चौरासी, चौरासी < चोरासी, चउरासी, चउरासीइ < चतुरशीति

85. पिच्चासी < पचासी, पञ्चासीइ < पञ्चाशीति

86 छियासी < छयासीइ < षड्शीति 87 सत्तासी < सत्तासीइ < सप्तशीति

88 अठासी < अट्ठासी, अट्ठासीइ < अष्टाशीति

89 नवासी < ऊनासीइ < नवाशीति, एकोन-नवति

90 नब्बे < नउए, नउइ < नवति

91 इक्याणवे, इक्यानवे < एक्काणउइ < एकनवति

92 बाणवे, बाणवे < बाणउइ < द्वानवति

93 तिरानवे, तिराणवे < तेणउइ < त्रिनवति

94 चौरानवे < चउणउइ < चतुर्नवति 95 पिचाणवे < पञ्चणउइ < पञ्चनवति

96. छियाणवे, छ्याणवे > छण्णावइ, छण्णउइ < षण्णवति

97. सनणवे < सत्ताणउइ < सत्तानउए < सप्तनवति

98. अठणवे < अट्ठाणउइ < अष्टनवति

99 निन्नणवे, निणानवे < णवणउयइ < नवनवति

100 सौ, सैं < सउ, सअ सय < शत 1000 हजारे < फारसी हजार'

100000. लाक्, लक्ख, लाख < लक्ख < लक्ष

10000000. किरोड < कोडी, कोड < कोटिः

1000000000. अडव < अर्बुद 100000000000. खडव < खर्व

मेवाती मे प्राय: सभी सख्यावाचक शब्द प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा से सम्बन्धित हैं। प्राकृत एव अपभ्रंश के कारण हुए परिवर्तन भी स्पष्ट लक्षित होते हैं। डा० चटर्जी इन विशेषण पदो पर पालि के प्रभाव को मानते हैं, जिससे सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं मे साम्य पाया जाता है। कुछ स्थानीय रूप अपवाद स्वरूप माने जा सकते हैं।[7] मेवाती मे अरबी-फारसी जैसी अन्य भाषाओं से सम्बन्धित सख्यावाचक विशेषण अत्यल्प, न के बराबर प्रयुक्त हुए हैं। सख्यावाचक विशेषणों की सर्वाधिक प्राचीन ऐतिहासिक व्याख्या बीम्स ने की है। इसके बाद केलाग, डा० चटर्जी, डा० धीरेन्द्र वर्मा, उदयनारायण तिवारी, बाबूराम सक्सेना आदि विद्वानो ने अपने-अपने ग्रन्थो मे की है। इन विद्वानो के मतो के प्रकाश मे मेवाती के सख्यावाचक विशेषणों एवं उनमे होने वाले परिवर्तनो पर निम्न प्रकार से प्रकाश डाला जा सकता है—

एक— सस्कृत तत्सम रूप 'एक' का ही मेवाती मे भी प्रयोग होता है। 'य' श्रुति के कारण इसका उच्चारण 'येक' भी किया जाता है। 'येक' उच्चारण मे फारसी 'यक' का प्रभाव भी देखा जा सकता है। जैसे—

1. एक मेवणी पालो काट री हो। 2. येक छलबली नायण हो। (बोली)

अन्य सख्यावाचक विशेषणों के साथ मिलकर 'एक' का 'इक' हो जाता है। ऐसा ही हिन्दी मे भी होता है। इसका कारण विवृताक्षर मे स्वराघात की निर्बलता मानी जाती है।[8] इससे स्पष्ट है कि 'ए' गुणध्वनि मूल ध्वनि है तथा 'इ' मूल स्वर गुण ध्वनि के विकार के कारण हुआ है। जैसे—इक्कीस, ईकीस, इक्ती, इक्तीस, इक्तालो, इक्तालीस, इकावन, इकसठ, इकहत्तर, इकासी, इक्याणवे, इक्यानवे। 'ग्यारह' या 'ग्यारा' मे 'ए' गुणध्वनि का लोप हो जाता है तथा 'क' का 'ग' में परिवर्तन हो जाता है। डा० तिवारी इस पर अर्द्धमागधी 'ग' का प्रभाव मानते हैं।[9] डा० वर्मा ने इसे प्राकृत रूप 'एगा' से प्रभावित मानते हुए 'क' का घोष

रूप हो जाना माना है।[10] कुछ विद्वान इसे किसी प्रचलित प्राकृत का रूप भी मानते हैं लेकिन इस मत की अन्य किसी तर्क से पुष्टि नहीं होती।

दो दो' का विकास स० 'द्वौ' से हुआ है। कहीं कहीं दोय का भी प्रयोग होता है। सयुक्त सख्याओं मे दो का ब, बा, तथा बि मे परिवर्तन हो जाता है, जिन्हें क्रमश स० द्व द्वा, द्वि से विकसित माना जा सकता है। 'द्' का लोप होकर व का द्वित्व हो जाता है जिससे व, बा बि व्युत्पन्न होते है। अप०, मराठी, गुजराती म द्वे से बे तथा मारवाडी म बि 'द्वि' से बनते है। जैसे—(12) बारह, बारे बारे (ह का लोप) (22) बाइस (32) बत्ती बत्तीस (42) बियाली, बियालीस, (52) बावन, (62) बासठ 72) बहनर, बहतर (42) बियासी, (92) बराणे बराणे।

तीन—तीन' की व्युत्पत्ति प्राकृत अपभ्र श तिण्णि सस्कृत नपु० त्रीणि से हुई है। प्राकृत रूप तिण्णि की उत्पत्ति किसी तीणि सभावित रूप से हुई हैं। अत स० नपु० त्रीणि > सम्भावित रूप तीणि > प्रा० तिण्णि से तीन व्युत्पन्न है। सयुक्त सख्यावाचक शब्दो के साथ तीन ते (जैसे–तेरह, तेरे (ह का लोप > त्रयदश (त्रयोदश), तेइस< त्रयोविंशति, तेती, तेतीस< त्रयस्त्रिंशत्) ति (जैसे — तियाली, तियालीस< त्रिचत्वारिंशत, तिहतर < तिहतर < त्रिसप्तति) तथा तिर (जैसे—तिरपन< त्रिपचाशत, तिरसठ< त्रिषष्टि–तिरासी< त्र्यशीति, तिरणवे< त्रिनवति) रूप हो जाता है। इनमे 'ते' 'ति' रूप त्रय से तथा तिर रूप त्रि से विकसित हुआ है। बीम्स महोदय ने तिर के र की स्थिति उच्चारण सौकर्य या मुख-सुख (Euphonic) के कारण मानी है।[11] जबकि केलाग महोदय इसे मूल सस्कृत त्रि का ही रूप मानते हैं। जैसा कि चौरासी मे सस्कृत चतुर् का र अवशिष्ट है।[12]

चार—चार' की उत्पत्ति सस्कृत नपु० रूप चत्वारि > प्रा० चत्तारि > अप० चारि स हुई है। इसका एक रूप 'च्यार' भी प्रचलित है जो सभवत पुरानी हिन्दी के 'च्यारि' के रूप का प्रभाव है। अन्य सख्यावाचक विशेषणो म इसके चो, चौ, चो (यथा—चौदह< चतुर्दश चौबीस, चौविस< चतुर्विंशति चौंती चौंतीस< चतुस्त्रिंशत, चौंवाली, चौवालीस< चतुश्चत्वारिंशत् चोपन< चतु पचाशत चौंसठ < चतु षष्टि, चोहत्तर चौहतर < चतु सप्तति, चौर, चोरासी, चौरासी< चतुरशीति, चौरणवे < चतुर्नवति) रूप प्रयुक्त होते हैं जिनकी उत्पत्ति सस्कृत रूप चतुर्दश के र के प्रभाव से सभव है। इसमे उ का लोप हो गया। चौरासी और चोरणवे मे र' मुखसुख से नहीं अपितु सस्कृत चतुर' जिसका प्राकृत म चउरा बनता है, म कारण है।

पांच—(पान, पान)—'पाच' के लिए मेवाती मे पाच < प्रा० पंच < स० पञ्च का प्रयोग होता है। कभी-कभी पान, पान का भी प्रयोग किया जाता है। सख्यावाचक शब्दो के अन्य रूपो के साथ इसके पन, पच, पै, पन, पिच रूप प्रयुक्त होते हैं। यथा—पंदरह, पन्दरा < पञ्चदश, पचीस < पञ्चविंशति, पैंती, पैंतीस < पञ्चत्रिंशत्, पैंताली, पैंतालीस < पञ्चत्वारिंशत्, पचपन < पञ्चपचाशत, पैंसठ < पचपष्टि, पिचेन्तर, पिचेत्तर < पञ्चसप्तति, पिच्यासी < पञ्चाशीति, पिचणवे < पञ्चनवति, पानसै < पचशत, इक्यावन बावन, चौवन, सत्तावन, अठावन आदि मे 'पन' का 'वन' हो जाता है। इन रूपो की व्युत्पत्ति प्राकृत पण्ण से हुई है। पिच्यासी मे 'य' श्रुति से आया है।

छै—मेवाती मे 'छै' का सम्बन्ध षष (षट्) > प्रा० 'छ' से है। यह स्पष्ट ही प्राकृत रूप छ' से व्युत्पन्न है।[13] लेकिन विद्वान अभी तक इस निष्कर्ष पर नही पहुँचे हैं कि 'ष' का 'छै' कैसे हो गया, जबकि सोला, सोलह < षोडश, साठ > षष्ठी मे 'ष' ध्वनि के निकट की ध्वनि उपस्थित है। अन्य सख्यावाचक विशेषणो जैसे—छब्बीस, छत्ती (छत्तीस छियाली (छियालीस), छप्पन, छियासठ, छियन्तर, छियासी, छियाणवे, छ्याणवें आदि मे 'छै' के विभिन्न रूपो-छिया, छिय, छ्या का प्रयोग किया जाता है 'य' श्रुति के कारण है। डा० चटर्जी ने इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे सभावना व्यक्त की है कि सस्कृत के किसी काल्पनिक रूप 'क्षव्' या 'क्षक्' से हुई है।[14] परन्तु फिर भी म० भा० आ० भाषाओ के पहले की भाषा मे यह शब्द अप्राप्य है।

सात – सस्कृत सप्त > प्रा० सत > अप० सात से व्युत्पन्न है। अन्य *सयुक्त सख्याओ मे यथा—सतरह, सताईस, सत्ताईस, सैंती, सैंतीस, सैंताली,* सतावन, सड़सठ, सतन्तर, सतत्तर, सत्तासी, सतणवे—मे इसके सत, सत, सै, सड़ आदि रूप प्रयुक्त होते हैं। पैंतीस के अनुकरण पर सैंतीस या सैंतालीस के 'सैं' मे अनुनासिकता आ गई है। 'सड < सप्त को डा० वर्मा एव तिवारी 'अड़सठ' के 'अड' के सादृश्य के कारण मानते हैं। लेकिन यह उपयुक्त नही जान पडता। कारण कि सस्कृत के दन्त्य वर्ण प्राकृत मे बहुधा मूर्धन्य हो जाते हैं। इसकी उलटी ध्वनि प्रक्रिया जिसमे मूर्धन्य वर्ण प्राकृत बोलियो मे दन्त्य बन जाते हैं, प्रमाण देती है कि इसका सबध विभिन्न प्राकृतों के उच्चारणों से है।[15] अत. मेरे विचार से प्राकृत भाषा (मागधी) मे सप्त के सत रूप के साथ और कालानिक रूप सड भी चलता रहा होगा। जिससे सड रूप स्पष्ट हो जाता है। प्राकृत मे 'त' के 'ड' मे परिवर्तित होने के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। यथा-प्रतिभा > पडिमा, प्रतिपूर्ण > पडिपुण्ण, प्रतिपक्ष > पडिवक्ख, पतति > पडइ, पततु > पडउ,

पतित > पडिग्र, पताका > पडाग्रा ग्रादि।[16] ग्रत 'सड' रूप न तो ग्रसाधारण है ग्रौर न सादृश्य के कारण उच्चरित, ग्रपितु यह स० सप्त > प्रा० मागधी सड का विकसित रूप है।

ग्राठ – मेवाती ग्राठ स० ग्रष्ट > प्रा० ग्रट्ठ से विकसित हुग्रा है। 'ग्राठ' के ग्रतिरिक्त कहीं-कहीं 'ग्राट' भी सुनने मे ग्राता है। 'ग्राट' का प्रयोग बगला एव दक्खिनी हिन्दी म भी मिलता है। दक्खिनी में यह सभवत मेवाती का ही प्रभाव है। इसके ग्रन्य सख्यावाचक रूप ग्रठा (यथा– ग्रठारे, ग्रठारह, ग्रठाईस, ग्रठावन, ग्रठासी) ग्रठ (यथा–ग्रठत्तर, ग्रठन्तर, ग्रठणवे) तथा 'ग्रड' (यथा–ग्रडनी, ग्रडतीस, ग्रडतालीस, ग्रडसठ) होते हैं। 'ग्रठ' मे 'ग्रड' बना है। प्राकृत मे 'ट' का 'ड' तथा 'ढ' हो जाता है।[17] ग्रत ग्रष्ट का एक रूप 'ग्रड' या 'ग्रढ' बना जिससे 'ग्रड' स्पष्ट है। डा० वर्मा एव तिवारी इसे ग्रस्पष्ट एव ग्रसाधारण परिवर्तन मानते हैं।

नौ—नो नौ–'नो' की व्युत्पत्ति स० नव > प्रा० णग्र, नग्र, नउ से हुई है। इसके 'नो' तथा नौ' रूप भी देखन में ग्राते हैं। ग्रन्य सख्याग्रों के साथ इसके गुन, उण, नव, निग्न रूप प्रयुक्त होते हैं। गुन, उन, उण की व्युत्पत्ति ऊन तथा 'एकोन' (एककम) से हुई है। नव तत्सम है। निग्न रूप की उत्पत्ति ग्रस्पष्ट है। जैसे—गुन्नीस, उणत्ती, गुणत्तीस, उन्तालीस, गुनचास, उगुनचास, उणसठ, गुणन्तर, गुणासी, उणासी, निन्नणवे।

दस—'दस' स० दश > प्राकृत दस मे ग्राया है। परन्तु इसके कुछ ग्रन्य प्राकृत रूप–दह, रह, लह, ग्रन्य सख्यावाचक विशेषणों जैसे—ग्यारह, बारह तेरह, चौदह, पदरह, सोलह, सतरह, ग्रठारह ग्रादि मे प्रयुक्त होते हैं। इन सख्याग्रों का एक रूप महाप्राण उष्म ध्वनि 'ह' से रहित भी प्रचलित है। केलाग महोदय के ग्रनुसार दश का 'द' ही 'र' बना तथा बाद मे वही 'ल' बन गया।[18] स' का 'ह' बन जाना स्पष्ट है।

बीस - 'बीस' का विकास प्रा०, मा० ग्रा० भाषा सस्कृत के 'विंशति' > प्रा० बीसइ, वीसग्र–से हुग्रा है। कुछ विद्वान बीस की उत्पत्ति त्रिंशत (तीस) के ग्रनुकरण पर मानते हैं।[19] ग्रन्य सख्याग्रों के साथ इसकी ग्रोष्ठ्य ध्वनि का लोप हो जाता है। ग्रतः बीस के स्थान पर 'ईस' या 'इस' का प्रयोग किया जाता है। यथा—इकीस, इक्कीस, बाइस, तेइस, पचीस, सत्ताईस, ग्रट्ठाईस, ग्रठाईस। केवल मात्र 'चौबीस' एव छब्बीस मे 'बीस' रूप प्रयुक्त होता है। 'उन्नीस' के लिए भी 'ईस' रूप ही प्रयुक्त होता है।

तीस—सं० 'त्रिशत' > प्रा० तीसा, तीसग्र से मेवाती एवं हिन्दी के 'तीस' सख्यावाचक विशेषण की व्युत्पत्ति हुई है। अन्य सख्यावाचक विशेषणो के साथ इसका 'ती' या सी तथा 'तीस' रूप प्रयुक्त होता है। यथा— इकत्ती इकतीस, बत्ती बत्तीस, तेत्ती, तेतीस, चौत्ती, चौत्तीस, पैंती, पैंतीस, छत्ती, छत्तीस, सैंती सैंत्तीस, ग्रडती ग्रडतीस। उननीस के लिये प्रयुक्त उणती, उणत्तीस मे भी यही रूप देखा जाता है।

चालीस -'चालीस' के लिए 'चाली' या 'चालीस' विशेषणो का प्रयोग होता है। इसकी व्युत्पत्ति सं० चत्वारिंशत् > प्रा० चत्तालीसा ग्रप० चालीस से हुई है। चत्वारिंशत् के 'र' का 'ल' मे परिवर्तन इस बात की पुष्टि करता है कि यह प्राच्य प्राकृत मे प्रचलित हुग्रा है। ग्रन्य सख्यावाचक विशेषणो मे इसके ताली या तालीस, वाली या वालीस, याली या यालीस रूप प्रयुक्त होते है, जिससे सिद्ध होता है कि सं० चत्वारिंशत् के र का प्राकृत मे 'ल' होकर चत्तालीसा रूप से बने चालीस के 'च' का लोप होने से उसके स्थान पर 'ता' 'वा' तथा 'या' का ग्रागम हो गया है। यथा—उनताली, उनतालीस, इकताली, इकतालीस, बियाली बियालीस, तियाली, तियालीस, चौवाली, चौवालीस, पैंताली, पैंतालीस, छियाली, छियालीस, सैंताली, सैंतालीस, ग्रडताली, ग्रडतालीस।

पचास—मेवाती पचास, < प्रा० पचास < सं० पचाशत् से व्युत्पन्न है। इसके ग्रन्य सयुक्त सख्यावाचक रूपो मे 'पचास' के ग्रन्य प्राकृत रूप 'पन्ना' 'पण्ण' से व्युत्पन्न पन' एव 'वन' रूप प्रयुक्त होते हैं। यथा—इकावन, बावन, तिरपन, चौपन, पचपन, छप्पन, सत्तावन, ग्रठावन। केवल गुनचास या उणन्चास मे 'प' का लोप हो गया है।

साठ—इस विशेषण की व्युत्पत्ति सं० षष्टि > प्रा० सट्ठि, सट्ठ से हुई है। ग्रन्य सख्याग्रो मे प्राकृत रूप 'सट्ठ' से उत्पन्न 'सठ' रूप प्रयुक्त होता है। यथा—उणसठ या गुणसठ, इकसठ, बासठ, तिरसठ, चोसठ, पैंसठ, छियासठ, सडसठ, ग्रडसठ।

सित्तर—इसकी उत्पत्ति सं० सप्तति > प्रा० सत्तरि से हुई है। सितर मे प्रयुक्त 'र' प्राकृत की देन है। विद्वानो का विचार है कि सस्कृत के दन्त्य द, त का प्राकृत मे 'र' हो जाता है।[20] यद्यपि पालि मे सत्तति रूप मिलता है। इससे डा० चटर्जी इसे ति-टि-डि-रि विकसित मानते हैं।[21] परन्तु ग्रन्य विद्वान इस व्युत्पत्ति से सतुष्ठ नही प्रतीत होते। वस्तुत प्राकृत सत्तरि < सप्तति मे त, ड होकर र बन जाता है। द्वित्य व्यजन त्त की ग्रवस्थिति विद्वान पजाबी प्रभाव के कारण मानते हैं, जो उचित नही। यह तो प्राकृत से ही प्राप्त

हुआ है। संयुक्त संख्याओं मे 'स' का 'ह्' मे परिवर्तन माना गया है। परन्तु मुझे यह भी उचित नहीं जान पड़ता। कारण कि प्राकृत मे ही हमे हत्तरि रूप प्राप्त होता है।[22] अत मेवाती के इकहत्तर, बहत्तर, तिहत्तर, चौहत्तर रूपों के मूल मे प्राकृत रूप हत्तरि ही है। शेष पिचेतर, छियत्तर, सतत्तर, अठत्तर रूपों मे 'ह' का लोप हो गया है। साथ ही 'त्तर' रूप भी प्रचलित हैं, जिसका विकास प्राकृत के 'अत्तरि' रूप से हुआ है। यथा—गुणत्तर, इकत्तर, बहत्तर, तिहत्तर, चौहत्तर, पिचेतर, छियत्तर, सतत्तर, अठत्तर।

अस्सी—इसकी व्युत्पत्ति सं० अशीति > असीइ, असि से हुई है। अन्य संयुक्त संख्याओं मे इसके 'आसी' एवं 'यासी' रूप प्रयुक्त होते हैं। यथा—गुणासी, इकासी, बियासी, तिरासी, चौरासी, पिच्यासी, छियासी, सत्तासी, अठासी नवासी। 'अस्सी' म प्रयुक्त द्वित्व व्यजन 'स्स' में पजाबी प्रभाव स्पष्ट है।

नब्बे—यह स० नवति > प्रा० नउइ, नउए से व्युत्पन्न है। कुछ विद्वान इसे प्राकृत के 'नव्वए' रूप से व्युत्पन्न मानते है परन्तु हमे प्राकृत मे ऐसा कोई रूप देखने मे नहीं मिलता है। 'व' का 'ब' हो गया है, द्वित्व व्यजन 'ब्ब' मे पजाबी प्रभाव है। अन्य संख्याओं मे इसका 'णवे' तथा कहीं-कहीं 'नवे' रूप प्रयुक्त होता है, यथा—ईकणवे, इकानवे, बाणवे, तिरणवे, चौराणवे, पिचणवे, छियाणवे, छयाणवे, सतणवे, अठणवे, निन्नणवे। तिरानवे के लिए त्रिणा रूप भी प्रयुक्त होता है।

सौ, सै—सौ के लिए मेवाती मे सौ या सैं का प्रयोग किया जाता है। इनमे सौ की उत्पत्ति स० शत > प्रा० सय > अप० सउ से हुई है तथा सैं की उत्पत्ति स० शत > प्रा० सय से हुई है। अपवाद स्वरूप सो का भी प्रयोग हुआ है। संयुक्त संख्याओं मे भी सैं रूप का प्रयोग होता है। जैसे—

1. मेरी दो सै की तरवार नगद हा सत्तर तेरे। (बोली)
2. सतरह सै र सत्तासिया बरस बीतगा बीस। (बोली)

हजार—मेवाती मे हजार के लिए 'हजार' या 'हजारै' का प्रयोग होता है। यह फारसी के 'हज़ार' का तत्सम रूप है। यह मुस्लिम प्रभाव से समस्त उत्तरी भारत में प्रचलित है।

लाख—'लाख' के लिए मेवाती मे 'लाक्' 'लक्ख' या 'लाख' का प्रयोग होता है। इसकी उत्पत्ति स० लक्ष > प्रा० लक्ख से हुई है। मेवाती मे इसका प्रयोग द्रष्टव्य है—

1. आखन आगे सायबो सखी मोलू ये ई लाक् किरोड । (बोली)

2. इच्छा होय भगवान की देवे लाख हजार । (बोली)

किरोड़—इसकी उत्पत्ति स० कोटि > प्रा० कोडि, कोडी, कोड से हुई है। विद्वानो का विचार है कि यह रुप स० कोटि को सस्कृत रूप देने की प्रवृत्ति के कारण बन गया है।[25] कुछ लोग इसे कोटि से मिलता जुलता गढा हुआ रूप मानते हैं।[24] वस्तुत स० कोटि के ट का ड बनकर र बन गया है तथा ओ, इ का स्थान परिवर्तन होकर ड का प्रत्यय की तरह का आगम हो गया है जिससे मेवाती का 'किरोड' बना है।

अड़ब - यह स० अर्बुद–से व्युत्पन्न है। जिसके 'द' का 'ड' होकर स्थान परिवर्तन हो गया है तथा उकार का लोप हो गया है। वैसे इसका कारण 'खडब' का सादृश्य भी कहा जा सकता है।

खड़ब – यह स० 'खर्ब' से व्युत्पन्न है। प्राय 'अडब–खडब' का प्रयोग असख्य सख्या बताने के लिए किया जाता है।

अपूर्णांक या भिन्नांक बोधक संख्यावाचक विशेषण—

इन विशेषणो से पूर्ण सख्या के किसी अंश का ज्ञान होता है। अपूर्ण सख्याएं प्राय: समस्त हिन्दी प्रदेश एवं दक्खिनी हिन्दी मे समान रूप से प्रयुक्त होती हैं। मेवाती की अपूर्णांकबोधक सख्याओं की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से हुई है।

पाव ($\frac{1}{4}$)—पाव की व्युत्पत्ति बीम्स सं० 'पादिक' से, केलाग एव तिवारी 'पाद' से, डा० वर्मा 'पादक' से मानते है। पाव < प्रा० पाउ, पाअ < सं० पाद।

चौथाई ($\frac{1}{4}$)—चौथाई < प्रा० चउत्थिअ < स० चतुर्थिक

तिहाई ($\frac{1}{3}$)—तिहाई < प्रा० तिहाइअ < स० त्रिभागिक

आधा ($\frac{1}{2}$ —आधो < प्रा० अद्धो < स० अर्द्ध.

प्राचीन मेवाती के आदा, आदे रूपो से महाप्राण ध्वनि का लोप हो गया है।

पौन ($\frac{3}{4}$)—पौण < अप० पाउण < प्रा० पाओन < स० पादोन (पाद+ऊन) तिर्यक रूपो में 'पोणे' का प्रयोग होता है। मेवाती मे प्रयोग—

बोलाको समझलो कोय पौण कोस। (बोली)

सवा ($1\frac{1}{4}$) सवा < प्रा० सवाअ < स० सपाद

जैसे—1. बैंहने तो मिले सवा सेर खाण ने। (मैविलस्टर)

डेढ (1½) —डेढ की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वानो के विभिन्न मत हैं। वेबर इसे सस्कृत 'अध्यर्ध' से, बीम्स एव वर्मा स 'द्वयर्द्ध' से केलाग अर्द्ध + द्वितीय' एव तिवारी स० 'द्वि-अर्द्ध' से व्युत्पन्न मानते हैं। पिशल महोदय द्विकार्ध से व्युत्पन्न मानते हैं। वस्तुत पिशल साहब का मत विचारणीय है। इस मत के प्रकाश में मेवाती के डेड या डेढ की व्युत्पत्ति इस प्रकार सभव है— स० द्विकार्द्ध > प्रा० दिवड्ढ > अप० दियड्ढ, दिअड्ढ-मेवाती डेढ, डेढ। यथा—

डेढ आना को लियायो। (बोली)

ढाई—ढाई < प्रा० अड्ढाइय, अड्ढाइज्ज < स० अर्द्ध-तृतीय।

बीम्स महोदय इसे स० 'अर्द्ध + द्वय' से व्युत्पन्न मानते हैं।[25] जो उचित नहीं जान पड़ता। क्योकि डेढ, ढाई आदि बनाने के लिए पहले अर्द्ध रूप उसके बाद जो सख्या बतानी हो उससे ऊचा अक रखा जाता है। अत. अर्द्ध + द्वय के स्थान पर अर्द्ध-तृतीया से ही ढाई की व्युत्पत्ति अधिक उचित है। इसका समर्थन 'प्राकृत कोश' भी करता है।[26]

साडे (+ ½) —साडे-प्रा० सड्ढ-स० सार्द्ध। इसी से साढे तीन, साढे चार आदि सख्याए निर्मित की जाती हैं। 'साडे' विकृत रूप जान पड़ता है, परन्तु प्रयोग मे यह सर्वत्र मूल की तरह प्रयुक्त होता है। कहीं-कहीं 'साढे' का भी प्रयोग दृष्टव्य है। जैसे—

साडे तीन को तोलू पय मगायो। (बोली)

(ii) क्रमबोधक सख्यावाचक विशेषण—

पहलो—

यह मेवाती म 'पहला' विकृत रूप की तरह प्रयुक्त होता है। जबकि हिन्दी की अन्य बोलियो में यह मूल रूप की तरह प्रयुक्त होता है। इसकी व्युत्पत्ति क सम्बन्ध म विद्वान एक मत नहीं जान पड़ते। परन्तु इतना स्पष्ट है कि जो लोग इसे 'प्रथम'[27] या 'प्रथर'[28] से व्युत्पन्न मानते हैं उनसे अधिकतर विद्वान सहमत नहीं हैं। पहला की व्युत्पत्ति अवश्य किसी न किसी प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के काल्पनिक रूप 'प्रथिल'[29] से मानी जाती है, जो अब अप्रचलित हो गया है। अत पहला की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से मानी जाती है—

पहलो < अप० पहिलउ < प्रा० पथिलउ < स० प्रथिलक

मेवाती म इसका प्रयोग इस प्रकार किया जाता है—

पहला की बी और यारी बी। (बोली)

दूसरो-तीसरो—

बीम्स इन्हे स० दि+सृ तथा त्रि+सृ से सम्बन्धित करते हैं, जबकि हार्नल एव केलाग 'सरा' की उत्पत्ति सं० सृत से मानते हैं। इससे इनकी उत्पत्ति द्विस्सृत त्रिस्सृत से होगी।

पुरानी मेवाती मे पुरानी हिन्दी के 'दूग्रो', 'तीजो' का भी दूसरो, तीसरो की तरह प्रयोग हुम्रा है। जिनकी उत्पत्ति इस प्रकार है—

दूजो < ग्रप० दुइजो < स० द्वितीय

तीजो < ग्रप० तइजो < स० तृतीयः

इनका प्रयोग दृष्टव्य है—

1 ग्रौर दूसरो फल् नही। (2) तीसरो ग्रापान लू निवाज फडा सकै।

3 दूजो खेंच धरती कू दीयो। (ला. नु)

चोथो—

चोथो < ग्रप० चउत्थउ < स० चतुर्थक.। गुजराती मे भी चोथो ही व्यवहृत होता है। पुरानी मेवाती मे इसका रूप चोथा भी व्यवहृत होता है यथा—

चोथा मुकता मुख से गाया। (ला नु)

चोथो के बाद शेष क्रम बोधक संख्याग्रों के ग्रागे 'वो' या 'वो' प्रत्यय लगाया जाता है। केवल 'छठो' मे 'ग्रो' प्रत्यय लगता है। स० षष्ठक-छठो। वो' प्रत्यय की व्युत्पत्ति स० 'तम' से मानी जाती है। जिस पर ग्रनुस्वार का ग्रागम हो गया है। यथा—

पाचवो < स० पचतम सातवो < स० सप्ततम

ग्राठवो < स० ग्रष्टतम नव्वों < स0 नवतम

दसवो, दसवा दसवो < स0 दशतम ग्यारवो < स० एकादशतम

ग्रौर इसी तरह वारवो, तेरवो, चौदवो, पन्दरवो, सोलवो ग्रादि। लिंग प्रभाव क कारण वो, वा, वो (पुल्लिग) तथा वी, वी (स्त्रीलिंग) प्रत्यय रूप की तरह प्रयुक्त होते हैं।

3 समानुपाती या ग्रावृत्तिवाचक सख्यावाचक विशेषण—

मेवाती मे सामान्यतः 'गुणो' शब्द का प्रयोग ग्रावृत्तिवाचक या समानुपाती सख्यायें बनाने में किया जाता है। इसमे पूर्णांक बोधक सख्या को पूर्व पद बनाकर 'गुणों' के उत्तर पद की तरह प्रयुक्त किया जाता है। हिन्दी मे यह 'गुना' होता है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार सभव है—स० गुणक > ग्रप० गुणग्रउ >

मे० गुणों । अनुस्वार का आगम होता है । इससे निर्मित विशेषण ये हैं — दुगणों, तिगणो, चोगणो, पचगुणो, छगुणी, सतगुणों, अठगुणो, नौगुणो दसगुणो आदि । दुगणो के स्थान पर कभी कभी दूणो (स० द्वि + गुणक) का भी प्रयोग होता है । मेवाती मे कभी-कभी 'हर्या' का भी प्रयोग किया जाता है । उसकी व्युत्पत्ति स० 'हर' से सभव है । जैसे-इकहर्या, दोहर्या, तेहर्या, चोहर्या आदि । कहीं-कहीं लडो' का प्रयोग होता है । यथा—इकलडो, दुलडो, तिलडो, चौलडो आदि ।

☐ समूहवाचक संख्यावाचक विशेषण—

मेवाती मे प्राय' निम्नलिखित शब्दो का समूहवाचक सख्याओं की तरह प्रयोग होता है—

जोडो, जोडो-स० युटक > जुडओ[30] > मे० जोडो । स्त्रीलिंग का 'ई' प्रत्यय-जोडी

यथा - 1 घोडती को जोडो । 2 जूता की जोडी ।

चौकडी—स० चतुष्क > प्रा० चउक्क > मेवाती चौक + डी

यथा—1 जलेबिया की चोकडी । 2 कुवाडा की चौकठ

बीसी—स० विंशति > प्रा० वीसई > मेवाती बीसी

सैंकडा—स० शत+कृत > सैंकडा

लक्ख, लाक—स० लक्ष > प्रा० लक्ख > मेवाती लक्ख, लाक

☐ गुणात्मक संख्यावाचक विशेषण—

मेवाती में निम्नलिखित गुणात्मक सख्यावाचक शब्दों का (विशेषत: पट्टी-पहाडो में) प्रयोग होता है । इनमे गिनती में पूरण सख्या-वाचक के साथ 'कू' लगाकर आगे एका, दूआ, तीया, चौका, पाचा, छैया, साता, आठा लिखा जाता है एव 'की' लगाकर ग्हाई या न्हवाई तथा दहाई का प्रयोग होता है । पहाडो म एक के लिए 'इक' दो के लिए या दूणी, तीन के लिए तीया या ती, चार के लिए चौक, चौको तथा चोकी, पांच के लिए पजो, पजु या पजो, छ के लिए छक्की, सात के लिए सतो या सत्तो, आठ के लिए अट्ठी या अट्ठो, नौ के लिए नम तथा दस के लिए 'दहाई' का प्रयोग होता है ।

उत्पत्ति की दृष्टि मे इन्हें निम्न प्रकार देखा जा सकता है—

इक, एकु-एका < स० एकम् (प्रा० इक्क, एकक)

दूणी < स० द्विगुणी तीया < तृतीयकः

चौका < स० चतुष्क+क पच, पजो < स० पचक

छक्को, छंया < सं० षट्क   सत्ती, सत्तो < सं० सप्तक
अट्टी अट्ठो < सं० अष्टक.   नम, न्हाम्रो < सं० नवम्
दहांई < सं० दशम्

☐ प्रत्येकवाची सख्यावाचक विशेषण—

प्रत्येकवाची सख्याओ का प्रयोग पूर्ण सख्यावाचक शब्द दुहराने के लिए होता है। यथा—

सो-सो=सो-सो तो साटा पड़ै। (बोली)
एक-एक=एक-एक आओ।
इनका सम्बन्ध क्रमश सं० शतम् तथा एकम् से है।

☐ अनिश्चित सख्यावाचक विशेषण—

अनिश्चय का भाव व्यक्त करने के लिए मेवाती मे प्राय दो सख्यावाचक *शब्दो का एक साथ प्रयोग किया जाता है। यथा —*

1. 'दो-एक' धरन कू। (बोली)
2. 'पान-सात' या मे जोत लगाई। (बोली)
3. 'बारे-बावन' पाल मे तेरो सोर जैसे नाहुर को। (बोली)
4. दरब खदारी अखयधन कई 'लक्ख हजार'। (बोली)

इसी प्रकार-एकाध, दो-च्यार, दस-बीस दस-पदरा आदि का भी प्रयोग होता है।

इनके अतिरिक्त कुछ शब्द सख्यावाचक या परिणाम वाचक विशेषणो की तरह प्रयुक्त होते हैं। यथा—

कइयां < सं० कति, कइयां नैं खई ही। (बोली)
सारा < सं० सर्व, सारा का सारा आगा। (बोली)
सगला < सं० सकलक, सगला छोरा बोल्या। (बोली)
भोत < सं० बहु, मुनें तो भोत यायी। (बोली)
घणाही < सं० घन, घणांही आदमी आया हा। (बोली)

☐

☐ सदर्भ-सकेत—

1 हि भा उ वि, पृ० 457, अनु० 345
2 क ग्रा ध्रा, ग्रन्थ 2, पृ० 332, अनु० 74
3 क ग्रा. गो, अनु० 438, पृ० 289, अनु० 452, पृ० 305
4 हि भा इ, पृ० 284, अनु० 301 (5) दहि उ वि पृ० 219, अनु० 315

6 हि व्या, कामता प्रसाद गुरु, पृ० 107 (7) ओ डे बं लँ, अनु० 511
8 हि भा उ वि, अनु० 320, पृ० 442 (9) वही,
10 हि भा इ, अनु० 256, पृ० 267
11 क ग्रा ग्रा, ग्रंथ, 2 पृ० 139, अनु० 26
12 ग्रा हि लँ, पृ० 165, अनु० 248
13 पट् शावक सप्त वर्णानां छ। प्रा प्र, वररुचि, द्वितीय परिच्छेद, सूत्र स० 41
14 ओ डे बं लँ, अनु० 517 (15) प्रा भा. व्या, पिशल, अनु० 210, पृ० 322–324 (16) वही, अ० 323–325, अनु० 210
17 प्रा प्र, वररुचि, 2/21-22 (18) ग्रा हि. लँ., अनु० 245, पृ० 164
19 हि भा उ वि, पृ० 444, अनु० 320
20 ग्रा हि लँ पृ० 164, अनु० 245 (21) ओ डे बं लँ, अनु० 528
22 प्रा. भा व्या, पिशल, अनु० 246, पृ० 662
23 हि भा. उ वि, अनु० 320, पृ० 445
24. हि भा इ, अनु० 277, पृ० 271 (25) क ग्रा ग्रा, ग्रंथ 2, अनु० 28, पृ० 144 (26) पा स म पृ० 34
27 ग्रा हि लै, पृ० 167, अनु० 252
28 क ग्रा ग्रा, ग्रंथ 2, अनु० 27, पृ० 142
29 प्रा भा व्या, अनु० 149, पृ० 666 30 काल्पनिक रूप

क्रिया

जिस प्रकार सस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से होते हुए आधुनिक भारतीय भाषाओं के कारक रूपों मे कमी हुई उसी प्रकार क्रिया रूपों मे भी कमी हुई है। निम्नलिखित तालिका से यह बात अधिक स्पष्ट हो जावेगी—

	वैदिक	सस्कृत	पालि	प्राकृत	अपभ्रंश	हिन्दी
गण	10	10	6	1	1	1
पद	2	2	1	1	1	1
वाच्य	3	3	2	2	2	1
प्रयोग	5	5	4	2	2	3
लकार	11	10	8	4	4	2
पुरुष	3	3	3	3	3	3
वचन	3	3	2	2	2	2
लिंग	3	3	3	2	2	2

इससे स्पष्ट है कि संस्कृत मे क्रिया-रूपों की संख्या अधिक थी जो म्रा मा भा भाषाम्रो तक म्राते-म्राते कम हो गई। प्रा मा. म्रा भाषाम्रों मे लिंग भेद भी नहीं था, जबकि म्राधुनिक भारतीय भाषाम्रों एव बोलियो मे लिग एक समस्या बन गई है। इसका कारण म्रा भा म्रा. भाषाम्रों मे क्रियापदों म सरलीकरण की प्रवृत्ति का होना है। विद्वानो की मान्यता है कि क्रिया-पदो मे सरलीकरण की यह प्रवृत्ति म्रार्यों एव म्रनार्य जातियो के सम्पर्क से उत्पन्न हुई है।[1]

धातु

धातु क्रिया के मूल म्र श को कहते हैं, जो सभी रूपों मे समान रहता है। क्रिया के-णो प्रत्यय से युक्त साधारण रूप से 'णो' हटा देन पर मेवाती धातु निकल म्राती है। यथा—पाणो, खाणो, जाणो, बसणो, हँसणो म्रादि मे पा, खा, जा, बस, हँस-धातु हैं। डा० हार्नली ने हिन्दी की 369 मूल धातुए, 189 यौगिक धातुए तथा 24 परिशिष्ट मे मूल धातुए दी हैं, जिनमे संस्कृत की 466 धातुम्रो का प्रयोग हुम्रा है।[2] धातु की दृष्टि से साहित्यिक हिन्दी की तुलना मे उसकी बोलिया एव उपभाषाए अधिक सम्पन्न हैं। म्रकेली दक्खिनी मे ही 459 धातुम्रों का प्रयोग होता है।[3] मेवाती मे भी धातुम्रो का यह प्राचुर्य देखा जा सकता है। म्रधिकाश धातुएँ संस्कृत से संबधित हैं जो मध्य भारतीय म्रार्य भाषाम्रो म्रौर म्राधुनिक भारतीय म्रार्यभाषाम्रो के परिवर्तन परिवर्धन को स्वीकारती हुई विकसमान रही हैं। मेवाती की म्रधिकाश धातुए, सहायक क्रियापद, काल, वचन, पुरुष म्रादि हिन्दी की म्रन्य बोलियो के समान ही है।

धातुम्रो के वर्गीकरण के सम्बन्ध मे डा० ग्रियसन, हार्नले, चटर्जी, वर्मा एव तिवारी म्रादि ने पर्याप्त विस्तार से प्रकाश डालने का प्रयास किया है। डा० चटर्जी द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण सर्वाधिक वैज्ञानिक है। उन्होंने म्राधुनिक भारतीय म्रार्य भाषाम्रो को दो प्रमुख वर्गों मे विभक्त किया है—

(1) मूल या सिद्ध धातुएँ

(2) यौगिक या साधित धातुएँ

मेवाती धातुम्रों का निम्नलिखित वर्गों मे विभक्त कर सकते हैं-

(1) मूल—(क) तद्भव (1) म्रनुपसर्गीय या सामान्य,

(2) सोपसर्गीय

(ख) णिजन्त या प्रेरणार्थक तद्भव

ग) संस्कृत पुन गृहीत (तत्सम, म्रर्द्धतत्सम)

(घ) देशज (संदिग्ध व्युत्पत्तिवाली)

(2) यौगिक—

(क) आकारान्त प्रेरणार्थक (ख) नाम धातु—

1–तद्भव—(अ) प्राचीन (आ) मध्य युगीन एवं नवीन

2–तत्सम, अर्द्ध तत्सम

3–विदेशी

(ग) संयुक्त एवं सप्रत्यय (मिश्रित) (घ) ध्वन्यात्मक

(ङ) संदिग्ध व्युत्पत्तिवाली

(1) मूल धातुएं—

(क) तद्भव—तद्भव धातुओं को दो वर्गों मे रखा जा सकता है—

(1) अनुपसर्गीय, तथा (2) सोपसर्गीय

(1) मेवाती की कुछ अनुपसर्गीय या साधारण धातुओं के उदाहरण दृष्टव्य हैं—

उठ(णो)<प्रा० उट्ठइ < स० उद्स्थाः, कर (णो) < प्रा० कर< स० कृ, कांप (णो)<प्रा० कंप < स० कम्प्

डरपा दिल्ली दहाणा देवती कांपा राजमहल। (बोली)

काढ(णो) डा० हार्नले इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत भूतकालिक कृदन्त–कृष्ट प्रा० कड्ढइ (हेमचन्द्र 4, 187) से मानते हैं[4], परन्तु डा० तिवारी के अनुसार प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से इसकी व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है।[5]

काट (णो) < प्रा० कट्ट < सं० कृत्, जैसे—

राणी काटी महल की जिनके लम्बे लम्बे केस,'

'जो काटे ही भाड़ मेवणी बणगी पाकिस्तानी हूर'। (बोली)

कूद (णो < प्रा० कुद्द < स० कूर्द (डा० हार्नले इसे स० स्कुद के प्रथम वग 'स्कुदन्ते' प्रा० कुंदई से व्युत्पन्न मानते हैं) मेवाती मे इसका प्रयोग इस प्रकार होता है—

'कूद पड़ूं दरयाव मैं लादू मैं नो झोभन की थाय'। (बोली)

ग, कह (णो)<प्रा० कहे, कहइ<स० कथयति जैसे—

'बुढा सू ख जाय।'

खा (णो) < प्रा० खाअ < स० खाद्, जैसे—

खाणा पीणा मैं कमी ना रही।

गिण (णो) < प्रा० गणेइ < सं० गण

गल (णो) < प्रा० गलइ < स० गल्, मिलाइये स० गालयति 'गलावै' है।

गूंज (णो) < स० गुञ्ज

घट (णो) < प्रा० घट्टइ < स० घट्टयते, घट । यथा—

भाई मरा सू जल घटे । (बोली)

छड, चढ (णो)—डा० तिवारी इसे प्रा० चडै ? हे० च० 4-91 से व्युत्पन्न मानने मे सदेह व्यक्त करते है । हार्नले इसे स० उत्शद, छठवा वर्ग उच्छदति < प्रा० ('उ' का लोप करते हुए) चड्ढइ या चढ्ढइ मानते हैं ।

चर (णो) < प्रा० चर < स० चर

चल (णो) < प्रा० चल < स० चल । यथा—

'चालो मायो दूर सू लेलो मायो सौए । (बोली)

'चाहे म्हारा' शीश पैं कोई पग धर कर चल जाय ।' (बोली)

चाख (णो) < प्रा० चक्ख < सं० चक्ष । यथा—

खट्टे मिट्ठे भाम चाखतो डोलैं सूमा । (बोली)

चूक (णो) < प्रा० चुक्क

छुप (णो) < प्रा० छेप्पइ, छिप्पइ < स० क्षिप् के प्रेरणार्थक क्षेप्यते से—

चन्द छुपाये ना छुपे कितनी डारो खेह । (बोली)

झप (णो) < प्रा० जपइ (वररुचि 8, 24) < स० जल्प

जाग (णो) < प्रा० जग्ग < स० जागृ

जाण (णो) < प्रा० जाण (जाणइ, हेमचन्द्र 4, 7) < स० ज्ञा नवम वर्ग जानाति । यथा—चौपड खेलो बाघकर जाण गवायो देस । (बोली)

जीत (णो) < स० जि के भूतकालिक कृदन्त 'जित' से, जैसे—

ऊ दिल्ली बादशाह की जामें दादा थादा थायो जीत । (बोली)

कह्या सुणा को माफ कर तम जीते हम हारो । (बोली)

जोड (णो) < प्रा० जोडेइ < स० जुट् कर्मवाच्य जोटयति

जोत (णो) < प्रा० जोत < सं० योक्त्रम । यथा—

कीली जोतै कीलीया (बोली)

टूट (णो) < प्रा० टुट्ट < त्रुट् जैसे—

टूटे बिस्तर लन लगे भीतर चमके देह । (बोली)

पत्तो टूटो डाल सू लेगी पौन उडाय । (बोली)

ठग (णो) < प्रा० ठगइ < स० स्थग्, स्थगति । यथा—

तोलू मैं ई पायो हूँ के ठगया नैं । (बोली)

डूब (णो) < प्रा० बुड्ड (वर्ण विपर्यय)—स० डूब्

डर (णो) > प्रा० डर < स० दर । डस (णो) < प्रा० डसे < सं० दश

डाल, डार (णो) < प्रा० डारइ, < स० दृ, प्रेरणार्थक दारयति=
चन्द छुपाये ना छुपै कितनी डारो खेह ।
डोल (णो) < प्रा० डोलइ < स० दोलयति । यथा—
मैं समेरा को डोल रह्यो हू । (बोली)
ढक (णो) < प्रा० ढक्क, डा० हार्नले इसका सम्बन्ध सस्कृत स्थग् से जोडते हैं,
परन्तु डा० तिवारी इसमे सन्देह व्यक्त करते हैं ।
ढूक (णो) < प्रा० ढुक्कइ > स० ढौक
ढूढ (णो) < प्रा० ढुंढ । थक (णो) < सं० स्थग । यथा—
बाडी मैं तो थक्गो । (बोली)
देक, देख (णो < प्रा० देक्खइ < स० दृश्यति,
म्हर वी म्हार देके यवडान लगो । (बोली)
दे (णो) < दे, देइ < स० दा, कर्मवाच्य दीयते,
मस्तक लिख दी राम नैं विस पर करा पुकार । (बोली)
नाच (णो) < प्रा० नच्च < स० नृत्यति
न्हा (णो < प्रा० न्हा < स० स्ना
पी (णो) < प्रा० पिग्रइ < स० पा, पिवति । जैसे—
खाणा पीणा मैं कमी ना रही । (बोली)
पूछ (णो) < प्रा० पुच्छ < स० पृच्छ । यथा—
ढाढी पूछै कौरिया तम मे चकमल कौण ? (बोली)
पड (णो) < प्रा० पड < पत्
समपत विपत पुरख पर पडती रहे हमेस । (बोली)
पढ, फढ (णो) < प्रा० पढ < स० पठ । यथा—
ले आज बाडी मैं और तू दोनों निवाज फढ़ँगा । (बोली)
फूल (णो) < प्रा० फुल्लन्
पहोंच, पोंच (णो) < प्रा० फहुच्चइ < स० प्रभवति
गादडो भीतर गादडो कनै फोचो तो गादडो नैं खई कहा हो गयो ? (बोली)
पाल (णो) < प्रा० पालइ < स० पालयति । यथा—
गोरवाल देसापति पालो मगणहार सू पीत । (बोली)
बाँट (णो) < प्रा० बट <स० वण्ट्
बाध, बाँद (णो) < प्रा० बन्ध < स० बन्ध् । यथा—
अपण दोनू लेज सू गला मैं बाँद लेंगा । (बोली)
बोल (णो) < प्रा० बोल्ल < स० वद् । जैसे—
मुलको हो बोलो नही । (बोली)

बो (णो) < प्रा० बोवइ, बोप्पइ < स० वप्, वपति । यथा—

महां बोये सुखदान वहां बोयो भूरो बाजगे । (बोली)

बूझ (णो) < प्रा० बोज्झइ < स० व्यवसायति

बाज (णो) < प्रा० वज्जइ < स० प्रेरणार्थक वाद्यते । जैसे—

मेरी घटण वटण की झ गीर, बाज रही मंडर पै रैं मंडर पै । (बा

भक (णो) < प्रा० भक्ख < स० भक्ष । यथा—

कोई आवै ब्रिद्ध ताल पै भक जावां बैराठ । (बोली)

भर णो) < प्रा० भर < स० भृ

मिल (णो) < प्रा० मिल < स० मिल् । यथा—

बारै माँगो ना मिलै पड़गैं काणैं चार । (बाली)

मर (णो) < प्रा० मर < स० मृ

माग (णो) < प्रा० मग्गइ < स० मार्ग, मार्गयति । यथा—

ढाडी माँगत है ।

राख (णो) < प्रा० रक्ख < स० रक्ष् यथा—

ना राखै दिल मैं मैल । (बोली)

रोप (णो) < प्रा० रुप्प < स० रुप् । लिख (णो) प्रा० लिख < स० लिख

ले (णो) < प्रा० लेइ < स० लभते । यथा—

चालो आयो दूर सू लेनो आयो मौग । (बोली)

सुण (णो) < प्रा० सुण < स० श्रु, शृणोति । यथा

— मेनावाटी बादाराव है उनकी रोल सुणैं दिनरात । (बोली)

सह (णो) < प्रा० सह < स० सह

— औरन कू छाया करै आप सहै है धूप । (बाली)

सिवा (णो) < प्रा० सिव्व < स० सीव्

— तू एक सिवादे उडदी । (बोली)

हार (णो) < प्रा० हार < स० हारयति,

— कहा सुना को माफ कर तम जीता हम हारी । (बोली)

हँस (णो) < प्रा० हसइ < स० हस्, हसति

— आगे ही सू हँस पड़ो हिरदो खोल दियो मारा । (बोली)

(२) मेवाती सोपसर्गीय धातुएं—

उपज (णो) < प्रा० उवज्जइ < स० उत् + पद्यते । यथा

— दरिया भरिया समद सा उपजां तो मैं हीरा मोती लाल । (लो गी)

उजड़ (णो) < प्रा० उज्जाडेइ < स० उत् + जट् । यथा—

– ऊ बोल रह्यो है जाने उजड खेडा करो है। (बोली)

उतर (णो) < प्रा० उतरइ < स० उत्+तृ

परख (णो) < प्रा० परिक्ख < स० परि+ईक्ष्

बैठ (णो) < प्रा० उवइट्ठ < स० उप + विष्ट । यथा–

– आजा मिन्तर बैठजा खेलगा बाजी।

पसर (णो) < प्रा० पसर < स० प्र+सृ (प्रसर)

– अपणो सम्पत छोडकर कैसा सोवासा पाव पसार।

पहर (णो) < प्रा० पहिरइ < स० परि + धा

बेच (णो) < प्रा० बेच्चइ < स० वि + क्री

– लकडी रोजना बेचैं करें हो।

सोप (णो) < प्रा० समप्पिउ < स० सम् + अर्पय। यथा—

– सोपू सारी देह।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की कुछ णिजन्त धातुएं प्राकृत और अपभ्रंश मे होती हुई हिन्दी और उसकी बोलियो मे भी मूल रूप मे चली आई। प्राकृत मे प्रेरणार्थक क्रियाओं मे संस्कृत 'णिच्' प्रत्यय के स्थान पर अत, एत, आव, आवे-ये चार आदेश होकर धातु रूप होता था। यथा—कारेइ, करावइ, हासेइ, हसावइ, हसावेइ,।[8] यही क्रम अपभ्रंश में भी रहा। परन्तु आधुनिक भारतीय भाषाओं एव बोलियो मे से प्रेरणा का अर्थ प्राय समाप्त हो गया है। इनका प्रयोग अब सकर्मक क्रियाओं के समान होता है। इनके संस्कृत के मूल रूप हिन्दी मे अकर्मक क्रिया के रूप मे है। प्रेरणार्थक रूप बनाने के लिए फिर से 'आ' या 'वा' लगाना पड़ता है। ये अपभ्रंश रूपों के विकसित रूप हैं। हिन्दी मे 'मरना' (अकर्मक) मारना (सकर्मक) तथा 'मरवाना' प्रेरणार्थक रूप होगा। मेवाती मे इस प्रकार की कुछ धातुए निम्न प्रकार हैं—

उखाड़ (णो) < प्रा० उक्खाडिअ < स० उत्खटित

उघाड (णो) < प्रा० उग्घडिअ < स० उद्घाटित,

पसार (णो) < प्रा० पसारेइ < स० प्रसारयति। यथा–

– अपणो सम्पत छोडकर कैसा सोवासा पाव पसार।

मांग (णो) < स० मार्ग, मार्गयति। जैसे–

– ऐसो ऊंट मगादे बाघसिंह, जाय देखा मेरा गांव तीन सौ साठ।

मार (णो) < स० मारयति। यथा–

– तेरा नाटा सू मरवाद्‌ रे। (बोली)

मिला (णो) < स० मिलायति, यथा–

— बदन मिलावैं धूल मे ऊ माणस हैं रूंग ।

जला (णो) < स० ज्वालयति

न्हा (णो) < स० स्नापयति

हार (णो) < स० हारयति

(ग) सस्कृत से पुन गृहीत धातुएं—(तत्सम एव अर्द्ध तत्सम)

अपभ्र श काल के बाद की विकासमान आधुनिक काल की भाषाओ पर सस्कृत साहित्य (धार्मिक साहित्य) का प्रभाव इतना अधिक पडा कि बोलचाल की भाषा मे सस्कृत के अनेक तत्सम और अर्द्धतत्सम रूपो का प्रयोग होने लगा था । इनमे अनेक क्रियापद भी थे । मेवाती म प्रयुक्त कतिपय क्रियापद निम्नाकित हैं—

जाच < स० याच् । यथा–

— जाचा कीना हुसेना मकन को नयो हुयो दातार । (लो)

भक < स० भक्ष् । यथा–

— कोई आवै भ्रिछनाल पै मक जावा बैराठ । (लो)

पीस < स० पिस् । यथा— बैरी पै बैरी झुके दानन नै पीमे । (लो)

बरस < स० वष । यथा— हुनी बरसियो रे मह । (लो)

गह < स० ग्रह । यथा— हिंदु तुरक कू राह गहावो । (ला नु)

भर < स० भृ । यथा— आगा को भाडो नामी तू ही भरागो । (लोक)

(घ) देशज—

कुछ धातुए सदिग्ध व्युत्पत्ति वाली हैं । इन्हें देशज कहत हैं । लोक बोली म ऐमी धातुओ की सम्भावना अधिक रहती है । कुछ धातुओ का अभी तक विद्वान ठीक ठीक पता नही लगा सके हैं । जैसे 'ढो (ले जाना) लौट (वापस) आदि । मवाती की कुछ देशज धातुए दृष्टव्य हैं—

कुक्या (णो) यथा–ऊ कुक्यायो ।

कुटक (णो) यथा–चणा कुटक्बा कु न रहा है ।

कुचर (णो) यथा–फेर वंह ही से दात कुचर्‌यो ।

खदा (णो) यथा–परसू हुन खदाया हा ।

चौख (णो) यथा–गडा चौंखो रस मियो ।

डाट (णो) यथा–एक लो ही है डाटणयो ।

डिडा (णो) (चिल्लाणो) यथा–ऊ डिड्यायो ।

ढुला (णो) यथा-पाणी ढोल दियो।
बगा (णो) (फेंकना) यथा-वानै नाज बगेल दियो।

2. यौगिक धातुएं—

यौगिक धातुम्रो मे वे धातुए आती हैं जिनके मूल रूप सस्कृत धातुम्रो मे नही है, पर उनकी व्युत्पत्ति सस्कृत शब्दों से हुई है।[9]

(क) आकारान्ता प्रेरणार्थक—अपभ्रंश काल के बाद सस्कृत की णिजन्त (प्रेरणार्थक) धातुओं का प्रेरणार्थ प्राय समाप्त हो गया और वे सकर्मक धातुम्रो की तरह प्रयुक्त की जाने लगीं।

मेवाती में प्रेरणार्थक रूप बनाने के लिए मूल धातु में आ-वा का प्रयोग किया जाता है। यथा—

करा, करवा (णो), पुछा, पुछवा (णो), पाल, पलवा (णो) सुणा, सुणवा (णो), लिखा, लिखवा (णो), कटा, कटवा (णो), मिला, मिलवा (णो), मिलाव (णो), पिसा, पिसवा (णो), कुदा, कुदवा (णो), पिवा (णो), खुदा, खुदवा (णो), मरा, मरवा (णो), पिटा, पिटवा (णो) आदि—

'आ' की व्युत्पत्ति स० आप से एवं 'वा' – प्रत्यय की व्युत्पत्ति स० आप + आप > आवाप से है।

(ख) नाम धातु—संज्ञा पद या विशेषण पद मे क्रिया का प्रत्यय जोड दिया जाए तो नाम धातु बन जाती है। नाम धातु प्राचीन भाषा-काल से ही चली आ रही है। हिन्दी में ये तद्भव (गाँठ – गठियाना, बात – बतियाना, हाथ–हथियाना, पका–पकना) अर्धतत्सम — (जन्म < जनमना, आलाप < अलापना, लोभ < लुभाना) तथा विदेशी — (शरमाना, फिल्माना) शब्दों से बनी हैं।[10] मेवाती की कतिपय निम्नलिखित नाम धातुएं हैं—

उखाड़ (णो) — स० भूतकालिक कृदन्त—उत्कृष्ट प्रा० उक्कड्ढ
बोढ़ (णो) — स० उपवेष्ट, प्रथम वर्ग—उपवेष्टते, प्रा० ओवेड्डइ
कमा (णो) — स० संज्ञा-कर्म प्रा० कम्माविइ या कम्मावइ। यथा—
—गाएणो पैदएणो कै, कमाणो जाटणी कै, रोणो खानजादी को। (कहावत)
काढ़ (णो) — स० भूतकालिक कृदन्त — कृष्ट प्रा० कड्ढई
गाड़ (णो) — स० संज्ञा, गर्त, प्रा० गड्ड, गड्डेइ
चा (णो) — स० उत्साह, प्रा० उच्छाहेइ, मेवाती, हिन्दी — चाहे
यथा-दिल चाहे सो लीजिए।

चीख (णो) — स० संज्ञा, चिक्कणा, प्रा० चिक्कणावेइ । यथा–
गुड़ मीठो घी चीखणो, खांड दरदगी होय ।
चिड़ा (णो) — स० भूतकालिक कृदन्त क्षिप्त, प्रा० छिड़ायइ
चीर (णो) — स० संज्ञा – चीर, चीरयति प्रा० चीरेइ
छाप (णो) — स० छप कृत वाच्य, यथा–
मेरा लुगड़ा मैं छपगो मुलतान । (लो.)
जीत (णो) — स० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य — जीत, प्रा० जित्तेइ ।
यथा–ऊ दिल्ली बादशाह की जामैं दादा चाचा आयो जीत । (लो.)
जोत (णो) — स० संज्ञा — योक्त प्रा० जोत्तेइ
झाक (णो) —स० संज्ञा—अध्यक्ष, प्रा० अज्झक्खइ (अ और ख का लोप)
ठैर (णो) — स० स्तब्ध, प्रा० ठहु
डर (णो) — स० संज्ञा — दर प्रा० डर यथा–
डरपां दिल्ली दहाणां देवती, कांपा राज महल ।
निकल्, निकड, लिकल (णो) — स० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य —
निष्क्रष्ट, प्रा० निक्कड्डइ, निक्कल्हइ (न व्यंजन ध्वनि का 'ल' में
परिवर्तन) । यथा–तेरी लिकल जायगी ज्यान । (लो)
निगल (णो) — स० संज्ञा — निगल, प्रा० निगल
निमट (णो) —स०सं०—निष्पत्ति, प्रा० निप्पट्टेइ (प का म में परिवर्तन)
पक (णो) — स० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य — पक्व, प्रा० पक्क
पिछाण (णो) — स० संज्ञा < परिचयर् प्रा० परिचअणेइ, ।
पीट (णो) — स० पृष्ट, प्रा० पिट्ट ।
बैठ (णो)—स० उपविष्ट, प्रा० उवइट्ट, यथा–
आ रे ढाडी बैठ जा मेरो ईचाहल को गांव ।
बाच (णो) — स० संज्ञा वाच्य प्रा० वच्चइ
बिछट (णो) — स० वि–क्षिप्त प्रा० वि–छिट्ट । यथा—
अब का बिछटा कद मिलै दूर पड़ैगे जाय ।
भाग (णो) — स० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य – भग्न, प्रा० भग्ग ।
यथा–भगजा तू हीं सू हीन रै ।
मूत (णो) — स० संज्ञा – मूत्र, मूत्रयति, प्रा० मुत्तेइ
मूंद (णो) — स० संज्ञा – मुद्रा, प्रा० मुद्दइ, हिं – मूंदै । यथा–
पकड़ पकड़ मूंदै ।
रंग (णो) — स० संज्ञा – रंग प्रा० रंग

सुहाव (णो) — सं० सज्ञा — सुख, प्रा० सुहावेइ

सूक (णो)—सं० सज्ञा—शुष्क, प्रा० सुक्केइ (महाप्राण का लोप) यथा—

सूक जा बादयो। धरती का रोखड़ा सूकगा, अमर लीलो कच्च है।

हांक (णो) — सं० हुक + कृ, प्रा० हुक्केइ

प्रेरणार्थक प्रत्यय — आ मे एव नाम धातु प्रत्यय – आ मे व्युत्पत्ति की दृष्टि से कोई अन्तर नही है। कारण कि प्राचीन भारतीय आर्य भाषा प्रत्यय –आय मे और णिच् प्रत्यय — आप मे रूप सादृश्य विद्यमान है।

हिन्दी की तरह मेवाती मे भी विदेशी सज्ञा एव विशेषण पदो मे–आ-जोड कर धातु बना ली जाती है। यथा—

शर्म (फा०) — सरमा (णो), फुरमाणो (फरमाना)

(ग) संयुक्त एवं सप्रत्यय नाम धातुएं—

अधिकांश सयुक्त धातुएं मुख्य धातु के साथ सस्कृत कृ' धातु के योग से बनती हैं। इसकी पहचान अन्त्य व्यजन 'क' है। आधुनिक भारतीय भाषाओ मे किसी धातु से पूर्व कोई सज्ञा, क्रियाजात – विशेष्य या कृदन्त पद जोडकर सयुक्त धातु बनाई जाती है। धातुओं के योग से बनने वाली सयुक्त धातुओ के उदाहरण कम मिलते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी एव उसकी बोलियो मे सयुक्त क्रियाओं की रचना अधिक आधुनिक है। द्राविड भाषाओ मे सयुक्त धातुओ का प्रयोग अधिक देखने मे आता है। श्री कामता प्रसाद गुरु[11] एव कलाग[12] महोदय ने इनका विस्तृत वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार की नाम धातुओ की व्युत्पत्ति प्रत्यय के योग से हुई है। परन्तु मूल या नाम धातु से इनके अर्थ मे कुछ परिवर्तन अवश्य हो जाता है। मेवाती मे हिन्दी की तरह कतिपय धातुएं निम्नप्रकार पाई जाती हैं—

अटक (णो) — सं० अटट या आर्त + कृ, प्रा० अट्टकेइ। यथा—

अटक्या अधर बिजूर मैं।

उचक (णो) — सं० उच्च + कृ०, प्रा० उच्चक्केइ

चूक (णो) — सं० च्युत + कृ, प्रा० चुक्क

चिपक (णो) — सं० चर्प + कृ, प्रा० चप्पक्केइ यथा—

बादशाह न चिपक नी सुण ली।

चिमक (णो) — सं० चमत् + कृ, प्रा० चमक्क। यथा—

टूटे बिस्तर तन लगे मीनर चमक देह।

छिटक, छिड़क (णो) — सं० स्पष्ट + कृ, प्रा० छिड्डक्केइ, छिड्डक्कइ।

डा॰ उदयनारायण तिवारी इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत छिद्र, प्रा॰ के कल्पित रूप 'छिड्ड' से मानते हैं।[13] यथा—
घर आभर सू छिटक पड़या।

ढक (णो) < सं॰ स्थक् + कृ, प्रा॰ ढक्कइ।

थक् (णो) < सं॰ स्तम् + कृ, प्रा॰ थक्केइ। पिशेल महोदय इसे संस्कृत धातु 'स्थक्' से व्युत्पन्न मानते हैं। यथा— वाडो अपर थक्‌गो।

पिचक (णो) — सं॰ पिच्च + कृ, प्रा॰ पिच्चेक्केइ।

फड़क (णो) — सं॰ स्फट + कृ, प्रा॰ फटक्क (ट का ड़ म परिवर्तन)

बक (णो) — सं॰ वाच् + कृ, प्रा॰ वक्कइ

बहक (णो) — सं॰ वह + कृ, प्रा॰ वहिक्कइ

रोक (णो) — सं॰ रुध् + कृ, प्रा॰ रुक्कइ

लुक (णो) — सं॰ लुप् + कृ, प्रा॰ लुक्क ('ह' का आगम)। 'लुक' की व्युत्पत्ति 'लुच्' धातु (लुच + कृ) से भी हो सकती है।

हग (णो) सं॰ हद् + कृ, प्रा॰ हग्गइ, (अनुस्वार का आगम), (मल त्यागना)।

(घ) ध्वन्यात्मक—ध्वन्यात्मक या अनुकरणात्मक नाम धा... तथा संस्कृत भाषाओं से देखने में आती हैं। यद्यपि संख्या में ये क... प्राकृत-अपभ्रंश में आकर यह संख्या और अधिक हो गई। यथा- थरथरइ, धमधमइ, फुरफुरायदि आदि। आधुनिक भारतीय आर्य भा... ऐसी धातुएं देखने को मिलती हैं। मेवाती में प्राप्त कुछ धातुएं इस प्रक...

कुहक (णो) — कुहका हरियल मोर भूल बागन मे गेरी।

कुटक (णो) — चणा कुटक्वा कु न रहा है।

कुक्या (णो) — कूकरी कुक्यायो।

दरदरी — गुड मीठो, घी चीखणो, खाड दरदरी होय।

लुटलुटी — ऊट नै नई मानी, उ लुटलुटी मार गयो।

हिणहिणा (णो) — हम रात दिनां हिणसै।

छीक (णो) — सं॰ छिक्का, प्रा॰ छिक्कंत।

खटखटा (णो) — सं॰ खटखट (खटत्कार), प्रा॰ खड्हड।

धडधडा (णो) — प्रा॰ धडहडिय।

कुछ अर्द्ध तत्सम धातुएं भी देखने में आती हैं। यथा—

गरज (णो) — अर्द्ध तत्सम गरज, तज (णो) अर्द्ध तत्सम, त्यज,

बरज (णो) — सं॰ वज्, भज (णो) — सं॰ भज्

सुमर (णो) — सं॰ स्मर, आदि।

(ड) लौकिक (देशज)—मेवाती मे कुछ धातुएं ऐसी हैं जो न तो प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा की धातु से व्युत्पन्न हैं और न ही यौगिक धातुओं से। प्राकृत काल मे वैयाकरणो ने ऐसी कतिपय धातुओं को 'देशज' या लौकिक नाम दिया है। यथा—

आट (णो) (दबाना), टाक (णो), बगा (णो), आदि

□ सहायक क्रिया—

काल-रचना मे कृदन्त रूपो तथा सहायक क्रियाओं से विशेष सहायता ली जाती है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं मे प्रधान क्रियाओं (सहायक) के रूप मे स० अस, भू, स्था धातुओं से व्युत्पन्न रूपों का प्रयोग होता है। मेवाती – काल रचना मे 'होणो' (होण्) सहायक क्रिया का व्यवहार होता है। 'होणो' सहायक क्रिया स० अस् से व्युत्पन्न हुई है। वर्तमान मे अस् धातु से उद्भूत 'ह' रूप का प्रयोग होता है।[14] मेवाती की सहवोली अहीरवाटी मे 'अस्' के 'स' रूप का प्रयोग होता है।[15] मेवाती के भूत तथा भविष्य मे प्रयुक्त होने वाले 'हो' के विभिन्न रूपो का सम्बन्ध स० भू से ही है। 'स्था' से उद्भूत रूपो का प्रयोग मेवाती मे नही होता है। 'स्था' के विभिन्न रूप 'अहीरवाटी' में प्रयुक्त होते हैं। मेवाती मे 'होणो' सहायक क्रिया के रूप भिन्न-भिन्न अर्थों एव कालों मे पृथक-पृथक होते हैं। 'होणो' के प्रसिद्ध रूप निम्न प्रकार हैं—

वर्तमान निश्चयार्थ

एक वचन	बहु वचन
उत्तम पुरुष – (मैं) हूँ	(हम) हां
मध्यम पुरुष—(तू) है, हा	(तम) हो
अन्य पुरुष—(बो, ऊ) है	(वे) हैं

भूत निश्चयार्थ

एक वचन	बहु वचन
सर्व पुरुष –हो	हा

भविष्य निश्चयार्थ

एक वचन	बहु वचन
उत्तम पुरुष—हू गो, हू गा	व्हागा
मध्यम पुरुष – व्हागो	होगा
अन्य पुरुष—व्हैगो	व्हैंगा

वर्तमान आज्ञा

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम पुरुष	—हू	्हा
मध्यम पुरुष	—्हा	हो
अन्य पुरुष	—्है	्हैं

❑ **भूत संभावनार्थ—**

	एक वचन	बहुवचन
सर्वपुरुष—	होतो	होता

व्युत्पत्ति की दृष्टि से इनका उद्‌भव संस्कृत की अस् एवं भू धातुओं से है।

'हूँ' आदि वर्तमान निश्चयार्थ के रूपों को बीम्स[16] और केलाग अस्मि, प्रा० अम्हि आदि से व्युत्पन्न नहीं मानकर 'भू' के रूपों के सादृश्य पर बने 'अस' धातु के रूपों से सम्बन्धित मानते हैं।

मेरे विचार से 'ह' वाले रूपों का सम्बन्ध सं० भू से है। इसका समर्थन डा० भोलानाथ तिवारी भी करते हैं।[17] सं० भू से इसका विकास इस प्रकार देखा जा सकता है—

वर्तमान—

सं० >	पा० >	प्रा० (अप०) >	आधुनिक आर्यभाषायें
भवामि	भवामि, होमि	होमि, होवि, होव	हौं, हू
भवसि	भवसि, होसि	होसि, होइ, हइ	है
भवति	भवति, होति	होइ–हइ	है
भवाम.	भवाम, होम	होम, होइ, हइ	हइ, हैं
भवथ	भवथ, होथ	होइ (अन्य इकारान्त रूपों का प्रभाव)	होइ – हो
भवन्ति	भवन्ति, होन्ति	होन्ति – होइ, हइ	हैं

मेवाती में इनका प्रयोग द्रष्टव्य है—

1. ई मवसू बडी चीज है हूण। 2 निहारो, वही बजार है। (बोली)
3 दोनू आदमी कं मैं ही हू। (बोली)

भूतनिश्चयार्थ के हो – हा रूपों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में बीम्स महोदय का कहना है कि सं० सन्तो के स का 'ह' हो जाने से 'हो' रूप व्युत्पन्न हुआ है। पश्चिमी मारवाडी में भी ऐसा ही मिलता है।[18] *केलाग महोदय भी इनका समर्थन* करते हैं।[19] इस प्रकार से विद्वान 'हो' को 'अस्' से व्युत्पन्न मानते हैं। मेरे मत से

भूत निश्चयार्थ 'हो - हा' का सम्बन्ध 'भू' से है। कहीं-कहीं 'भये' रूप भी मिलते हैं जिन पर स्पष्ट ब्रज का प्रभाव है। 'भयो', 'भये' स० भू० से व्युत्पन्न हैं। 'हो', 'हा' रूप पालि के 'हू' से व्युत्पन्न है। पालि मे स० के भू का 'हू' आदेश हो जाता है।[20]

मेवाती मे प्रयोग—

1. वा को बाप सरेस्टी हो। 2 बाप बेटा हा। (बोली)

3 असुरन के मन भये उदासा। (ला नु)

भविष्य निश्चयार्थ के सहायक-क्रिया के रूपो मे दो धातुओ के सयुक्त रूप मिल गये हैं। यद्यपि देखने मे यह काल-रूप मूलकाल जैसा लगता है, किन्तु वस्तुत यह बाद मे विकसित हुआ है।[21] इसकी रचना वर्तमान संभावनार्थ रूपो मे 'गा, गो, गी' लगाकर होती है। 'ग' की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे प्रायः सभी विद्वान एक मत हैं। स० गम् धातु के भूतकालिक कृदन्त गत > (प्रा० गदो>गओ, गयो, गो, गअ>गा) से यह व्युत्पन्न है। 'ग' निश्चयार्थ का बोधक है। आजकल इसे प्रत्यय की तरह प्रयुक्त किया जाता है। पश्चिमी राजस्थानी के भविष्य निश्चयार्थ के लो — ला रूप स० लग्न से व्युत्पन्न है। मध्यकाल की मेवाती मे यह रूप देखने को मिलता है। यथा—

1 वा रूस कै लिकडगो। 2 मैं तो पुकारू गो।

3 रुपैया पाच मु डत का लू गा। जब मैं तम कू जाएो दू गा। (ला. नु)

भूत सभावना—

भूत समावना के रूपो का प्रयोग सभाव्य भविष्य की तरह ही किया जाता है। इसकी व्युत्पत्ति स० भवन्त >प्रा० होन्तओ>होतो, होता से हुई है। यथा—

1 वो रसीद देखो मिल गई होतो।

2 दाखल दफ्तर ना करता तो खारज हो जातो।

वर्तमान आज्ञा—

मेवाती म वतमान आज्ञा के रूप वर्तमान निश्चयार्थ के समान ही होते हैं। केवल उत्तम पुरुष, (ब व) मध्यम पुरुष, (ए व) अन्यपुरुष, (ए ब) एव (ब व) रूपो मे 'व' का आगम हो जाता है। इसके सभी रूपो की व्युत्पत्ति भी स० भू से हुई है।

कृदन्तीय रूप—

वर्तमान कालिक—वर्तमान कालिक कृदन्त एव भूतकालिक कृदन्त के रूपों का प्रयोग स्वतत्रता पूर्वक किया जाता है। इसके लिए धातु मे त, ता, ते, तो आदि

प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। स० के वर्तमानकालिक कृत प्रत्यय 'अत' मे इसका विकास हुआ है। केलाग ने इसका विकासक्रम म० पु० कर्त्ता–एक वचन चलन् >प्रा० चलन्तो>ब्रज चलतौ, रा. वो चलता बताया है।[22] डा० वर्मा एव तिवाडी भी इसी क्रम को मानते हैं। 'त' प्रत्यय का विकास–क्रम इस प्रकार रखा जा सकता है—

पु० सं० चलन्त:>प्रा० चलन्तो>हि० चलता, मेवाती चलतो, ब्रज चलतौ।
स्त्रीलिंग स० चलन्ति>प्रा० चलन्ती>हि०, मेवाती>चलती।

मेवाती मे इसका प्रयोग देखिए—

1. ऊ रोज बेचतो रहो।
2. सम्पत बिपत पुरख पर पडती रहैं हमेस।
3. नित खाता नित खेलता नित रहता हा सग।

भूतकालिक—

मेवाती मे धातु के बाद भूतकालिक कृदन्त – ओ जोडा जाता है। हिन्दी मे 'आ' होता है। साथ ही 'य' श्रुति भी होती है। स्त्रीलिंग मे ई' जोडा जाता है। डा० वर्मा इसकी व्युत्पत्ति सस्कृत के भूतकालिक कर्मवाच्य कृदन्त के 'त', इन प्रत्यय से मानते हैं। उनके अनुसार विकास–क्रम इस प्रकार है—

स० चलित:>प्रा० चलिओ, (बो० चल्यो)>हि० चला।
स० कृत >प्रा० करिओ, > हि० करा।[23]

केलाग के अनुसार यह क्रम इस प्रकार है—

स० चलित:—चलितक: प्रा० चलितओ, चलिअओ ब्र० चल्यो, मारवाडी चल्यो, कन्नौ० चलो, हि० चला।[24]

मैं डा० भोलानाथ तिवारी के निम्नलिखित विकास क्रम स सहमत हू—
स० चल्+कृत—चलित >प्रा० चलितो, चलिदो, चलियो, चल्यो
चलो, चले।

मेवाती मे इस कृदन्त का प्रयोग देखिए—

1. बाबा मैं ईसुर को पाप कर्‌यो। (ग्रियर्सन)
2. पिता रोस पुत्र पै आयो। (ला. नु)
3. मौत मार्‌यो काल पड्यो। (ग्रियर्सन)
4. मिल्यो तेरो बडा घरन मैं सीर। (बोली)

पूर्वकालिक कृदन्त—

पूर्वकालिक कृदन्त बहुधा मुख्य क्रिया के उद्देश्य से सम्बन्ध रखता है जो कर्त्ताकारक मे आता है। हिन्दी मे यह धातु के अन्त मे कर (आकर), के (करके,

ग्राके) तथा करके (खाकर के, मारकर के) लगाकर निर्मित किया जाता है। उड़िया, असमिया, मैथिली, मगही भोजपुरी, प्राचीन एवं मध्य बंगला एवं हिन्दी मे भी पूर्वकालिक क्रिया के रूप धातु के साथ क प्रत्यय के योग से बनते हैं और उसके साथ के, करि, किरि (उड़िया) आदि परसर्गों का प्रयोग होता है। इन 'इ' प्रत्ययान्त रूपो की व्युत्पत्ति स० दृश्य (दृष्ट्वा) >प्रा० देक्खिअ > हि० देखि जैसे परिवर्तन क्रम से हुई है। आजकल की हिन्दी मे 'इ' का लोप हो गया है। सम्पूर्ण ब्रज-क्षेत्र मे पूर्वकालिक कृदन्त व्यजान्त धातुओं मे 'इ' जोडकर तथा आकारान्त या ओकारान्त धातुओं मे 'य' जोडकर बनते हैं, जैसे–चलि खाय।[25] पश्चिमी राजस्थानी म भी 'इ' का प्रयोग पूर्वकालिक की तरह देखने मे आता है। जैसे–ठानी (ठानकर)। 'इ' रूप सीधा अपभ्रंश से आ गया है। अपभ्रंश मे 'य' का 'इ' हो जाता है। (हे०च० 4, 439) जो प्राकृत– 'इअ' मे से 'अ' की विच्युति होने के अनन्तर व्युत्पन्न हुआ है। यथा—

दय > दइय > दइ

व्युत्पत्ति की दृष्टि से सस्कृत मे यह कृदन्त – त्वा और – य लगाकर बनता है। सस्कृत मे तो क्रिया के पूर्व उपसर्ग आने पर ही –य लगता था परन्तु प्राकृत मे उपसर्ग न रखने पर भी –य लगाया जाने लगा। इस प्रकार धातु रूप मे पाये जाने वाले हिन्दी पूर्वकालिक कृदन्त का सम्बन्ध स० – य अन्त वाले रूप से है। डा० वर्मा[26] इसका विकास क्रम इस प्रकार मानते हैं—

हि० सुन (ब्र० सुनि) <प्रा० सुणिअ <स० श्रुत्वा
हि० सीच (ब्र० सीचि) < प्रा० सीचिअ <स० सिक्त्वा

धीरे-धीरे 'ई' रूप लुप्त हो गया और धातु के साथ 'कर' रूप प्रचलित हो गया। 'कर' की व्युत्पत्ति स० कृत्वा >प्रा० करिअ से तथा–के की व्युत्पत्ति स० कृत्वा >प्रा० कइअ से मानी जाती है।[27] हिन्दी की बोलियो मे–के के स्थान पर 'कै' तथा 'कर' के स्थान पर 'करि' भी मिलता है। मेवाती मे पूर्वकालिक क्रिया की रचना निम्न प्रकार की जाती है—

(क) हिन्दी एव दक्खिनी की भांति पुरानी मेवाती मे भी कुछ स्थानो पर धातु का प्रयोग पूर्वकालिक क्रिया की तरह किया जाता है—

1. भगत बांध आगे धर दीयो। (ला. नु.) बांध=बांधकर)
2. असर बैठ येह मन्त्र कीया। (ला. नु) (बैठ=बैठकर)
3. रिड प्राए ले हर कूं दीयो। (ला. नु) (ले=लेकर)
4. घोपड़ खेलो बाधकर जाए गवायो देस। (बोनी) (जाए=जाएकर)

–ग्राव तो स० पालक से ही सम्बन्धित है ग्रौर–णो क्रियार्थक सज्ञा का रूप है। –इया प्रत्यय का सबध स० कर्तृवाचक सज्ञा के प्रत्यय – तृ (तृच्) + क (स्वार्थे) से है।[31] – दार प्रत्यय फारसी का है। – हार की व्युत्पत्ति के सबध मे विद्वानो के दो मत हैं – प्रथम मत के विद्वान स० – धारक से तथा दूसरे मत के विद्वान स० कारक से। –ण, क्रियार्थक सज्ञा का है। यथा–

1 मन मैलो चावल ऊजला खान वालो ठोठ। (बोली)
2 वो गयो ग्रर वैह देस का रहणवाला था उनमैं तै एक कै रहयो। (ग्रियर्सन)
3 फेर ग्रायो खेतवाडो। (बोली)
4 लेवाल दूबलो ही होवै करे। (बोली)
5 खै तो सुणबाला की गलती हो गई था गिणबालां की। (बोली)
6. करदे काग उडावणी दे दे मोय दुहाग। (लोक गीत)
7 गाव गयो ऊ जाण जामैं मुकद्दम हसणा। (लोक गीत)
8 उडदी पहरै पल्टणिया तू हमलू क्हा बकावै है। (लो गी)
9. डोढी पहरेदार खडा कर दिया सिपाई। (लोक गीत)

☐ अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त—

यह वर्तमान कालिक कृदन्त का विकारी रूप (ग्रोकारान्त) है। जैसे—

1 वैहको बाप वैह दूर ही तै ग्रावतो देख्यो। (ग्रियर्सन)
2 जातो रह्यो थो। (ग्रियसन)
3 ऊ रोज बेचतो रहो। (बोली)

☐ पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त–

यह भूतकालिक कृदन्त का विकारी रूप (ग्रोकारान्त) मात्र है। यथा—

1 बाबा मैं ईसुर को पाप कर्यो। (ग्रियर्सन)
2 भोत भार्यो काल पडो। (ग्रियर्सन)

☐ तात्कालिक कदन्त—

हिन्दी मे अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त में –ही लगाकर तात्कालिक कृदन्त बनता है। मवाती धातु म–त लगाया जाता है। यथा—

1 गुर का सबद सुणत भो भागा। (ला नु)
2 ढूढत ढूढत पड गई साझ। (बोली)

'ढूंढत ढूढत' म दुहरा प्रयोग है, अतः इसे 'मध्यकालिक कृदन्त' कहा जा सकता है।[32]

वाच्य--

क्रिया के रूपान्तर के अनुसार वाच्य तीन होते हैं।

(1) कर्तृवाच्य, (2) कर्मवाच्य, (3) भाववाच्य।

संस्कृत में कर्मवाच्य केवल सकर्मक धातुओं मे और भाव वाच्य केवल अकर्मक धातुओं मे हो सकता है। इन दोनो वाच्यों के रूप केवल आत्मनेपद मे होते हैं, धातु चाहे जिस पद की हो।[33] कर्तृवाच्य, अकर्मक और सकर्मक दोनो प्रकार की क्रियाओं म होता है। मेवाती में प्रथम दो वाच्य मिलते हैं। भाववाच्य बहुत कम देखने मे आता है।

संस्कृत मे कर्मवाच्य संश्लेषात्मक रूप से प्रकट किया जाता था। लेकिन आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं मे कर्मवाच्य के रूप विश्लेषात्मक होने लगे हैं। यह भाषा की प्रवृति के अनुसार हो रहा है। संस्कृत मे आत्मनेपद और परस्मैपद थे। पालि के बाद प्राकृतों तक आते-आते यह भेद मिटने लगा, परन्तु धातुओं के सकर्मकता और अकर्मकता के अनुसार प्राकृत मे भी भाव एव कर्मवाच्य प्रयुक्त होते थे। आचार्य हेमचन्द्र ने ऐसा ही माना है।[34] अपभ्रंश मे भाववाच्य का प्रयोग नहीं मिलता।[35]

संस्कृत मे विकरण 'यक्' (य) प्रत्यय लगाकर भाव कर्म के धातु रूप बनते थे। प्राकृत मे यह-य, इय, इय्य, ईअ तथा द्वितीय पर्व मे (अपभ्रंश मे) 'इज्ज' तथा 'ईअ' बन गया। कतिपय आधुनिक आर्य भाषाओं ने प्राकृत से होकर संस्कृत से आये इन रूपों को आज तक सजो रखा है। उदाहरणार्थ-सिंधी-करीजे, डिंजे नेपाली-पढ़िये पजाबी - पढ़िए, मारवाड़ी-करीजणो। प्राचीन ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली में भी संश्लिष्टात्मक रूप मिलते हैं। मेवाती मे यह इय्य-इज्ज रूप -इजे ईजो, ईजियो, इये रूपों मे सुरक्षित चला आ रहा है। यथा —

1 लता पहर मलीन वउ सू जोत न कीजे। (ला नु)

2 मित्तर ऐसो कीजियो, जैसे जगल मे को रूख (बोली)

'कीजे', 'कीजियो' म मेवाती का आदर सूचक आज्ञार्थ भी निहित है।

आजकल हिन्दी एव उसकी बोलियों मे जा धातु के आधार पर कर्म एव भाववाच्य की वियागात्मक रचना होने लगी है। मेवाती का एक उदाहरण देखिए—

1 आपणो तन मन मार कर बच्चा ई पातक कट जाय। (बोली)

'आ' लगाकर भी कर्मवाच्य का निर्माण किया जाता है। यथा—

1 बाई नै सूई लगाई। 2 बानै घोड़े का पांव हटा दियो।

'ग्रा' कर्मवाच्य की व्युत्पत्ति स० नाम धातु के चिह्न 'ग्राय' से हुई है।[36] मेवाती मे सस्कृत कर्मवाच्य परम्परा के प्रयोग देखे जा सकते हैं। सरकृत मे कर्मवाच्य बनाने के लिए कर्त्ता मे तृतीया विभक्ति, कर्म मे द्वितीया विभक्ति ग्रौर कर्म के ग्राधीन क्रिया होती है। मेवाती मे भी इस प्रकार के प्रयोग निम्नलिखित वाक्यो मे दृष्टव्य हैं—

1. मुज सँ तो यो नाह चालै। (मैक्लिस्टर)
2. जलसू भीजँ रूप न ग्र गा। (ला. नु)
3. वानै पानी पिलायो। (बोली)

इस प्रकार के वाक्य रूप के ग्रनुसार कर्मवाच्य होन पर, ग्रर्थ क ग्रनुसार कर्तृवाच्य भी माने जाते हैं।[37]

कहीं-कही जहा क्रिया का कर्त्ता ग्रज्ञात होता है, तब भी कर्मवाच्य क्रिया का प्रयोग होता है। यथा—

1. सलाम कह दीयै। 2 कान उपाड लियो।
3. वँहको घुसलो खोस गेर्‌यो ग्रौर पैसा काढ लिया।
4. लठ्ठन के मारे ऊट को हाड फोड गेर्‌यो। (बो०)

ग्राजकल कर्तृवाच्य की प्रवृत्ति बढती जा रही है। भाववाच्य प्रयोग सुनने मे कम ग्राते है।

☐ काल रचना—

ग्राधुनिक भारतीय भाषाग्रो की काल-रचना प्रणाली प्राचीन भारतीय ग्रार्यभाषा की पद्धति से बहुत दूर चली गई है। प्रा. भा ग्रा. भाषा मे भूतकाल मे धातु के तीन रूप होते थे –लङ्, लिट् एव लुङ्–लकार म। इनके उदाहरण क्रमश. ये हैं—(स) ग्रगच्छत् (स) जगाम्, (स) ग्रगमत्। म भा. ग्रा भाषा मे य तीनो रूप छूट गये तथा धातु के भूतकालिक कृदन्त (स गत) रूप से भूतकाल प्रकट किया जाने लगा। यह गत >म भा ग्रा.>गग्रो, गयो, गग्र, गय>हि० गया मेवाती गयो, गो बन गया। इसी तरह सस्कृत का वर्तमान कालिक कृदन्त रूप स० चलन्त, चलता, चलतो) गृहीत हुग्रा। इनके ग्रतिरिक्त प्रा भा ग्रा भा के वर्तमान निर्देशक प्रकार के रूप (स० चलति > म भा प्रा ग्रा चलइ > हि० चले) प्रचलित हुए। प्रा भा ग्रा भाषा से गृहीत ये तीन रूप (एक तिङन्त एव दो कृदन्त) हिन्दी एव उसकी बोलियो की धातुग्रो के विविध रूपो के ग्राधार हैं ग्रौर इनमे सहायक क्रियाग्रो के सयोग से हिन्दी काल-रचना-प्रणाली का निर्माण हुग्रा है।[38]

काल तीन होते हैं-वर्तमान, भूत और भविष्य। रचना-प्रणाली की दृष्टि से मेवाती कालों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(1) मूल काल—इसमें धातु का तिङन्त (संस्कृत कालों के अवशेष) या कृदन्त रूप बिना किसी सहायक क्रिया की सहायता के प्रयुक्त होता है। यह दो प्रकार का होता है—(क) तिङन्त—

(1) मूलात्मक काल—
(अ) वर्तमान इच्छार्थक (आ) वर्तमान आज्ञार्थक।

(2) कृदन्त एव प्रत्यय संयोगी–भविष्यत्

(ख) मूल कृदन्तीय काल—
1. साधारण भूत (सामान्य या नित्य भूत)
2. कारणात्मक भूत, 3. भविष्यत् आज्ञार्थक

(1) मिश्र (संयुक्त या यौगिक) काल-समूह—

इसमें धातु के कृदन्त रूप के साथ किसी सहायक क्रिया का प्रयोग किया जाता है। इसके भी दो भेद हैं—

(अ) घटमान-काल-समूह (आ) पुराघटित-काल-समूह

(अ) घटमान-काल-समूह—का निर्माण वर्तमानकालिक कृदन्त तथा सहायक क्रिया के योग से होता है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित पांच काल आते हैं—

1. घटमान वर्तमान (या वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ)
2. घटमान भूत (या भूत अपूर्ण निश्चयार्थ)
3. घटमान भविष्यत् (या भविष्यत् अपूर्ण निश्चयार्थ)
4. घटमान-सभाव्य-वर्तमान (या वर्तमान अपूर्ण सम्भावनार्थ)
5. घटमान-सभाव्य अतीत (या भूत अपूर्ण निश्चयार्थ)

(आ) पुराघटित-काल-समूह का निर्माण भूतकालिक कृदन्त तथा सहायक क्रिया के योग से होता है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित पाच काल आते हैं—

1. पुराघटित वर्तमान (या वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ)
2. पुराघटित भूत (या भूतपूर्ण निश्चयार्थ)
3. पुराघटित भविष्यत् (या भविष्य पूर्ण निश्चयार्थ)
4. पुराघटित सभाव्य वर्तमान
5. पुराघटित संभाव्य भूत

[ ] (1) भूतकाल-(क) तिङन्त—

(1) मूलात्मक काल (वर्तमान ईच्छार्थक) के मेवाती मे निम्नलिखित रूप होगे, जिनका विकास प्रा भा. ग्रा भा के लट् लकार (वर्तमान निर्देशक) से हुआ है। यहाँ इनका विकास दिखाया जाता है—

	संस्कृत >	प्रा० >	अप० >	मेवाती —	हिन्दी
एकवचन –					
उ पु	चलामि	चलामि	चलउ	चलूँ	चलू
म पु	चलसि	चलसि	चलहि, चलेइ	चलै	चल
अ पु	चलति	चलइ	चलइ	चलै	चले
बहुवचन—					
उ पु	चलाम	चलामो, चलामु, चलाम	चलहुँ	चला	चल
म पु	चलथ	चलह	चलहु	चलो	चलो
अ पु.	चलति	चलन्ति, चलते	चलहि	चलैं	चल

उपर्युक्त सारणी को देखने मे ज्ञात होता है कि मेवाती, हिन्दी के रूप अपभ्रंश से आए हैं। उत्तम पुरुष के हिन्दी रूपो का सम्बन्ध संस्कृत रूपो से नही जुड़ता और उनकी व्युत्पत्ति संदिग्ध मानी जाती है। विद्वानो का कहना है कि 'चलामि' से 'चलू' तथा 'चलाम' से चले का विकास सभव नही। बीम्स के अनुसार स० एकवचन रूप से बहुवचन (चलामि, प्रा० चलाइ, हि० चलैं, चलें) एवं बहुवचन से एक वचन (स० चलाम. प्रा० चलामु, चलाऊ >हि० चलों, चलू) का विकास हुआ है।[39] डा० तिवारी[40] वर्मा[41] एवं केलाग[42] इससे सहमत हैं। परन्तु मेवाती के उत्तम पुरुष का एक वचन 'चलू' (हिन्दी चलू) की व्युत्पत्ति अपभ्रंश 'चलउ' से हुई है। अपभ्रंश मे उ पु ए. व. मे 'मि' प्रत्यय के स्थान पर 'उ' हो जाता है—होउ हवउ। अपभ्रंश म प्राय स्वर के स्थान पर दूसरा स्वर होता रहता है। अत 'मि' के 'इ' को 'उ' होकर 'म' को अनुस्वार हो गया। इस तरह चलामि>चलाउ>चलू का विकास स्पष्ट है। बीम्स 'चला' का प्राकृत के 'चलामु' रूप से सम्बन्ध स्थापित करते हैं।[43] यह उचित नही जान पड़ता। यह प्राकृत के एक अन्य रूप 'चलाम' के 'मे' का अनुस्वार होन स व्युत्पन्न हुआ है।

मेवाती मध्यम पुरुष के रूपो की उत्पत्ति स्पष्ट है। ए व चलै (हिन्दी–चले)<अप० चलइ, चलहि<प्रा० चलसि<स० चलसि व व चलो (हिन्दी-चलो) <अप० चलहु<प्रा० चलह<स० चलथ, मेवाती प्रथम पुरुष ए व चलै (हिन्दी–चले) और ब व चलैं (हिन्दी चलें) का विकास भी प्रा भा भा भा मे स्पष्ट है—

एक वचन चलै <अप० चलइ <प्रा० चलइ <सं० चलति

बहु वचन चलै <अप० चलहिं <प्रा० चलन्ते, चलन्ति <स० चलन्ति ।

मेवाती मे इन रूपो के प्रयोग दृष्टव्य हैं—

1. आगै आगै मैं चलूं । 2. आपां कचरा खाबा चलां ।
3. कौण की घणी चलै ? 4. ऊ सेठ नैं कही चलो ।
5 ऊ चलै । 6. वै खेत मैं चलै ।

(आ) वर्तमान आज्ञार्थक—मेवाती में वर्तमान आज्ञार्थक रूप प्राय· वर्तमान इच्छार्थक के ही होते हैं, केवल उत्तम पुरुप ब. व. मे (हम) चला के स्थान पर 'चलैं' मध्यम पुरुप ए. व. मे (तू) चलै के स्थान पर 'चल' रूप प्रयुक्त होता है । हिन्दी मे केवल म. पु ए व में ही अन्तर होता है । डा० ग्रियर्सन[44] आज्ञार्थक रूपो का सम्बन्ध सस्कृत वर्तमान काल के रूपो से तथा बीम्स[45] स० आज्ञा के रूपो से जोडते है । डा० वर्मा इसे सभव नही मानते । उनके अनुसार सस्कृत के वर्तमान और आज्ञा दोनो ही का प्रभाव हिन्दी के आज्ञा रूपो पर पडा है ।[46] डा० तिवारी भी इससे सहमत हैं ।[47] मेवाती वर्तमान आज्ञार्थक का विकास देखिए—

	स०	> प्रा०	> मेवाती	~ हिन्दी
एक वचन—				
उ. पु.	चलानि	चलमु, चलामु	चलू	चलू
म. पु.	चल	चलसु, चलाहि, चल	चल	चल
अ. पु.	चलतु	चलदु, चलउ	चलै	चले
बहु वचन—				
उ. पु.	चलाम	चलामो	चलैं	चलें
म. पु.	चलत	चलध, चलह	चलो	चलो
अ. पु.	चलन्तु	चलन्तु	चलैं	चलें

इससे स्पष्ट है कि मध्यम पुरुप एक वचन एव उत्तम पुरुप बहुवचन के अतिरिक्त आज्ञार्थ के अन्य मेवाती रूप वर्तमान इच्छार्थक के ही समान है । साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि केवल मध्यम पुरुप ए. व. के रूप (तू) 'चल' ही प्रा. भा. आ. भा. से आज्ञार्थक रूप से व्युत्पन्न है, अन्य नही ।

आदरार्थ आज्ञा मे मध्यम पुरुप एक वचन एवं बहु वचन (तू, तम) मे कह, कर, दे आदि धातुओ के साथ 'दीजो', 'ले, पी, लिख, बुला, पढ, खा आदि के साथ 'लीजो' एवं 'खेल, चल, आदि के साथ 'इयो' का प्रयोग किया जाता है । यथा—कर दीजो, दे दीजो, कह दीजो, ले लीजो, लिख लीजो, पढलीजो (पढदीजो भी)

बुलालीजो पिछाणियो, चलियो, खेलियो, कीजियो, जाणियो, आदि। पर कहीं-कही केवल 'ईजो' का ही प्रयोग होता है। यथा—

1 निरकार को सुमरण कीजो। (ला नु)
2 यही सीख साधन कू दीजो। (ला नु.

हिन्दी मे आदरार्थ आज्ञा के लिए – जिए एव – इए प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। इनकी व्युत्पत्ति हार्नले कर्मवाच्य के क्रिया – रूप से मानते हैं। लेकिन डा० वर्मा के अनुसार ये स० आशीलिङ् प्रत्यय -या (भूयात, गम्यात) से सम्बन्धित है। या > प्रा० इय्य, इए, एज्ज, इज्ज > जिए, जै, इए। डा० उदयनारायण तिवारी[48] एव भोलानाथ तिवारी भी इसका समर्थन करते हैं।[49] मेवाती मे 'इए' को यो बन जाता है।

(2) कृदन्त एवं प्रत्यय संयोगी भविष्यत्—

इसके मेवाती मे निम्न लिखित रूप मिलते है—

	मेवाती एक वचन	– हिन्दी,	मेवाती बहुवचन	– हिन्दी
उ पु	(मैं) करूगो, करूगा	करूगा	(हम) करगा, करेंगे	करेंगे
म पु	(तू) करागो, करेगो	करेगा	(तम करोगा	करोगे
अ पु	(ऊ) करेगो	करेगा	(वे) करगा	करेंगे

सस्कृत मे भविष्यत् काल (निश्चयार्थ) के रूप इष्य या – स्य विकरण के योग से बनते हैं, यथा—करिष्यति। इसका विकास प्रा० मे इस्स या स्स तथा ब्रज, कनौजी, बुदेली, राजस्थानी (पश्चिमी एव जयपुरी) गुजराती, पूर्वी हिन्दी तथा मागधी प्रसूत भाषाओ मे — इह या — ह रूप मे हुआ, परन्तु खडी बोली हिन्दी, मेवाती एव हरियानवी में यह रूप नही आ पाया, परिणामतः प्र भा आ भा के वर्तमान निर्देशक – रूपो, जिनसे वर्तमान इच्छार्थक, आज्ञार्थक एव सभावनार्थक रूपो को उत्पत्ति हुई – ने यहाँ भी स्थान प्राप्त किया। सस्कृत के इन्ही वर्तमान निर्देशक के रूपो मे गम् धातु के भूतकालिक – कृदन्त का रूप गतः > प्रा० गओ, गअ से मेवाती > गो और हिन्दी > गा बनें, जिनको जोडकर करूंगा, करगा आदि भविष्यत् के रूप व्युत्पन्न हुए। इससे सिद्ध है कि मेवाती और हिन्दी के भविष्य निश्चयार्थ के रूप बाद मे बने हैं। मेवाती मे भविष्यत् काल के ये रूप पुल्लिग मे ओकारान्त (गो) और स्त्रीलिंग मे ईकारान्त (गी) होते हैं। मध्यम पुरुष एक वचन के 'करेगो' एव उत्तम पुरुष एक वचन 'करूंगा' एव बहुवचन के अन्य रूप 'करेंगे' पर क्रमशः खडी बोली के 'करेगा' 'करूंगा एव करेंगे' का प्रभाव स्पष्ट है।

खड़ी मेवाती मे भविष्यत् काल के उपर्युक्त प्रयोगो के कुछ उदाहरण देखिए—

1 मैं रोटी पका दूगी ।   2 भाई चल चोगी करगा । (बोली)

3. मैं तो पैसठ दूगो ।   4. दोनू काम करागो । (बोली

5 बाबा तू मोय बुजरग कद बणावगो । (बोली)

6 वानै कई माई मैं तो पुकारूगो । (बोली)

7 इतको भाडो नासी तू ही भरागो ।

8 मैं उठूगो अपणा बाप कै कनै जाऊगो अर वैहने कहूगा । (ग्रियर्सन)

9 रुपया पाच मूडत का लूगा । जब मैं तम को जाणं दूगा । (ला नु ।

10 मैं तेरे काम आऊगो । (मैक्लिस्टर)

(ख) मूल कृदन्तीयकाल—

(1) सामान्य या निश्चय भूत—

मवाती मे इसके निम्नलिखित रूप पाये जाते हैं -

		मेवाती	ब्रज	हिन्दी
सर्व पुरुष	ए व	चलो	चलो	चला
	ब व	चला	चले	चले

सामान्य भूत के मेवाती एव ब्रज के ए. व रूप चलो एव हिन्दी ए व रूप 'चला' की उत्पत्ति प्रा भा. आ भा के भूतकालिक कर्मवाचक कृदन्त त, इत (क्त प्रत्यान्त) वाले रूपों से हुई है—

मेवाती, ब्रज < चलो, हि० चला < प्रा० चलिओ, चलिअ < स० चलितः

करो < करिओ < कृतः

मेवाती बहुवचन मे ओ का आ, ब्रज मे ओ का ए तथा हिन्दी मे आ का ए हो जाता है । मेवाती म उपर्युक्त प्रयोग इस प्रकार देखे जा सकते हैं—

1 बामू एक तरकीब सूझी और दूसरा गाददान सू बोलो । (बोली)

2. राठ मैं सू हीर बाजरो सेण आयो । 3. हलवाई नै रोण मचाई ।

4 (हुन) हुण दिन निकड आयो ।   5 वानै पानी पिलायो ।

6 वो उठयो अर अपणा बाप कनै आयो । (ग्रियर्सन)

7. माय मोगरी अह अग मीयो । घर को भेद बर्गेगो दीयो । (ला नु)

(2) कारणात्मक भूत—इसके मेवाती रूप (चलतो, चलता) एव हिन्दी रूप (चलता, चलते) की व्युत्पत्ति सस्कृत के अपूर्ण या वर्तमान कालिक कृदन्त के अन्त (शतृ प्रत्यान्त) वाले रूपो से हुई है बेलाम एव वर्मा का भी यही मत है । बेलाम और वर्मा के अनुसार सस्कृत कर्तावाचक, पुल्लिग, एक वचन, चलन् मे >

प्रा० चलन्तो > पुरानी हिन्दी चलन्त > ब्रज चलतौ, हिन्दी चलता का विकास हुआ। डा० तिवारी प्रा भा आ चलन्त् > म भा आ चलतो, चलन्त > हिन्दी चलता का विकास क्रम दिखाते है। मेरी इन मतो से विनम्र असहमति है। मेवाती के एक वचन रूप चलतो एव बहुवचन रूप चलता का विकास सस्कृत के बहु वचन रूप चलत. से सभव हुआ है।

स० चलन्त > प्रा० चलन्तो, चलन्तम्र > चलतो, चलता

स्त्रीलिंग मे धातु मे 'ती' प्रत्यय लगता है। पु ए व मे – तो तथा ब व मे – ता का प्रयोग होता है।

		मेवाती	हिन्दी	ब्रज
सर्व पुरुष	ए व (मैं, तू ऊ)	चलतो	चलता	चलतो, चलतौ, चलत
	ब. व (हम, तम, वे)	चलता	चलते	चलत

इसी प्रकार पश्चिमी राजस्थानी, गुजराती, गुजरी मे भी-नो रूप मिलते है। पजाबी, लहदा म –दा, पहाडी म –दो (प्रत्यय) चलते हैं। मेवाती मे वर्तमान कालिक कृदन्त का प्रयोग कारणात्मक भूत के रूप मे देखिये–

1 दाखल दफ्तर ना करता तो खारज हो जातो। (बे०)
2 कोई आदमी वैहनै किमैं बी नाय देतो। 'ग्रियसन)
3 मैं अपणा भायला की साथ खुमी करतो। (ग्रियर्सन)
4 पीछै तिला को पालो करकै खातो। (बोली)

(3) भविष्यत् आज्ञाथक—हिन्दी मे भविष्यत् आज्ञाथक के लिए क्रियार्थक सज्ञा का प्रयोग होता है। यहा केवल एक मौलिक रूप (तुम) 'चलना' मिलता है। परन्तु मेवाती मे–अकारान्त धातुओ मे 'ईयो' तथा एकारान्त धातुओ म 'ईजो' प्रत्यय जुडकर भविष्यत् आज्ञार्थक के रूप बनाते हैं। इन प्रत्ययो की व्युत्पत्ति भविष्यत् कमवाच्य के 'य' वाले सस्कृत रूप से हुई है। प्राकृत भविष्यत् मे 'य' 'ईअ' और 'इज्ज' बन जाते हैं, जिसमे बाद म मेवाती आदि आधुनिक बोलियो के 'ईयो' 'ईजो' प्रत्ययो की उत्पत्ति हुई। मेवानी मे इसके उदाहरण देखिए—

1 कागलो बोलो अक सबनै काढीयो, हीर नै मत काढीयो। (बोली)
2 आगै आगै मै चलू पीछै पीछै तू चलियो। (बोली)
3 जब तोपै कोई मुमीबत आवै तो मोकू बुला लीजो।
4. सबन सु राम राम दे दीजो।

(२) सयुक्त या यौगिक काल समूह—[१]

शेप सभी काल यौगिक है। इनका निर्माण वर्तमान कालिक या भूतकालिक कृदन्त रुपों मे सहायक क्रिया लगाकर किया जाता है। धातु के वर्तमानकालिक

न्त के साथ सहायक क्रिया रूपों के संयोग से घटमान काल समूह तथा भूतकालिक न्त-रूप के साथ जोड़ने से पुराघटित काल समूह के विभिन्न रूप उत्पन्न होते । सहायक क्रिया एवं कृदन्त रूपों की व्युत्पत्ति एवं विकास का इतिहास पीछे या जा चुका है । यहाँ देना विष्टपेषण मात्र होगा । सहायक क्रिया और कृदन्त ों को मिलाकर काल-रचना करना आधुनिक है ।[50] यहाँ मेवाती के यौगिक ाल-रूपों के उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

अ) घटमान काल समूह (वर्तमानकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया)

(1) घटमान वर्तमान-(मैं चलता हूँ आदि)

	एक वचन	बहु वचन
उ पु.	मैं बोलू हू	हम बोला हा
म पु	तू बोले है	तम बोलो हो
अ पु.	ऊ, वो बोले है	वैं बोलैं हैं

(2) घटमानभूत-(मैं चलता था आदि)

	उ पु.	म. पु	अ पु.
ए. व	मैं चलैं हो	तू चलै हो	ऊ, वो चलै हो
ब. व	हम चलैं हा	तम चलै हा	वैं चलैं हा

(3) घटमान भविष्यत्-(मैं चलता हूंगा आदि)

	उ पु.	म पु	अ. पु.
ए. व	मैं चलतो हूंगो	तू चलतो ह्हागो	वो चलतो ह्हैगो
ब व.	हम चलता ह्हागा	तम चलता होगा	वैं चलता ह्हैंगा

(4) घटमान-संभाव्य-वर्तमान- (मैं चलता होऊं आदि)

	उ. पु.	म. पु.	अ. पु
ए. व	जैं मैं चलतो हूं	जैं तू चलतो ह्हा, ह्है	जैं वो चलतो ह्है
ब. व.	जैं हम चलता ह्हा	जैं तम चलता हो	जैं वैं चलता ह्हैं

(5) घटमान-संभाव्य-अतीत- (मैं चलता होता आदि)

	उ पु.	म. पु.	अ. पु.
ए व	जैं मैं चलतो ह्है तो	जैं तू चलतो ह्हैतो	जैं वो चलतो ह्है तो
ब. व.	जैं हम चलता ह्हैता	जैं तम चलता ह्हैता	जैं वैं चलता ह्हैता

(आ) पुरागठित काल समूह—(भूतकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया)

(1) पुरागठित वर्तमान— (मैं चला हू आदि)

	उ पु	म पु	अ पु
ए व	मैं चलो हूँ	तू चलो है	वा ऊ चलो है
ब व	हम चला हा	तम चला हो	वें चला हैं

(2) पुराघटित भूत— (मैं चला था आदि)

	उ पु	म पु	अ पु
ए व	मैं चला हो	तू चला हो	ऊ वो चलो हो
ब व	हम चला हा	तम चला हा	वें चला हा

(3) पुराघटित भविष्यत् (मैं चला हूगा आदि)

	उ पु	म पु	अ पु
ए व	मैं चलो हूगो	तू चलो व्हैगो	ऊ वो चलो व्हैगो
ब व	हम चला व्हागा	तम चला होगा	वें चला व्हैंगा

(4) पुराघटित सम्भाव्य वर्तमान—(मैं चला होऊ आदि)

	उ पु	म पु	अ पु
ए व	जैं मै चलो हू	जैं तू चलो व्हा	ज ऊ चलो व्है
ब व	ज हम चला व्हाँ	ज तम चला हो	ज वें चला व्हैं

(5) पुराघटित सम्भाव्य भूत—(मैं चला होता आदि)

	उ पु	म पु	अ पु
ए व	ज मैं चलो व्हैतो	ज तू चलो व्हैतो	ज वो ऊ चलो व्हैतो
ब व	जैं हम चला व्हैता	ज तम चला व्हैता	ज व चला व्हैता

□ सयुक्त क्रियाएँ—

प० कामता प्रसाद गुरु के अनुसार धातुओ के कुछ विशेष कृदन्तो के आग (विशेष अर्थ म) कोई कोई क्रियाएँ जोडने से जो क्रियाएँ बनती हैं उन्हें सयुक्त क्रियाए कहते हैं। हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय भाषाओ म सयुक्त क्रियाओ का बडा महत्व है। अनेक सश्लिष्ट एव सूक्ष्म भाव इनके बिना व्यक्त करना कठिन है। प्रा भा भा भाषा मे जो काम प्रत्यय आदि लगाकर किया जाता था वही काम आज सयुक्त क्रियाओ से लिया जाता है।

सयुक्त क्रियाओं के सबध म विद्वानो का कहना है कि हिन्दी मयुक्त क्रियाओ की रचना आधुनिक है अत इस सबध मे ऐतिहासिक विवेचन असभव है।[51] डा० चटर्जी[52] ने इन पर द्रविड भाषाओ के प्रभाव को स्वीकार करते हुए सस्कृत प्राकृत

को छोड सीधे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं पर विचार किया है जिससे सिद्ध होता है कि वे भी संयुक्त क्रियाओं को आधुनिक ही मानते हैं।

मेवाती की संयुक्त क्रियाओं को केलाग एवं प्लाट्स के अनुसार निम्न प्रकार में वर्गीकृत किया जा सकता है—

(1) पूर्वकालिक-कृदन्त पद-युक्त—ये तीन प्रकार की होती हैं-

(क) अवधारण बोधक (भृशार्थक)—अवधारण बोधक से मुख्य क्रिया के अर्थ में अधिक निश्चय पाया जाता है। निम्नलिखित सहायक क्रियाएँ इस अर्थ में प्रयुक्त होती हैं—

उठणो, बैठणो, आणो देणो लेणो, पडणो, गेरणो रहणो, राखणो लिकडणो। मेवाती में इनके प्रयोग देखिए—

1 चानो आयो दूर सू लेतो आयो मू सोण।
2 लादे मोलू कजली बन को लाडलो जो नाकन पीवे सीर।
3 ऊमो ऊट मगादे बाघसिंह जाय देखा मेरा गाव तीन सौ साठ।
4 आजा मित्तर बैठजा खेलगा बाजी।
5 जानो रहयो थो सो पा गयो।
6 घोडा पर बैठा लई। 7 राजा नें वो काढ दियो।
8 आगें ही सू हस पडो हिरदो खोल दियो सारो।

(ख) शक्यता बोधक—यह पूर्वकालिक कृदन्त रूप के साथ 'सक् (णो)' के योग से निष्पन्न होती है। जैसे—

दौड़ सकै, फडा सकै, फड सकै आन सकै जा सकै, दख सकै, खा सकै, आदि

(ग) पूर्णता बोधक—यह पूर्वकालिक कृदन्त रूप के साथ 'चुक (णो)' क्रिया के योग में बनती है। यथा-

खा चुकणो, पी चुकणो, रो चुकणो, पढ चुकणो, गा चुकणो जा चुकणो आदि।

(2) आकारान्त क्रिया मूलक-विशेष्य-पद-युक्त—

(क) अभ्यास बोधक (पौन पुन्यार्थक)—यह आकारान्त क्रिया मूलक विशेष्य-पद (भूतकालिक कृदन्त) के आगे 'करणो' क्रिया जोड़ने से बनता है, यथा—

1 ऊ जाया करे है। 2 ऊठे पढ्या करिए, खाया करिए, आदि।

(ख) इच्छार्थक—आकारान्त क्रियामूलक – विशेष्य पद (भूतकालिक कृदन्त) के आगे 'चाहना' क्रिया जोडने से बनती है। यथा-

1 चाहे म्हारा सीस में कोई पग धर धर चल जाय।
2 यो जाणो चाहवे है।

(3) असमापिका-पद युक्त (या क्रियार्थक संज्ञा) के मेल से बनी—

(क) आरम्भ-बोधक—असमापिका-पद के विकारी रूप के साथ 'लगना' क्रिया जोडने से बनती हैं। यथा—

1. बेचण लगो। 2. कितना पैसा लग जावेगा।

3. वैहूने चूमण चाटण लाग्यो।

(ख) अनुमति बोधक—असमापिका पद के विकारी रूप के साथ 'देना' क्रिया के योग से निष्पन्न होती है। यथा—

1 याने सूक जाबा द्यो। 2 इच्छा होय भगवान की देवे लाख हजार।

(ग) सामर्थ्य बोधक (या अवकाश बोधक)—असमापिका पद के विकारी रूप के साथ 'पाणो' क्रिया लगाकर बनतो है। यथा—

1. जातो रहो थो सो पागयो है। 2 मूनै ना दे पाई।

(4) वर्तमानकालिक एवं भूतकालिक कृदन्त युक्त—

(क) निरन्तरता—यह वर्तमान कालिक कृदन्त के साथ 'रहणा' क्रिया के योग मे बनती है। यथा—

1. मैं समेरा को बोल रहयो हू। 2 हो रहिए आधीन नाथ साई को लीजै।

3 वा रूख मैं बैठो बोल रहो हो। 4 ये तो साधु बण रा हा।

(ख) प्रगतिबोधक—वर्तमान कालिक कृदन्त के साथ 'जाणो' क्रिया क योग से व्युत्पन्न होनी है। यथा—

1. पाणी बिखर्यो जावे हो। 2 सीता गायां जावै ही।

(ग) गत्यर्थक—वर्तमान कालिक कृदन्त के साथ गति-बोधक क्रिया के सयोग से इसका निर्माण होता है। यथा—

1. ऊ मागतो डोलै है। 2 ऊ भूको मरतो आवें है।

(5) विशेष्य (या विशेषण पद-युक्त या नाम बोध)—

यह विशेष्य या विशेषण पद के साथ 'करणो,' 'होणो' और 'लेणो' क्रियाओ के योग से बनती है। यथा—

1 मस्तक लिख दी राम नै किस पर करा पुकार। (बोली)

2 सुतन्तर पार्टी से खडो हो रहो हू। (बोली)

इनके अतिरिक्त कुछ विद्वान पुनरुक्त सयुक्त क्रियाएँ भी मानते हैं। मेवाती म ऐसी क्रियाएँ भी देखने मे आई हैं। ऐसी क्रियाओ मे दो समान ध्वनि या अर्थ वाली क्रियाओ का सयोग होता है। यथा—

1. पीछे पीछे ल्होरटी लेज सू भेंदी घिसडती-घिसडती जा रई।

2. ई कहकै गादडा ढू ढता-ढूढता वई पेंड के नीचे आ गयो।

3. मू दे पकड-पकड। 4 मार-मार मुप सेती कहै। (ला नु)

☐ संदर्भ संकेत—

1 हि भा उ वि पृ० 465 (2) हि धा म०, हार्नले
3 द हि उ वि, श्रीराम शर्मा, परि० 1, पृ० 273 (4) हि धा स
5 हि भा उ वि., पृ० 480 (6) हि धा स०, 1/65
7 हेमचन्द्र 8/3/149 – णेर देदावावे। (8) सू अ व्या, पृ० 210
9 हि धा स, हार्नले, पृ० 1 (10) हि भा., भोलानाथ तिवारी, पृ० 241
11 हि व्या, अनु० 399–433, पृ० 310
12 ई हि ग्रा, अनु० 345–365 (13) हि भा उ वि, पृ० 488, अनु० 371
14 म. भा (पिलानी), वर्ष 16, अंक 3, 1968, प्रस्तुत लेखक का मेवानी का संक्षिप्त व्याकरण' लेख
15 वही, वर्ष 16, अंक 2, 1968, प्रस्तुत लेखक की 'अहीरवाटी बोली: एक सर्वेक्षण' (लेख) (16) क ग्रा भा, ग्रंथ 3, पृ० 172 अनु० 59
17 हि भा, पृ० 251 (18) क ग्रा भा, ग्रंथ 3, पृ० 177, अनु० 60
19 ग्रा हि लैं, अनु 606, पृ० 347 (20) पा प्र, आद्यादत्त ठाकुर, पृ० 96
21 हि भा इ, पृ० `02, अनु० 321 (22) ग्रा हि लैं, अनु० 597, पृ० 339
23 हि भा इ, अनु० 310, पृ० 295 24) ग्रा. हि लैं, अनु० 598, पृ० 340
25 ब भा, पृ० 103, अनु० 221 (26) हि. भा इ, पृ० 296, अनु० 311
27 वही (28) ओ डे बें अनु० 743 (29) हि भा., पृ० 248
30 स ग्र, पृ० 145 (31) हि भा, पृ० 250
32 वही (33) स, व्या प्र, बाबूराम सक्सेना, अनु० 144 पृ० 443
34. हेम० 8/3/160 'चिन्त्रि प्रभृतीना भाव कर्मनिधि वक्ष्याम'
35. हि ग्रा भ, तगारे, पृ० 281 (36) ओ डे बें, चटर्जी, अनु० 671
37. हि व्या, गुरु, अनु० 349, पृ० 256–57
38 हि भा उ वि, अनु० 388, पृ० 496
39 क ग्रा. भा, ग्रंथ 3, अनु० 33, पृ० 105
40 हि. भा उ वि, अनु० 393, पृ० 498
41. हि भा इ, अनु० 318, पृ० 300 (42) ग्रा हि लैं, अनु० 601, पृ० 343
43 क. ग्रा भा, ग्रंथ 3, अनु० 33, पृ० 105
44. रे ए पा., पृ० 352–75 (45) क ग्रा भा, ग्रंथ 3, अनु० 33, पृ० 10
46. हि. भा इ, अनु० 319, पृ० 300
47. हि भा उ वि, अनु० 394, पृ० 499 (48) वही, पृ० 500
49. हि. भा, अनु० पृ० 258 (50) हि भा इ, अनु० 323, पृ० 304
51. वही, अनु० 327, पृ० 306 (52) ओ डे बें, अनु० 765 ☐

षष्टम् अध्याय

अव्यय

व्याकरणानुसार अव्यय चार प्रकार के होते हैं—

1 क्रियाविशेषण, 2 समुच्चयबोधक 3 संबंधसूचक

4 विस्मयादि बोधक।

1 क्रियाविशेषण—

मेवाती में प्रयुक्त क्रियाविशेषण के रूप सज्ञा, सवनाम, विशेषण और क्रिया के आधार पर निर्मित हुए हैं। इनमे सार्वनामिक क्रियाविशेषणों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। नीचे मुख्य मुख्य क्रियाविशेषणों का उल्लेख किया जाता है।

(क) सार्वनामिक क्रियाविशेषण—

इन क्रियाविशेषणों का निर्माण सार्वनामिक तत्वों मे कुछ लगाकर किया जाता है।

सवनाम	सार्वनामिक तत्व	कालवाची (ब, द)	स्थानवाची त, ईन, ऊ, ठ्या, हो)	दिशावाची (ठी, तलू, रलू, तकू राने	रीतिवाची हुन्दा, हतरा, यू
1 निश्चयवाचक (क) निकटवर्ती	म इ, ऐं ह, न	अब	इत, ही हीन अठ्या	इतलू इतकू हीलु, उरलू उराने इगेलू ऐठी	ऐंहन्दा, ऐंहतरा, नू न्यू, यू, यों
(ख) दूरवर्ती	व, उ, ह, प	—	उत, हू, हूए (न) वंठे, ऊठे, वंठ्या	हूलू, उनलू, वंठी, उतकू, हून, उ गेलू,	वैहन्दा, वेंतरा
2 प्रश्नवाचक	क	कब कद कदी, कदे	कूहा, कित किते कंठया	कितलू कितकू कैठी	कैहन्दा क्यू कैहतरा, की
3 सम्बन्धवाचक	ज	जब, जद	जूहा, जित जंठ्या	जैठीने	जैहन्दा, ज्यु जैतरा, ज्यो
4 नित्यसबधी	त	तब, तजं	तहाँ	—	—

उपर्युक्त क्रियाविशेषणों का निर्माण सार्वनामिक तत्व म ब द त, ईन ऊ, क्या हा ठी, तलू, रलू, तकू, रानै, हन्दा, हतरां, यू जोडकर हुआ है। सार्वनामिक तत्वों की व्युत्पत्ति, 'सर्वनाम' शीर्षक अध्याय म की जा चुकी है। बाकी की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार स हुई है—

(अ) कालवाचक—

मेवाती मे सार्वनामिक तत्व म 'ब' और 'द' लगाकर कालवाची अव्यय बनाये जाते हैं। 'ब' संस्कृत 'वेला' से बना है, जिससे अब कब, जब, तब अव्यय बनाये जाते है तथा 'द' का संबंध स० कदा, यदा के 'द' से है। 'कदी' (<स० कदाचित् या कदापि) का प्रयोग अनिश्चयार्थ मे भी होता है। इसका संबंध संस्कृत के इन दोनो रूपो मे भी जोडा जा सकता है। अप० 'कद्दाइ' मे इसका संबंध जोड सकते है।[1]

इ (< स० अपि) के संयोग से मेवाती के क्रियाविशेषण अबी (अभी अब ही), कबी, कदी (भी) (कभी, कबही,) जबी (भी), जदी (जब ही, जभी), तबी (तब ही तभी) रूप धारण कर लेते हैं। कालवाचक 'तद' और 'अद' अव्यय मेवाती म नही होते। य दक्खिनी म होते हैं। मेवाती म इनका प्रयोग देखिए—

1 अब तेरी को करै सहाई। (ला नु)
2 जब वैहने मारो धन बिगाड दीयो। (ग्रियर्सन)
3 इतलू जब गादडानै ल्होकड़ी की ई बात सुणी तो सोचण लगे। (बोली)
4 अबी कहा पतो? (बोली)
5 अब का बिछटा कद मिलै दूर पडैंगे जाय। (बोली)
6 अभी तो कल को डन्ड लगो है। (बोली)
7 बाबा तू मोय बुरजग कद बाणावगो। (बोली)
8 तो बी तै मूनैं कवे एक बकरी को बच्चो बी ना दियो। (ग्रियर्सन)
9 तबै गरब सू बाहर आये। (ला नु)
10 जै कदी म मरगो तो इन चीजन नै कौण बनावेगो। (बोली)

(आ) स्थानवाची—

स्थानिक अंश 'हा' की व्युत्पत्ति संस्कृत 'स्थाने' से हुई है। कुछ विद्वान '–ह' अंश की व्युत्पत्ति स० इह, कुह के 'ह' प्रत्यय से मानते हैं तो कुछ स० –स्मिन > ही से। डा० चटर्जी अत्र, तत्र, कुत्र, यत्र के –त्र के प्राकृत-रूप 'त्थ' से –ह रूप को व्युत्पन्न मानते हैं। अनुस्वार का आगम हो गया है। 'त्थ' म 'त्थ' रूप व्युत्पन्न हुए हैं। मेवाती में इनका प्रयोग देखिए—

1. हूंन दिन लिक्ल ग्रायो ।   2 वैं हू मू लिक्ड गया ।
3. हीन ग्रा ।   4 हू बिणजारो चलो ग्रा रह्यो ।   5 कहा कू जा रह्यो ।
6 ग्रब कही मे भगू गो ही सू ।   7 ग्रब वैं छोरा हू ण रहवो करै है ।
8 इतको माडो नासी तू ही मरागो ।   9 जहा भीड पडी सनन मैं, जहा पहोचे रघुवीर । (ला नु)   10 तहा डूगर मी साध नै कियो वपान । (ला नु)   11 यो गहणू कैठ्या तै ग्रायो है । (मैकिनस्टर)

(इ) दिशावाची—

हिन्दी के स्थानिक ग्रश 'घर' का मेवाती म निनान्त ग्रभाव है । लू, कू, नैं, प्रत्ययो को जोड कर मेवाती दिशावाची ग्रव्ययो का निर्माण होता है । इनकी व्युत्पत्ति के लिए मेवाती विभक्तियाँ देखिए । मेवाती मे इनका प्रयोग इस प्रकार होता है—

1 हीं लू ग्रा ।   2 हूलू जा ।   3 ऊ गैलू जा ।   4 हून जा ।
5 हूण सू जव सम्मन ग्रायो ।   6 इतलू जब गादडानै ल्होकटी की ई वात सुणी तो सोचण लगे ।   7 कठी सैं ग्रायो हा ?   8 जैठी सैं ग्रायो हो वैठीनै ई जा ।

(ई) रोनिवाचक—

स्थानिक –'यू ' 'यो' की व्युत्पत्ति 'एवम' से हुई है, जिसमे किम+एवम् > क्यू , यत् + एवम् > ज्यू , ज्यो-व्युत्पन्न हुए हैं । केलाग-इत्यम् > यू व्युत्पन्न बताते हैं । 'ह्न्दा' एव 'हूतरा' की व्युत्पत्ति स० – ग्र ग्रत्र, तत्र से) के तर' ग्रौर 'दर' रूपो मे 'ग्रा' लगाने से हुई है । मेवाती म इन क्रिया विशेपणो का प्रयोग निम्न प्रकार से होता है —

1 नू क भाई जाऊ कैसे ? (बोली) 2 ज्यो जैसे जल मे जगदीमा ला नु)
3 मावसा तू क्यू डरपो ?
4 ऍहन्दा (ऍहतरा) कैहन्दा (कॅहतरा) होगो ?
5 जैहन्दा (जैतरा) तू कहागो वैहन्दा (वैतरा) कर ल्यागा ।
6 गलियारा को देव, यो भाखै जयदेव । (बोली)

(ख) ग्रन्य क्रियाविशेपरण—

सर्वनाम मूलक क्रियाविशेषणो के ग्रतिरिक्त सज्ञामूलक, क्रियामूलक तथा ग्रन्य क्रियाविशेपण भी होते हैं । नीचे मेवाती के कुछ प्रमुख क्रियाविशेपण प्रस्तुत किए जाते हैं —

कालवाची

मेवाती	<	अप० (< प्रा०)	<	संस्कृत
आज	<	अज्ज	<	अद्य
कल, काल	<	कल्ल	<	कल्य
बै	<	बेला	<	वेला
अमेर-समेर	<	—	<	वेला (अ और स का संयोग)
अबार (देर)	<	—	<	वेला
परसू		—	<	परश्च
सकालै		—	<	सुकाल
परलैदिन		—	<	परकल्य दिनम्
तरलैदिन		—	<	तृ + कल्य दिनम्
तुरत		—	<	त्वरितम्
बर-बर मैं		—	<	वारम्बार
धंरे (प्रात)		—	<	अन्धकारे ?

स्थानवाची

मेवाती	<	(अप०) प्रा०	<	संस्कृत
भार	<	बाहिरअ	<	बहि
भीतर	<	भित्तर	<	अभ्यन्तर
ऊपर	<	उप्पर	<	उपरि
नीचै	<	—	<	नीचैः
तलै	<	—	<	तलै

परिमाणवाची

इतनो < अप० एत्तउ, कितनो, जितनो, उतनो आदि।

☐ स्वीकारवाची—'हग्वै', 'हाँ', 'हैं'।

इस अव्यय की व्युत्पत्ति डा० उदयनारायण तिवारी सं० आम् < पा० आम (< मे० हां, हैं) से जोड़ते हैं। डा० वर्मा संदिग्ध व्युत्पत्ति मानते हैं। डा० भोलानाथ तिवारी पूर्वी 'हा' में अनुनासिकता का आगम मानते हैं। केलाग मराठी क्रिया 'आहे' से सम्बन्ध जोड़ते हैं।

☐ निषेधवाची—'ना', 'न्हीं', 'मत'।

ना की व्युत्पत्ति सं० 'न' से हुई है। न्हीं (नहीं) की व्युत्पत्ति केलाग न + आहि से, चटर्जी एवं उदयनारायण तिवारी 'न+अस्ति' से, भोलानाथ तिवारी

'नास्ति' से व्युत्पन्न मानते हैं। जिसमे नास्ति < णत्थि < नहि, नही, न्ही व्युत्पन्न होता है। 'मत' फारसी अव्यय है, जो निषेध के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

☐ **परिमाणवाचक**—घणो, जादा थोडो आदि।

☐ **समुच्चयबोधक**—अरु, अर, और (और) <अवर< स० अपर, जो जै,< प्रा० जम, जइ<स० यदि, तो < स० तत, क (कि) < स० किम्, पण (फिर) <स० पुन, पण (पर) < स० पर, चाहे< स० चाह, आदि मुख्य-मुख्य समुच्चय बोधक अव्ययो का मेवाती मे प्रयोग किया जाता है।

☐ **सम्बन्ध सूचक**—द्रष्टव्य 'कारक विभक्ति' अध्याय।

☐ **विस्मयादि बोधक**—यद्यपि विस्मयादि बोधक का कोई इतिहास नही है, फिर भी कुछ अव्यय मेवाती मे भी देखने को मिले है। यथा—

हा (<स हा), ओ–हो (<स० अहो), अच्छो (<पा० अच्छो (प्रा०< अच्छअ) < स० अच्छ) ऐ (<स० अइ), स्याबास (अरबी० शाबाश), वा भइ वाह (वाह-वाह) आदि।

अन्य क्रियाविशेषणो म निम्नलिखित क्रियाविशेषण भी मेवाती मे प्रयुक्त किये जाते हैं—

दोनू ओडानै (दोनो तरफ), चोगडदा (चारो ओर), सैंज-सैंज (सहज-सहज)।

आगै (<अप० अग्गए< स० अग्रके), पाछै, पीछै < अप० पच्छए < स० पश्चके), आगलो (<अप० अग्गिले<स अग्रिले), पाछलो (<अप० पच्छिल्ल < स० पश्चिले), कनै (<अप० कण्णहि<स० कर्णस्मिन् (कर्ण) से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ पास होता है। राजस्थानी मे इसका प्रचुर प्रयोग सम्प्रदान परसर्ग की तरह भी हुआ है। इसी तरह पै < स० पार्श्वे भी है।

☐

सप्तम् अध्याय

प्रत्यय–उपसर्ग

किसी भाषा में शब्द के दो तत्व होते हैं –प्रकृति और प्रत्यय। प्रकृति तत्व भाषा के आधार भूत अंग है, जिनसे भिन्न-भिन्न अर्थ प्रकट होते हैं। लेकिन जिस तत्व की सार्थकता प्रकृति तत्व के बाद लगकर ही दिखाई देती है उसे प्रत्यय तत्व कहते हैं।[1] यह प्रत्यय प्रकृति के पूर्व लगकर परसर्ग या उपसर्ग भी कहलाते हैं। भारतीय आर्यभाषाओं के जो प्रत्यय–उपसर्ग मेवाती में आए हैं इन्हे तत्सम और तद्भव के अन्तर्गत रख सकते हैं।

[ ] तत्सम—

तत्सम प्रत्ययों से अभिप्राय प्रा भा आ भा (संस्कृत) से तद्वत् रूप में ग्रहण किए गए प्रत्यय[2] तथा तद्भव प्रत्ययो से अभिप्राय उन प्रत्ययो से है जो म० से म भा. आ भाषाओं से होकर मेवाती में आए हैं। यथा—सुनार, चिमार, कुम्हार, आदि में 'आर' प्रत्यय कार > आरो > आर से व्युत्पन्न है।[3] विदेशी प्रत्यय अरबी फारसी में आए हैं। यथा—दार (याणेदार, चौकीदार, जिमादार), बे (बेहीमान, बेकार) आदि। कुछ देशी प्रत्यय भी प्रयुक्त हुए है। यथा—अक्कड, प्रत्यय[4] (पियक्कड, घुमक्कड, ग्वक्कड, सुवक्कड), जिसका अर्थ 'वाला' होता है। परन्तु डा० उदयनारायण तिवारी प्रा० अक्क+ट > अक्कड से 'अक्कड' विकसित मानते हैं।[5] मेवाती की विभक्तिया (हिन्दी की तरह) तद्भव प्रत्यय के अन्तर्गत आती हैं जिनका विवरण सज्ञा प्रकरण मे दे चुके हैं। तत्सम शब्दों का विवरण देना आवश्यक नहीं है। अत यहा तद्भव शब्दो का अकारादि क्रम से विवरण दिया जाता है। प्राय हिन्दी और मेवाती के प्रत्यय ध्वनि-भेद से उत्पत्ति की दृष्टि से समान ही हैं। जो समान हैं उन्हे यहाँ प्रस्तुत नही किया जा रहा है।

☐ तद्भव प्रत्यय —

अ—अकारान्त सज्ञा शब्दों (स्त्री० पु०) में 'अ' प्रत्यय का प्रयोग होना है। यथा—

डण्ड	<	दण्डम्,	हीर	<	आभीर
साँकल	<	शृंखला,	घर	<	गृहम्, आदि।

डा० वर्मा इसे स० पुल्लिग अ, स्त्रीलिंग आ तथा नपु० अम् से व्युत्पन्न मानते हैं।[6]

अत—मेवाती मे इस प्रत्यय का प्रयोग क्रियाओं के साथ होता है। यह वर्तमानकालिक कृत प्रत्यय से सम्बन्ध रखता है। यथा—

कह्+अत > कहत, पृच्छ्+अत > पूछत,

धृ+अत > धरत आदि।

खड़ी बोली मे इसका प्रयोग छूट गया है।

अतो इसकी व्युत्पत्ति शतृ प्रत्यय 'अत' - से हुई है। यथा—पढतो, खातो, न्हातो, जातो, आदि। स्त्रीलिंग मे इसका 'अती' रूप प्रचलित है। यथा—पढती (पढ़ती), जाती, न्हाती।

अली—स० 'अवली' से व्युत्पन्न है। यथा—दिवाली < दीपावली।

आई - यह प्रत्यय सज्ञा एव विशेषण शब्दो को भाववाचक सज्ञा बनाने के काम आता है। डा० चटर्जी ने इसे सस्कृत णिजन्त आपिका > आविआ, आविअ > आवी मे व्युत्पन्न माना है।[7] डा० हार्नली के अनुसार स० त स्त्री० ता > प्रा० आ, मे निरर्थक क' जोडने से स० तिका > प्रा० दिगा, इआ > आइ, बना है।[8] लेकिन डा० वानीकान्त काकती ने इसे – ताति > प्रा० ताइ > आइ, आई से बना माना है। डा० उदयनारायण तिवारी भी इससे सहमत है।[9] – ताति प्रत्यय वैदिक भाषा मे भी उपलब्ध है। यथा—

मिष्टतिका > मिठाई, भलाई, सफाई आदि।

आको—स० 'आपक.'। यथा—सडाको, धडाको, लडाको आदि।

आडी—स० कारी > आरी के र् का ड् में परिवर्तन हो जाने पर मेवाती 'आडी' प्रत्यय बनता है। यथा—पनाडी, थाडी (मित्र), लवाडी (वाचाल), कवाडी (इधर-उधर करने वाला), खिलाडी (–खेल), गुवाडी आदि।

आड़ो—इसका विकास स० कारः से हुआ है। र् का ड् मे परिवर्तन होकर 'आडो' प्रत्यय बना। यथा—कुहाडो (< कूप+कार) कबाड़ो आदि।

आट, आंट—कुछ विद्वान इसका सम्बन्ध स० 'आहट' से मानते है परन्तु यह स० वार्त (नपु०) > वट्ट, आवट > आट घाट से बना है। यथा—कुलांट (कुल्हा+आंट), तलमलाट, झलझलाट, मलमलाट, रुआंट (रो+आंट) चिकणाट, कडवाट आदि।

आटैं—इसका प्रयोग 'लिए' अर्थ मे सजा एव सर्वनाम शब्दों के बाद होता है यथा—तेरे आटैं।

आण—'आण' प्रत्यय की व्युत्पत्ति स० आपनक > प्रा० आपण,-
ावणग्र > आपाम से हुई है। हार्नली इसे स० अनीय > प्रा० अणिग्र, अणग्र
ो हुआ मानते हैं।[10] यथा—मिलाण (मिल्+आण), बधाण (बध्+आण)
नगाण (मग्न+आण), किसाण (कृष्+आण) आदि।

आणी—(वाणी, -याणी, -णी, -ण)

यह स्त्रीलिंग का प्रत्यय है। इसका विकास संज्ञा तत्सम 'आनी' से हुआ है।
-वा तथा -या, 'आ' के ही रूप हैं। यथा—

सेठाणी	< सेठ (श्रेष्ठ)	जिठाणी	< जेठ (जेष्ठ)
ठुकराणी	< ठाकुर	द्योराणी	< देवर
पडताणी	< पडित	गुरवाणी, गुराणी	< गुरु
बणेणी, बणियाणी	< बणियों (वणिक)	जाटणी	< जाट
बिरामणी, बाह्मणी	< बाह्मण, बिरामण (ब्राह्मण)	मरेठण	< मराठो
मास्टराणी	< मासटर	भगण	< भगी
मेवणी	< मेव	मीणी	< मीणो
डाग्दरणी	< डाग्दर (डाक्टर)	मालण	< माली
धोबण	< धोबी	सेरणी	< सेर

आणो—इसकी व्युत्पत्ति स० स्थान+क (>थाणग्र>आण, आणो) से हुई है। मेवाती में इसका प्रयोग संज्ञा एवं क्रिया दोनों बनाने के काम में आता है। यथा—

संज्ञा	क्रिया
समध्याणो (समधी का स्थान)	कुकयाणो (चिल्लाना)
हरियाणो (हरि का स्थान)	हिड्याणो (चिल्लाना)
जखराणो (यक्ष का स्थान)	रिझाणो (प्रसन्न करना)

आपो—भाववाचक संज्ञा के निर्माण में इस प्रत्यय का प्रयोग होता है। इसकी व्युत्पत्ति स० त्व+स्वार्थिक प्रत्यय 'क' से हुई है: स० त्वक > प्रा० प्पग्र > पा, पो। यथा—बुढापो, रंडापो, पुजापो, जापो आदि।

आयो—यह इच्छा बोधक प्रत्यय है। इसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध है। यथा—हगायो (मल-त्याग), मुतायो, पिसायो, तिसायो (तृषित:) आदि।

आर, आरी—'आर' प्रत्यय स० -'कार' से तथा 'आरी' स० 'कारिक' से व्युत्पन्न हैं। यथा—

मे०		प्रा०		स०
खुमार, कुम्हार	<	कुम्भार	<	कुम्भकार,
लुहार	<	लोहग्रार	<	लोहकार,
चिमार	<	चम्मग्रार	<	चर्मकार
सुनार	<	सुण्णग्रार	<	स्वर्णकार
जुग्रारी	<	जुग्रारिअ	<	द्यूतकारिक,
पुजारी	<	पूजाग्रारिए	<	पूजारिक

ग्रारो - मे० ग्रारो < प्रा० - ग्रारग्रो < स० - कारकः।

यथा- पुजारो < पूजाग्रारग्रो < पूजाकारक

बिणजारो < वणिज्जग्रारग्रो < वाणिज्यकारक

आल - इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति स० 'ग्राल' से हुई है। इससे गुणवाचक शब्द बनते हैं। यथा-छिदाल < छिणण + ग्राल (व्यभिचारी)।

आलो (-रो)—इसकी व्युत्पत्ति स० 'ग्रालय' से हुई है। यथा-

सिवालो < शिवालय, दिवालो < दीपालय

सासरो < श्वसुरालय, जिदालो (-जिन्द फा० + ग्रालय) ग्रादि।

आव—इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति प्रेरणार्थक (णिच् ग्राप् + य + क से हुई है। यथा-

बचाव (बचणो), जमाव (जमणो),

भुकाव (भुकणो), छिड़काव (छिड़कणो) ग्रादि

आवट—स० ग्राप + वृत्ति > ग्रावट्ट से ग्रावट बना। यथा-

सजावट, लिखावट, रुकावट, मिलावट, बनावट ग्रादि।

आवणो—स० के ग्राप् + न + ग्रो से 'ग्रावणो' व्युत्पन्न है। इससे विशेषण शब्द बनते हैं। यथा-

डरावणो (डराणो), सुहावणो (सुहाणो)

सिलावणो (सिलाणो), पिलावणो (पिलाणो),

आस (आंस)—डा० धीरेन्द्र वर्मा इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति ग्रत्यन्त संदिग्ध मानते हैं।[11] हार्नली महोदय इसे स० 'वाञ्छा' का संक्षिप्त एवं परिवर्तित रूप मानते हैं।[12] डा० उदयनारायण तिवारी इसे स० धातु + वश से व्युत्पन्न मानते हैं। यथा-कड़वांस, मरास, मिठास, पियास, धुलवांस (धवल) ग्रादि।

इयर—इस प्रत्यय से मेवाती में केवल गुणवाचक विशेषण बनते हैं। डा० उदयनारायण तिवारी इसकी व्युत्पत्ति स० इत' से मानते हैं।[13] लेकिन डा०

भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'इत' से 'ई' या 'ईज' का विकास सभव है, 'इया' का नही। अन 'इया' की व्युत्पत्ति स० 'इतक' से सभव है।[14] यथा -

बढिया ' < वाड्ढिनअ < वर्धित + क,

घटिया < प्रा० घट्टइअ।

ईयो - इस प्रत्यय का प्रयोग कर्तृवाचक सज्ञा, देशवासीवाचक एव वस्त्र वाचक पदो के बनाने के काम आता है। इस प्रत्यय का सबध कुछ विद्वान (बीम्स, चटर्जी, वर्मा, तिवारी) स० इय, ईय, इक से मानते हैं। डा० भोलानाथ तिवारी इसे मूल प्रत्यय नही मानते अपितु सयुक्त प्रत्यय ईयक (ईय + क) मानते हैं।[15] मेरे विचार से इस प्रत्यय की व्युत्पति सयुक्त प्रत्यय 'ईयक' से ही हुई है।

यथा- जैपरियो < जयपरिअओ < जयपुरीयक

इसी तरह — दिवालियो, भीमपरियो, अलवरियो,

कर्तृवाचक सज्ञा शब्द— रसोइयो, ढोलकियो, कानवेलियो

एव वस्त्र वाचक—जाघियो (जघा) आदि।

ई—डा० उदयनारायण तिवारी[16] के अनुसार यह प्रत्यय आ. भा आ भाषा का सर्वाधिक प्रयुक्त प्रत्यय है। इसका प्रयोग विविध अर्थो मे होता है। इसमे क्रियाओ से, भाववाचक तथा कारणवाचक सज्ञाए, सज्ञापदो से विशेषण, लघुतावाचक, व्यापारवाचक तथा भाववाचक – सज्ञाए और सख्यावाचक-विशेषणो से समुदाय वाचक तथा भाववाचक सज्ञाए बनती हैं। यथा-

क्रिया से भाववाचक—

हासी (हसणो), भिडकी (भिडकणो), मरी (मरणो), बोली (बोलणो)।

क्रिया से कारणवाचक—

फासी (फासणो), चैहटी (चिपटणो)।

सज्ञा शब्दो से विशेषण—देसी (देश), मेवाती (मेवात), राठी (राठ)।

सज्ञा शब्दो से लघुत्वबोधक स्त्रीलिंग—डोरी (डोरो), कटोरी (कटोरो), ढूमली (ढूमलो), आगी (अग), चोटी, आदि।

सज्ञा शब्दो से भाववाचक—गिरहस्ती, नेकी, खेती।

सज्ञा शब्दो से व्यवसायवाचक—

तेली < तैलिक, माली < मालिक।

सख्यावाचक विशेषणो से समुदायवाचक—

बीसी (बीस), बत्तीसी (बत्तीस), पचीसी (पच्चीस), तीसी (तीस) चालीसी (चालीस), साठी (साठ)।

विशेषणो से भाववाचक—

मास्टरी (मास्टर), डाग्दरी (डाग्दर), थाणेदारी (थानेदार)।

इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत ई, ईय, इन, इक, इका तथा विदेशी प्रत्यय ई (अरबी) से हुई है। एक प्रकार से यह मिश्रित प्रत्यय है।

ईलो—इस प्रत्यय का प्रयोग विशेषण बनाने के काम आता है। इसकी व्युत्पत्ति हार्नले[17] महोदय प्राकृत रूप 'इल्ल' से मानते हैं। डा० वर्मा भी इसका समर्थन करते हैं।[18] परन्तु डा० उदयनारायण तिवारी एव डा० भोलानाथ तिवारी इसे स० इल < प्रा० इल्ल से हुआ मानते हैं। वस्तुत मेवाती प्रत्यय 'ईलो' की व्युत्पत्ति स० 'इल' मे 'क' जोडने से हुई। यथा–

छबीलो, चमकीलो, जहरीलो, खर्चीलो (खर्च अरबी), पैलो, गठीलो।

ऊ—यह सं० उक > प्रा० उअ से व्युत्पन्न हुआ है। इसका प्रयोग क्रिया मे कर्तृवाचक तथा सज्ञा से विशेषण एव लघुनाम बनाने के काम आता है। यथा–

बिगाड़ू (बिगाड), खाऊ (खाना), कमाऊ (कर्म), पिठ्ठू (पीठ), चल्लू (चलणा), पेटू (पेट), आदि।

ऊत—स० पुत्र > युत्त, उत्त > ऊत। यथा–जेठूत (ज्येष्ठ-पुत्र)।

एऊ—यह स० पति + क (पति बोधक) से व्युत्पन्न है।

यथा–बहणेऊ, नणदेऊ।

एरो—इस प्रत्यय का प्रयोग विभिन्न अर्थों मे होता है। प्रत्येक अर्थ मे इसकी व्युत्पत्ति भी भिन्न प्रत्ययो से हुई है। इसमे कर्तृवाचक, व्यवसाय सूचक, भाववाचक सज्ञा, विशेषण, तथा सबध सूचक रूप बनते हैं। प्रत्येक का विवरण निम्नलिखित प्रकार से दिया जाता है—

भाववाचक, कतवाचक—टर्नर महोदय स० अकर से व्युत्पन्न मानते हैं।[19] स० अ – कर > अ – अर > एर + ओ – एरो। डा० उदयनारायण तिवारी भी यही मानते हैं।[20] हार्नली[21] महोदय इसे स० दृश (सदृश) से जोडते हैं और डा० वर्मा इसका समर्थन करते हैं।[22] परन्तु वस्तुतः इसकी व्युत्पत्ति स० कृत (< प्रा० केर < एर + ओ) से हुई है। यथा–

कमेरो	<	कम्मएरो	<	कर्मकृत,
लुटेरो	<	लुट्टएरो	<	लुण्ठकृत

विशेषण, सबधसूचक एव स्थान सूचक—

इस अर्थ मे प्रयुक्त 'एरो' प्रत्यय की व्युत्पत्ति स० अतर > अअर > एर (+ ओ) से हुई है। यथा–

घणेरो (घनतर), भुतेरो (- बहुत - बहुत्व); भ्रघेरो, ममेरो, मामेरो, दादेरो, चचेरो, नानेरो आदि ।

सबध सूचक 'एरो' प्रत्यय स॰ कार्यक > केग्म > केर > एर (+ ओ) से व्युत्पन्न हुआ है ।

एल—इसकी व्युत्पत्ति स॰ इल > प्रा॰ इल्ल > एल से हुई है । स्त्रीलिंग का 'ई' प्रत्यय जोडने से 'एली' रूप भी बनता है । यथा—

बिगडेल, खूटेल नकेल, दलेल (दिलवाला), हथेली, पछेली, हाथेली (हल को दबाने वाली लकडी) आदि ।

ऐत—बीम्स[23] और हार्नले[24] इसका सम्बध स॰ वत्, मत् से बताते हैं । वत्, मत् का प्राकृत भाषा मे वत्, मत् बन गया । साथ ही 'इत' तथा 'इत्त' रूप भी मिलते हैं । इसमे 'अ' पूर्व लगाकर अइत, अइत्त रूप बन गए । इस अइत्त' से ही ऐत' बना है । यथा– लडैत, लठैत, डकैत आदि ।

ओ—मेवाती ओकारान्त बोली है । 'ओ' प्रत्यय का प्रयोग यहा हिन्दी के 'आ' प्रत्यय के स्थान पर प्रयुक्त किया जाता है । इस प्रत्यय से कर्मवाच्य–कृदन्त एव क्रियाजात – सज्ञा शब्द बनाये जाते हैं । व्युत्पत्ति की दृष्टि से इसका विकास इस प्रकार हुआ है ।

ओ, यो < प्रा॰ इअ + ओ < इत – त (वत) स॰

पिसायो (< पिपासित), तिसायो (< तृषित), भूको (< बुभुक्षितः) गयो (< गत) चल्यो (< चलित.) रोयो, झगडो आदि । साथ ही हिन्दी के आकारान्त सबधवाची शब्दो के स्थान पर मेवाती म ओकारान्त बन जाते हैं । यथा–

मामो, बाबो, काको, फूफो, नानो, पोतो, बेटो, छोरो आदि ।

ओकडो—इसका प्रयोग 'वाला' अर्थ मे किया जाता है । धातु के साथ यह प्रयुक्त होता है । यथा—

हसोकडो, लडोकडो, पिटोकडो ।

हिन्दी मे इसके स्थान पर 'ओड' प्रत्यय प्रयुक्त होता है ।[25] इसकी व्युत्पत्ति सदिग्ध है ।

ओलो—इसका प्रयोग लघुत्व प्रकट करने के लिए किया जाता है । यथा–खटोलो, ढकोलो । इसकी व्युत्पत्ति स॰ पोतलक > पोअलअ > ओलअ+ओ > ओलो से हुई है ।

केहनी करहनी—पूर्वकालिक क्रियाओं के साथ इसका प्रयोग होता है। यथा—वातो मार करहनी भाग्गो।

ड़ी (-ड़ो, ड़)—मेवाती में इस प्रत्यय का प्रचुर प्रयोग होता है। यह पश्चिमी राजस्थानी का प्रभाव भी कहा जा सकता है। अपभ्रंश के–ड से यह आधुनिक भाषाओं में 'ड' बन गया है। इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार है कि इस ड < – ट की व्युत्पत्ति सं० त से हुई है।[26] ब्रजभाषा के र' का मेवाती में ड' हो जाता है। यथा—गठडी (गाठरी), कोठडी (कोठरी), झोटडी, रागडी दुखडो, मुखडो, टुकडो, जीवडो, घीयड, मायड आदि।

जो (-जी)—इसकी व्युत्पत्ति सं० – जातः से हुई है। स्त्रीलिंग 'ई' प्रत्यय जोडकर स्त्रीलिंग के रुप बनाए जाते है। यथा—भाणजो, भाणजी, भतीजो, भतीजी आदि। डा० उदयनारायण तिवारी ने इन्हे भागिनेय, भागिनेया, मातृयः, भातृया. से व्युत्पन्न माना है, जो सभव प्रतीत नही होता।[27]

शेष सभी हिन्दी प्रत्यय किंचित ध्वनि-भेद से उसी अर्थ में मेवाती में भी प्रयुक्त होते हैं। विस्तार-भय से हम उनके परिवर्तित रूप ही प्रस्तुत कर रहे हैं। यथा-

हिन्दी	मेवाती	हिन्दी	मेवाती
क, अकी	अक, अकी	टू, टी	ट, टी
ता, ती	ता, ती	था, थी	थो, थी
न, नी, ना	ण, णी, णा,	पन्	पणो
पा	पो	लू	ल
वत	वत	वाँ	वो
वाल्	वाल	वाला	वालो
स्	स	सरा	सरो
-ला	-लियो, लो	-ली	-ली
वान	मान, वान्	वाल	वाल
वा	वो	वाला	वालो, वालियो
वैया	वाणियो, वैयो,	-सा	सो
हर	-र	हरा	एरा
हार	हार	हारा	हारो

☐ **विदेशी प्रत्यय**—

मेवाती में फारसी के निम्नलिखित प्रत्यय प्रयुक्त हुए हैं—

आनो—यह फारसी के 'आन' प्रत्यय से व्युत्पन्न हुआ है। यथा—
जुरमानो (दण्ड), हरजानो (हानि), निजरानो (भेंट)।

ई—यह फारसी प्रत्यय है। विशेषणों के साथ इस प्रत्यय को लगाने से भाववाचक संज्ञाएं बनती हैं। यथा—

खुश > खुशी, नेक > नेकी,
बद > बदी।

इस प्रत्यय से संज्ञाओं से अधिकार, गुण, स्थिति आदि सूचित करने वाली संज्ञाएं बनती हैं। यथा—

इमामी (नेतागिरी), नवाबी, सोदागरी, दुसमनी आदि।

खानो—इसकी व्युत्पत्ति फारसी खान (स्थानवाची प्रत्यय) से हुई है। यथा—सफाखानो (अस्पताल), डाकखानो।

खोर—इसका उत्पत्ति फारसी के खोर (खाने वाला) प्रत्यय से हुई है। यथा-चुगलखोर, हरामखोर।

गर—यह प्रत्यय फारसी 'गर' (वाला) से व्युत्पन्न है यथा-सौदागर, कारीगर।

दार—इसका मूल फारसी का 'दार' (वाला) प्रत्यय है। यथा—
मालदार, चटाकदार (चमक वाला), सिरदार, लम्बडदार, थाणेदार, जेलदार, दुकनदार, चौकीदार, समझदार, इमानदार आदि।

बन्द—फारसी प्रत्यय 'बन्द' से व्युत्पन्न है। यथा—निजरबन्द।

अर—इसका मूल फारसी 'वर' (वाला) है, यथा—
दिलबर (दिलवर), पैगम्बर (ईश्वर का सदेश वाहक), जनभर (जानवर)।

बाज—इस प्रत्यय का मूल फारसी 'बाज' (करने वाला) है। यथा—
चालबाज, धोकेबाज, मुकदमाबाज आदि।
मेवाती में अरबी एवं अंग्रेजी प्रत्ययों का अभाव पाया जाता है।

☐ उपसर्ग—

तद्भव एवं तत्सम—

मेवाती में तद्भव एवं तत्सम उपसर्गों की संख्या बहुत कम है। नीचे उनका विवरण दिया जाता है—

अ—इस उपसर्ग का प्रयोग मेवाती में 'अधिक' तथा 'रहित' अर्थों में किया जाता है। संस्कृत का आदि 'अ' मेवाती में भी 'अ' ही रहता है, परन्तु कभी-कभी 'इ' में परिवर्तित हो जाता है। यथा—

अवार, अमेर (अधिक देर) इन्याव (अन्याय), इन्यायी (अन्यायी), अमोलो (अमूल्य), अमीता अधिक), अलख (अलक्ष्य), अनीत (अनीति)।

अण—इसका विकास स० 'न' से हुआ है। 'न' ही 'अन' मे परिवर्तित हो गया है। यथा—

अणजाण, अणदेख्या, अणगिणत।

अत—स० के 'अति' उपसर्ग से मेवाती 'अत' बना है। यथा—

अत को भलो ना बरसणो, अत की भली न धूप।
अत को भलो ना बोलणो, अत की भली ना चुप्प। (बोली)

उ—इसकी व्युत्पत्ति स० के 'उत्' या 'उद्' उपसर्ग से हुई है। यथा—
उघाडो (उद्घाटय), उपडो (उत्पाट्य), उछटणो, उधेडी आदि।

ओ—स० का 'अव' मेवाती मे 'ओ' हो जाता है यथा—
ओगण (अवगुण), ओसाण (अवसान, ओसरो (अवसर), ओलमो, (अवलम्ब), ओतार (अवतार) आदि।

क, कु—स० 'कु (बुरा)' मेवाती 'कु' और 'क' रूपो मे प्रयुक्त होता है। यथा—
कुलच्छणो (बुरे लक्षणो वाला), कुपत्तो (बुरा), कुठोड (बुरा स्थान), कुगैले (बुरे रास्ते), कसूतो (बुरा), कपूत (कुपुत्र)।

न—स० 'निः' से मेवाती 'न' बना है। यथा—नपूतो (नि पुत्र)।

बि—स० 'वि' का मेवाती मे 'बि' हो गया। यथा—
बिराणी (दूसरे की) बिवाद (विवाद), बिसरणो (विस्मरण), बिछटणो, बिदेस आदि।

सिन्—यह उहसर्ग स० 'सम्' से व्युत्पन्न है। यथा—
सिन्तोख (सतोष), सिन्यासी (न्यासी), सिंजोग (सयोग)।

स—स० 'सु' से मेवाती 'स' उपसर्ग बना है। यथा—
सपूत (सुपुत्र), समृति (सुमति)।

विदेशी उपसर्ग—

मेवाती मे विदेशी उपसर्गों मे केवल फारसी उपसर्गों का प्रयोग देखने को मिला है। यथा—

कम—यथा-कमजोर, कमवसत, कमसल (कमअसल)।

खुश—यथा-खुसाल (खुशहाल)।

ग़ैर—यथा-गैरहाजर, गैरजिम्मेदार, गैरमुलक, गैरकौम, गैरआदमी, गैरमरद आदि।

बद—यथा-बदनाम, बदमास, बदचलन आदि।

बे—इसका मूल फारसी 'बे' (बिना) है। यथा—
बेहिसाब, बेफिजूल, बेहीमान, बेबात, बेरूप, बेकार, बेज्जत आदि।

□

□ संदर्भ-संकेत—

1. हि. प्र वि, पृ० 20 (2) हि व्या., अनु० 433, 435
3 हि. भा. इ., अनु० 192, पृ० 231 (4) वही. अनु० 179, पृ० 227
5. हि. भा. उ. वि, पृ० 398, अनु० 192
6. हि भा. इ., अनु० 178, पृ० 226
7. ओ. डे. बें, अनु० 402 (8) ई. हि. ग्रा, अनु० 333
9. हि. भा. उ. वि., पृ० 403, अनु० 201
10. क ग्रा. गो., अनु० 321, पृ० 153
11. हि. भा. इ., अनु० 200, पृ० 233 (12) ई. हि. ग्रा., अनु० 283
13 हि. भा. उ. वि., पृ० 410, अनु० 224 (14) हि भा, पृ० 136 (इतिहास)
15. वही (16) हि. भा. उ. वि, पृ० 411, अनु० 227
17. ई. हि. ग्रा., अनु० 242 (18) हि. भा. इ., अनु० 206, पृ० 235
19 ने. हि., पृ० 249 (20) हि. भा. उ. वि., पृ० 414, अनु० 43
21. ई. हि. ग्रा. अनु० 251, 217, 218
22. हि. भा. इ., पृ० 235, अनु० 207 (23) क. ग्रा. भा., खंड 2, अनु० 20
24. ई. हि. ग्रा., अनु० 240 (25) हि. भा. इ., पृ० 236, अनु० 209
26. हि. भा. उ. वि., पृ० 418, अनु० 242 (27) हि भा., तिवारी, पृ० 138

□

अधिक है। बोलचाल की मेवाती मे तो तत्सम शब्द नगण्य ही कहे जायेंगे मे तद्भव शब्दो का अगाध भण्डार है।

3 अर्द्धतत्सम—

जो सस्कृत शब्द मध्य भारतीय आर्य भाषाओ से नव्य भारत भाषाओ मे विकसित हुए हैं वे 'अर्द्धतत्सम' कहलाते है। डा० श्याम सुन्दर अनुसार 'इनके अन्तर्गत वे सब सस्कृत शब्द आते है जिनका प्राकृत भा युक्त विकर्ष (सयुक्त वर्णों का विश्लेषण) या प्रतिभा समान वर्ण-विकार भिन्न रूप हो गया है।'[5] ऐसे शब्दो मे जैसे—अग्या < आज्ञा, ईमृत < अन्तरजामी < अन्तर्यामी, कपूर < कर्पूर, किसन < कृष्ण छेम प्रजापत < प्रजापति, करम < कर्म, तिरिया < त्रिया, दादर < वासक < वासुकी आदि हैं।

4 देशज—

मेवाती अपने देशज या स्थानीय शब्दो से अत्यधिक सम्पन्न है सामाजिक रीति-रिवाजो, खान पान, कृषि-मजदूरी, वस्त्राभूषण, दैनिक काम मे आने वाली वस्तुओ आदि से सम्बधित अनेक स्वतन्त्र शब्द मिलते हैं, सम्बन्ध तत्सम, अर्द्ध तत्सम या तद्भव किसी से भी नही जोडा जा सकता। रूपेण स्थानीय हैं। ऐसे शब्दो की व्युत्पत्ति अज्ञात रहती है। इन्हे देशज क

डा० चटर्जी के अनुसार 'कुछ शब्द ऐसे है जिनके स्रोत का पता नहीं जो न तो भारतीय आर्य भाषा के ही है और न विशिष्ट रूप से विदेशी ही जिनका हम अपने ज्ञान की वर्तमान स्थिति मे किसी भारतीय आर्येत्तर भाषा- से भी सम्बन्ध नही जोड पाते।'[6] मेवाती के देशज शब्दो की एक लम्बी सूची प्र जा सकती है परन्तु यहा कुछ उदाहरण ही प्रस्तुत करते हैं, यथा-डिड्डावें (चिल भरोटा (लकडी या घास का रस्सी मे बधा समूह), माऊ (तरफ), उगेलू (उध ऊणो (बकरी का बच्चा), ओखड (चाक से रस्सी का उतरना), कुएक मे कुछ गिर जाना), कूरडा (मिट्टी का बर्तन), कोली (बाहो मे भरना), (घोकनी), गाठो (परवाह करना), गेडो (देर), छण (हाथ का गहना), (चूरा डाले हुए चावल), भगर (लू), भब्बा (गहना विशेष), भर (बडा भेला (सिर पर बाधने की डोरी), टांडा (गायों का समूह), टोरडो (बच्चा), टायरो (बेकार), टोला (पत्थर), डबना (ढकना), डोगा (डमला (मिट्टी का बर्तन, जिसमे खाना खाते हैं), ढाप (एक प्रकार का का बर्तन), तेर्ने (प्रात. काल), ढोकला (दही बिलोने का बर्तन), ढोमरी (

खाने का बर्तन), तगड़ (कुए मे पत्थर ले जाने के लिए काष्ट-पात्र), तुगली (स्त्री के कान का गहना), न्हावडो (गर्म पानी का बर्तन), पछेली (विधवा के हाथ का गहना), पिन्हाडी (लकडी का बना हल का अगला भाग), पेंहटामोड फावडा), पगो (ईख का टुकडा), बोगा (चारे का छप्पर), बाढ ईख), बोना ऊट का बच्चा) बाडी (एक गहना विशेष), बलाहा (स्त्री का एक गहना विशेष), मखेना (बैलो की आंखो पर बाघने का चमडे का पट्टा), रतवाई (गीत-विधा विशेष), लोहका (लोमडी), सटेटो (सारा), साणक (बर्तन विशेष), सैदक (सीधा), हमेल गले का रुपयो (सिक्का) का बना आभूषण) आदि ।

शताब्दियो से हिन्दी-भाषी क्षेत्र पर विदेशी भाषा भाषियो का आधिपत्य रहा है । आठवीं शताब्दी मे अरबो ने सिंध-विजय कर भारत के पश्चिमी प्रदेशो म अपना अधिकार कर लिया था । परन्तु उस समय भाषा, कला एव परम्परा पर कोई स्थायी प्रभाव नही पड सका । 11 वीं सदी म तुर्क आक्राता आये । महमूद गजनवी ने 1018 ई० मे पजाब मे प्रवेश कर लिया था तथा दोआब के मध्य क्षेत्र पर आक्रमण किया था । मथुरा, कन्नौज एव ग्वालियर तक का प्रदेश उसके अधिकार मे आ गया । 12 वी शताब्दी म मुहम्मद गौरी आया और उसने समस्त हिन्दी-क्षेत्र को पदाक्रात कर दिया । दिल्ली क तत्कालिक शासक पृथ्वीराज चौहान की हार हुई । तभी से लेकर दिल्ली विदेशी बादशाहो की राजधानी बनी । मुस्लिम शासन स्थापित होने से फारसी राजभाषा घोषित हुई । इसमे राज-काज, व्यापार तथा प्रशासन मे अरबी-फारसी शब्दावली का प्रयोग प्रारम्भ हुआ । इस प्रयोग को बल मिला इस्लाम धर्म के प्रचार से । इस प्रकार अरबी-फारसी शब्दो की सहायता से 13-15 वी शताब्दियो के मध्य हिन्दी की उर्दू शैली का उद्भव हो गया था । मेवात दिल्ली का ठीक पडोसी प्रदेश है, अत उस पर इन विदेशी भाषाओं का सीधा प्रभाव पड़ा है ।

16 वी-17 वीं शताब्दी मे पुर्तगाली आये । उनका प्रभाव अधिक न हो सका । इसके बाद फ्रेंच और अग्रेज आये । परिणामत 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ मे हिन्दी क्षेत्र पर अग्रेजो का आधिपत्य हो गया । अग्रेजी राजभाषा बनी । शिक्षा-दीक्षा की भाषा भी अब अग्रेजी ही थी । फलत पुर्तगाली, फ्रेंच की अपेक्षा अग्रेजी का प्रभाव अधिक व्यापक पडा ।[7]

तत्सम और तद्भव शब्दो के अतिरिक्त मेवाती में ऐसे शब्द भी हैं जिनका मूल उत्स अरबी, फारसी, अग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रेंच आदि भाषाओ मे है ।

मेवाती मे देशान्तर की भाषाओं के शब्द प्रधानत दो स्त्रोतो से आये है—

जिस प्रकार मुसलमानों का भारत पर शासन रहा उसी प्रकार अंग्रेजों का भी। दोनों के शासक होने के कारण एक प्रकार का शब्द-समूह इनकी भाषाओं से विभिन्न बोलियों में आया। हिन्दी की बोलियां भी इससे बच न सकीं। विदेशी शब्दों को दो सारणियों में विभक्त कर सकते हैं—

(क) विदेशी संस्थाओं, जैसे—कचहरी, फौज स्कूल, धर्म आदि से सम्बन्धित

(ख) विदेशी प्रभाव-प्रसूत नई वस्तुओं के नाम, जैसे—नये पहनावे, खाने यन्त्र तथा खेल आदि वस्तुओं के नाम।[8]

☐ अरबी-फारसी प्रभाव

इस प्रभाव के अन्तर्गत अरबी, फारसी, तुर्की आदि ईरानी भाषा के शब्द आते हैं। यह प्रभाव प्रायः सभी आ. भा. भाषाओं में पाया जाता है। नीचे कुछ ऐसे ही शब्दों की सूची दी जा रही है जिनका मेवाती में प्रयोग मिलता है। यथा—

अमानतीया, अमल, अक्ल, अकीन, अदना, अदब, अब्बा, अरज, अल्ला, असनाई, अकोड, अजमल, अजाब, अजीज, अदालत, अमन, अमरप, अरजगुजारी, अरदास, अरस, अलाम, अवादो, आवाज।

आसक, आसामी, आमीलान, आरसी, आसान, आमलान।

इमान, इमामी, इम्तारी, इल्लिल्ला, इतवारी, इतवार।

ईद, ईमान, इलाई, ईल्म।

उगम्तानो, उम्मर, उनमान, उमाहे, उमोर, उली, उसीले, उजर, उमेदवार।

ओलियो, ओखात, औवलि।

कमर, कल्लाम, कलाम, कवर, कबूल, कलमो, कवायद, कसर, कसूतो, कचेंडी, कबरिस्तान, कफन, कबाब, कमायो, करामात, करार, कलमो, किला।

कामगर, काजी, कानूनगोह, कायदे, कायम, काया। कुतब, कुफर, कुरान, मे . कोल, कुफार, खलस, खरची, खता, खलक, खब्बार, खसवोई, खसम, खातर, ख्याल, (धोंक-रुशर्जे, ख्वाब, ख्वाबी, खाविंदा, खाँ, खास, खाडे, खानेजाद, खासा, खिजमतगार, (चूरा डालमा. खुदा, खुसामद, खुसी, खुसाली, खुदरत, खुदी, खुमाल, खूब, खूसनी, खैरात, भेला (सिर परेगी।

बच्चा), टायरो (● गलत, गफलत, गद्दारी, गढ़, गाजी, गाफल, गिला, गुना(ह), गमराई, ढमला (मिट्टी का बर्तन, गुलीबद, गैर, गौस, चकला, चकू, चट्ट चट्टाकदार, चाबक, का बर्तन), ढेरेई (प्रातः काल।

चरा, अबराईल, जमानो, जरब, ज्याब, जाप्त, जागीर,
चेद. जिल्सा, जिहान, जुल्वा, जुबाब, जुमेरात, जुम्मा,

जुलाब, जुलमजर्बा, जोर, टोपी, तक्दीर, तकमीर, तखत, तख्तनपत, तसबीर, तहमद, तलास, तनखाहा, तलब, तरेता, (नारी), तबाक, तवड, तरास, तगादा, तमासो, तमसइ, तास, तुरक, तुरबत, तूहमत, तोप, तोबा, तमाम, तलाक, तामीद, तसदीयो, तरदुद, तालुके ।

दस्तगाई, दरकार, दहमत, दरगाह, दरपत, दरद, दरहाल, दाग, दाज, दाम, दाव, दावा, दस्तूर, दारु, दाख, दीवान, दीवार, दीन, दुहाग, दुसमन दुवा, दुहाई, दुरवेसी, दुरमत, दुरस्त, दोजग ।

नगारे, नकल, नक्स, नवकाल, नफस, नफा, नबाव, नसा, नबी, न्यामत, नाहक, नादानी, नादर, निवाज, निजरबद, निकाह, निजर, नुक्तो, नेसानी, नोनद । नोरगसह नेकी, नोपत (नोवत) ।

प्रगना, पडदा, पडदोपोस, परसद, परहक, पाख (पाक), पुख्ता, पुस्त, पुलाव, पेस, पेसानी, पेसी, पातिसाह, पैदायस, फरद, फते फरज, फरमादिया, फरम, फकर, फकीर, फदा, फिरस्ते, फिजूल, फुरमावे, फुलायो, फौज, फौजदार ।

बक्वास बकरीद, बद, बदन, बक्सो, बहादुर, बग (भग), बदर्गा, बखत, बन्दोवस्त, बादसा, बिसमिल्ला, बाबल, बुरखा, बेवकूफ, बेताब, बेहोस, बुजरग, बदस्तूर ।

मुजरो मेवा, मलीक, मजल, महजद, महबूब, मलूक, महलायत, मालग, माल, माफक मिहर, मिसाल, मुसक्ल, मकाम, मुकदम, मुलक, मुलाखात, मुल्ला, मुसल्ला, मुसलमानी, मुहर, मुकाम, मुकरिर, माफ, मीया, मुगद, मुगल, मुरदा, मुलक, मुस्ताक, मुस्तकीन, मोहताज, मौजे, मरजी, महरवानी, मालिक ।

रसूल, रजा, रजाई, रव, रवाज, रसूल, रसूलहा, रिजक रियात, रिसालो, रुजगारी, रोबा, रोटी, लगाम, लगमात ।

यादीदासती । वगासी, वसासत, वस्नी ।

सेतक, सामिल, समक्त, सक्सा, सपा, सफाई, सराफ (शराब), सरमाना, सरदार, सरद, (सरहद), सल्ला, सिलखार, साफ, साबिक, सरजाम, साहर (शायर), सिकल (धगारी), सिकार, सुबरात, सुबान, सिरदार, स्माचार, शरम, साहिब ।

हासल, हिस्सेदार, हदीस, हराम, हलक, हाकम, हाग, हुमन, हुसियार, हक, हरम, हजरतो, हुजूर, हुक्म, हिम्मत, हुमाय ।

ये सारे उदाहरण भाषा के ध्वनि विकास के भिन्न-भिन्न भेदों के अन्तर्गत आते हैं। अरबी-फारसी से आए हुए शब्दों में आगम, विपर्यय और लोप सम्बन्धी भेद भी प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं, जैसे मर्द से मरद, नजर से निजर, फर्ज़ से फरज, पर्दा से पडदा, बुजर्ग से बुजरग ।

(2) यूरोपीय प्रभाव—

गत शताब्दियों मे हिन्दी और उनकी बोलियो मे अंग्रेजी, फ्रैंच, पुर्तगीज आदि भाषाओ के शब्द समाविष्ट होते रहे है। विदेशी भाषाओ मे, अरबी-फारसी के बाद अंग्रेजी शब्द-समूह का स्थान है। नये आविष्कारो, वस्तुओ, वस्त्रो आदि के साथ नये अंग्रेजी के शब्दो का प्रचलन मेवाती मे जनसाधारण के द्वारा निम्न प्रकार से है—

अंग्रेजी शब्द—आपसर, कलट्टर, कारबन, गोरमिंट, जज्ज, टरालीन, टिकट टीप (ट्यूब), टेसण (स्टेशन), टैक्टर, टैर (टायर), टैम (टाइम), डाकडर, पम्प, पलटण, पालिस, पासबोट, पिन्चर, पुलस, पैन्ट फैसन, बास्कट, बक बुरसैंट बोट, बूट, मा'टर मिट, मैम, मीटर, रिजट्टर, रेल, रेडियो, लाइलोन, (नाइलोन), लेडीमिस्टर, साईकल, सिगरट, सूठ (सूट), सटर, हरमनिया।

प्राय. सभी अंग्रेजी शब्द मेवाती मे 'तद्भव' रूप मे ही समाविष्ट हो सके हैं। उपर्युक्त उदाहरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि शब्दो के ध्वन्यात्मक विकास मे आगम, विपर्यय लोप और विकार के नियमो मे से कोई एक नियम एक शब्द के रूप-परिवर्तन होने मे नही लगता, वरन् एकाधिक नियम एक साथ प्रस्तुत होते है। ये परिवर्तन कुछ उच्चारण सौकर्य, कुछ ध्वनि साम्य और कुछ भिन्नाक्षर शब्दो के कारण होते है।

अन्त मे, मेवाती साहित्यिक भाषा नही है। इसका अत्यल्प साहित्य ही अभी प्रकाश मे आया है। अतः हमने कुछ साहित्यिक कृतियो एव कुछ लोक-भाषा से शब्द-सचय किया है। अपने अध्ययन के दौरान मैंने करीब पाच हजार शब्द एकत्रित किये हैं, जिनमे करीब तीन हजार लोकभाषा से तथा दो हजार साहित्यिक कृतियो से हैं। इस शब्द-सूची से करीब पाच सौ शब्द यहा प्रस्तुत किए जाते है। यह बता ही चुके है कि शब्द सूची सदैव सम्मिश्रित रहती है। अतः इन शब्दो में यह सम्मिश्रण देखा जा सकता है। इस शब्द-कोश मे मुख्यत उन शब्दो को स्थान मिला है जो मेवात-प्रदेश मे वर्तमान काल तक बहुत प्रचलित रहे हैं। शब्दो को अकारादि-क्रम से प्रस्तुत किया गया है। अनेक शब्द विदेशी भाषाओ के भी हैं, परन्तु उनमे इतना अधिक ध्वन्यात्मक परिवर्तन आ गया है कि अब वे लोक-भाषा के स्वरूप को ही प्रतिबिम्बित करते हैं।

अ

अकड़ो=जोरदार

अकोड = रिश्वत

अखाड़ो = मैदान

अगास, अग्गास = आकाश

अघाई = तृप्त

अड़ीलो = हठ पकड़ने वाले

अडे = झगडे — अछपल = चुलबुला
अजड = स्वर्ण–जडित — अटकी = रुकी, खडी हुई
अटरो = भिड जाना, बातचीत करना — अठगठिया = स्त्रियो के पैर का आभूषण
अदपरे, = मध्य मे — अदना = नाटे कद का
अदब = गुप्तांग — अधर = बीच मे
अनड = पूर्व, अखण्ड — अनी = सना
अफारो = पेट का वायु रोग — अमानो = उद्दण्ड
अमीना = अधिक, बहुत सा — अमोलो = अमूल्य
अरजुल्ला = जमीन — अलायो = गदा
अलख = अलक्ष्य — अस्ताई = टेक कडी
अस्तल = साधुओ का स्थान — असनाव = रिश्तेदार
अहारा = अगीठी — अवार = देर
अक = अक्षर भाग्य-लेख — अडी = एरण्ड
अघेरी = बैलो की आखो पर बाधो जाने वाली चमडे की पट्टी।

आ

आटै = लिए — आडो = पीठ देना, नीचे गिरा देना
आण = प्रतिज्ञा — आरेज = क्षेत्र विशेष
आरयो = लम्बी शक्ल ककडी — आंकिल = साड, वृषभ
आखडो = आक का पेड — आगली = अगुली
आच = अग्नि — आंट = अडचन

इ, ई

इकन्त = एकान्त — इकसार = एक जैसे
इमामी = प्रसिद्ध — ईसुर = ईश्वर

उ

उ = वह — उकासो = उठाया
उगस्तानो = जादू का अगूठे का छल्ला — उगेंलू = उधर को
उघड = खुलना — उघाडो = नग्न
उछट = छूटना — उछाह = उत्सव
उजाड = बजड — उतारो = जादू टोना
उदालो = प्रकाश — उधेडी = खोली, उतारी
उपला = कन्डे (गोबर के) — उपहा = निकला
उपायो = सोचा — उबीनी = बिना बिछाये या नगे पैर

उमाह = प्रसन्न हृदय
उरना = भेड का बच्च
उरधार = उद्धार
उसारो = खोदा

ऊ

ऊघन्ते = उदित होते हुए
ऊत = मूख, कुपुत्र
ऊठ बैठ = मिलना-जुलना
ऊणो = बकरी का ब

ओ

ओखड = चाक से रस्सी का उतरना
ओगण = अवगुण
ओगाल = जुगाली करना
ओड = सिरा, तरफ
ओड पास = चारों ओर
ओछा = छोटा, अल्प
ओभू = दुबारा, फिर से
ओरा = हल से बीज ब
ओलम्बो = उल्हाना
ओसरो = बारी, अवस
ओसान = मौका

औ

औंडी = गहरी
औतर = अवतरित हो
औंधा = नीचे मुख मे

क

कड = कमर
कडछू = लकडी का ब
कडा = चादी या सिल्वर का हाथ का गहना
कडाई = कडाही
कडी = कमर
कडूला = हाथ का चा
कछूक = थोडे
कद = कब
करतमकर्ता = सर्वे सर्वा
करक = विष्टा
करणी = कर्म
कल = ससार
कलायण = मोर
कलोठ = करवट
कवायद = परेड
कसर = कमी
कसूतो = बुरा
कचेडी = कचहरी
कठला = कण्ठाभूषण
कडीली = मिट्टी का तव
काको = चाचा
काचवा = कछुवा
काचली = केंचुल
काची = कच्ची
काचेडा = कच्चा
काटो = कील
काढो = निकाला
काण = लाज-शर्म
काणो = एक आख का
काना = किनारा
कामण = कामिनी
कामली = कम्बल
काल = अकाल
कांवला = कौवे

काहाणी = कहानी
कित = कहा
किरकली = किरकिरी
कुक्यायो = चिल्लाया
कुज = धान रखने की मिट्टी की कोठी
कुलाट = कुलचची लेना
कोरडा = कोडा
कोली = भुज-बन्धन
कोरी = नई
कठा = बैलो के गले की माला

कीडी = चीटी
किमै=कुछ
किराम्रो = किराया
कुगैले = बुरे रास्ते
कुठोड = बुरी जगह
कैडो = मजबूत, कठिन
कोल = वचन, वायदा
कोर = कपडे का टुक डा
काचरी = कोतरी
कगला = भिखारी

ख

खटपाटी = कोप-भवन मे जाना
खरक = बकरियो का बाडा
खलखुला = ससार
खलक = ससार
खव्वो = कन्धा
खिण्ड खिण्ड = बिखर जाना
खुड्डी = बर्तन विशेष
खूटैल = खतरनाक
खोइ = शरीर

खदाणो = भेजना
खरड-खरड = पानी बहने की म्रावाज
खलकत = ससार
खलावर = धौंकनी
खिन-खिन = घृणा-सूचक
खिलवाल = गडरिया
खुमट = जलन, ईर्ष्या
खूटनो = खुलना
खोट = बुराई
खोस = छीनना

ग

गलेठी = दूध निकालने का बर्तन
गट्ड = गद्दा
गडवो = लौटा
गपोडा = गप्प मारना
गावगैले = ग्राम देव
गाबरू = जवान
गिदावडा = पर्वत के पास की कटी-भूमि
गुदरई = हाथ-पैरो पर (गुदी) लिखी हुई
गूझ = अगूठी
गेडो = देर से

गल्ला = ग्रास
गदका = वस्त्र विशेष
गाढा = शख्त, गहरा, अधिक
गाफल = मदहोश
गाभा = कपडा
गांठना = परवाह करना
गींदवा = तकिया
गूठला = पैरो की अगूठी
गेरनो = डालना

गँट = गरुड़ गोला = बड़ा घड़ा
गडी = दीपावली के अवसर पर मोर पखो से बनी पशुओ की माला।
गजी = गुड़ और चावल को एक साथ पकाना
गडो = ईख का पौदा

घ

घड़ी = समय (सज्ञा) समय सूचक यत्र घणी = बहुत
घमालो = कछडा घाडी = घोड़ी
घाट=छिलका उतारे हुए जौ घुली=उलझी हुइ
घूघरी=उबले हुए गेहू घेसलो=मोटी लकड़ी
घोघू=उल्लू

च

चकत्ता=अग्रेज चगा=स्वस्थ
चट्ट=समाप्त चटावदार=छीटेवाली
चटियो=छोटा कुल्हाडा चणा=चने
चलस=चरस (कुए से पानी निकालने हेतु काम मे लाया जाने वाला चमड़
चाकी=चक्की चामचीड=चमगादड
चिपकणा=गहना विशेप चीहिंद्या=श्मशान
चुणकली=सब्जी का नाम चूलू=चिडिया की चहचाहट
चेपा=सरसो का कीडा चोगुडदे=चारो ओर, चौगर्दे

छ

छगाल=छलाग छटी=छडी
छणा=गहना विशेष छन्नी=हाथ का गहना
छपँ=छिपना छल्ला=हाथ का गहना
छलियाही=छली (स्त्री) छाद=छान छप्पर
छानो=छिपा हुआ छूछक=पुत्री को पुत्र या पुत्री होने पर
छीतरा=टोकरी जाने वाली भेंट
छैलकडा=गहना विशेष छँडी=रास्ता, छिद्र
छोला=हरे चने छोरेट=बच्चे

ज

जगतण = वेश्या जरब = धन माल
जरदा = बूरा डाले हुए चावल जित्री = तारीफ
जिद = बात, चर्चा जीद = घोडे की जीन
जीतब = जीवन जुवना = यौवन

जुझारी = योद्धा
जूतम जर्वा = जूतो से लडना
जेवडो = रस्सा
जोद्दा = योद्धा
जेघड = ऊपर नीचे पानी के भरे घड़े
जोड = जलाना (दीपक)
जग = बैलो के गले की घटी

झ

झगर = गर्मी, लू
झर = बडा घडा
झलका = चमक
झाडो = टोना, मन्त्र फूकना
झालो = हाथ के इशारे से बुलाना
झाटा = कमजोर
झींन = जिसको
झूमका = कान का गहना
झब्बा = गहना विशेष
झल = लपटें
झाड = बेर का पेड
झाँझण = पैर का गहना
झीडा = वृक्ष विशेष
झूल = बैलो को ओढाने का वस्त्र
झेला = बैलो के सिर पर बाधी जाने वाली डोरी
झेली = चिमटानुमा काटे उठाने की लकडी

ट

टपकार = नजर लगना
टीप = ट्यूब (अग्रेजी)
टूटी = नल
टोटरू = पक्षी विशेष
टुलक = गुदगुदी
टँट = सिर
टोडरू = पक्षी विशेष
टीलो = पत्थर

ठ

ठट्ठड = ठटरी
ठाडो = बलवान
ठोठ = मूर्ख
ठाह = जबरन
ठाए = स्थान
ठोड = स्थान

ड

डटणो = ठहरना
डहर = शस्य जमीन
डाट = रोक
डिडावं = चिल्लाना
डोकरी = माता, बुढिया
डबना = दूध ढकने का मिट्टी का ढक्कन
डहला = बडी-ऊँची खाट
डाब = दर्भ, कुश
डूहा = दोहा
डोगा = नौका

ढ

ढब = ढग
ढमला = मिट्टी का कटोरा
ढूके = घुसे
ढब्बर = गदे पानी का खड्डा
ढाप = मिट्टी का बर्तन
ढूमला = कागज की लुगदी से बना बर्तन

ढुमरी = रसोई का बर्तन विशेष
ढैम = मिट्टी का ढेला
ढोमरी = मृद्-पात्र, जिसमें बारात चावल खाती है।
ढोर = पशु

डेरेई = प्रातः काल
ढोकला = दही बिलोने का पात्र

त

तकसीर = गलती
तलछू-मलछू = तडपना
तबाक = मिट्टी का तश्तरी नुमा पात्र
तबड = अल्मूनीयम की बड़ी तश्तरी
तोडा = गहना विशेष
तोतई = तोते के रंग का

तगड = कुए मे पत्थर ले जाने के लिए लकडी की बनाई गई टोकरी।
तामडी = तांबे का घड़ा बर्तन
तुगली = कान का आभूषण
तोडी = तक (अव्यय)

थ

थडी = स्थान
थहराय = कांपकर
थावर = शनिवार

थरपो = स्थापना
थाडी = थाली
थेपणो = कण्डे बनाना

द

दगडो = रास्ता
दलक = झटका
दीन = धर्म
दुमी = दुमुही
दूहरी = दोहरी

दरकार = आवश्यकता
दलेल = बहादुर, दिलेर
दुलडी = माला
दोगडा = कभी कभी वर्षा
दोसी = सहेली

ध

धडी = पांच सेर
धसो = घुसा
धाणी = भुने हुए जौ
धीग = मालदार
धेलो = पैसा

धरकार = धिक्कार
धाडो = लूट
धायो = तृप्त हुआ
धामण = मिट्टी खाने वाला सांप
धूधूआर = गला फाड कर चिल्लाना

न

नकचूंटो = लोहे की चिमटी
नक्काल = नकलची
नहना = छोटा
नासी = नष्ट होने वाला

नवकस = गले का आभूषण
नफस = मन
नाट = इन्कार
न्हावडो = पानी का बर्तन

नीडँ = निकट
नू = नाखून
नेवरी = गहना विशेष
नौघण = नवलडियो का हार

नूण = नमक
नेजू = रस्सी
नैंवा = हुक्के का अ ग
नौसा – दूल्हा

प

पई = पास
पग = पैर
पडे = गिरे
पचियाया – थक चुके
पचमेल = पाच तरह की
पछेली = विधवाओ के हाथ का गहना
पण = पुन
पन = इज्जत
पत्ता = औरतो के कान का गहना
परचा = चमत्कार
पल्टी = रसोई का बर्तन विशेष
पलको = चमका
पाढना = पता लगाना
पिल्ली = कुत्ती की बच्ची
पी = प्रिय, पति
पुडत = तह
पूरदेणों = लगा देना
पैंडा = रास्ता

पडदा – पर्दे
पडदो पोस – किसी रहस्य या बुराई पर पर्दा डालना
पडो – है
पचपीर – लोकदेव विशेष
पचमणियो – आभूषण विशेष (गले का)
पडरेट – भैंस का बच्चा स्त्री० पड्डी)
पणहा – जूती
पतडी – चादी की पत्ती जो अक्सर दात कुरेदने के काम आती है।
परेलू = परली तरफ
पला – घी निकालने का चमचा
पिन्हाडी – लकडी की हल की फाल
पिए – पास, किनारे
पीए – पास, किनारे
पूठवाल – पहरेदार
पैंहटा मोड – फावडा

फ

फट फट = मोटर साइकिल
फाली = पहेली
फुलक = कोपल
फूस = पौष
फेंटा = साफा
फोकट= खालिस

फाल – हल का लोहे का कुश
फिरागत – लघुशका
फुलाक – छलाग
फेंटा – बैलों के सीगो पर शृंगार हेतु बाँधी जाने वाला रगीन रेशमी कपडा।

ब

बगद = फिर, दुबारा
बगेलो = फेंका

बडवो = घुसना
बचदेर = शीघ्र ही

बडसी = बांटे का
बजमारो = वज्र का मारा
बटाऊ = राहगीर
बणेणी = बनियानी
बधाय = बढाकर
बमी = साप का बिल
बभेकी = विवेकी
बलावँ = खेत मे पानी देना
बहीर = फौज
बाकली = उबले हुए गेहु-चने
बिचोलो = मध्यस्थ
बाढ = ईख
बाघाली = तलवार
बिगसी = सडने लगी
बिछट = बिलग
बिणजी = वाणिज्य
बिणजार = साड
बिनह = विनय
बिरहली = विरहणी
बिसेरो = दुखदायी फोडा
बीजो = रकम
बीहमाता = विमाता
बेगा = शीघ्र
बैसुन्दर = वसुन्धरा (पृथ्वी)
बोहरा = व्यवहारी

बटला = मटर
बडेडा = बडेवाला
बडनार = अच्छे कुल की स्त्री, सुन्दर नारी
बदलाव = उत्तर
बदी = अमावस्या, शैतानी
बबरो = घुसा
बरना = रगीन
बला = हाथ के कडे
बाकरी = बकरी
बाखल = अन्दर की जगह
बाट = रास्ता, प्रतीक्षा
बाण = आदत, रस्सी
बालो = नादान, भोला, चालक
बिखातणा = बिकना
बिटौडो = गोबर से लिपा हुआ कण्डो का ढेर
बिधाया = कानो मे छिद्र करवाना
बिराणी = दूसरों की
बिरहा = भीगे हुए चने
बीजणो = पखा
बीणी = इकट्ठी
बूझणो = पूछना
बेसा = वैश्या
बोता = ऊट का बच्चा
बोगा = छप्पर

भ

भकण = भक्षण
भरोटा = बण्डल
महगी = पत्थर ढोने की लकडी की टोकरी
भाटा = पत्थर
मीड = आपत्ति
भूगडा = भुने हुए चने

भके = कहता है
भलकतो = चमकता हुआ।
भिको = कुसमय
भूमल = गर्म राख
भेलो = इकट्ठा करना

भेला = गुड़ की गाड़

भौंयो = भोमिया, लोकदेव

भौटिया = अनुजवधू, पुत्रवधू

म

मखनो = मस्त

मखेना = बैलो की आखो पर बांधी जाने वाली चमडे की पट्टी

मरोडे = दबाना

मसकणिया = चलाने वाला

मलूक = सुन्दर

मसला = मजाक

महड = गृहस्वामी

माजाई = सगी

महडी = छाछ, गृहस्वामिनी

माडो = लगाया, किया

माऊ = तरफ

मारू = यार, दोस्त, मित्र

माजना = इज्जत

मिसरी = तलवार

माड = लिखता है

मुखलाय = खोल देना

मुक्तो = बहुत

मूडना = बाल कटाना, शिष्य बनाना

मूड = सिर

मैमता = मस्त

मैजडा = भूमि समतल करने की लकडी

मैहरी = दले हुए जो, बाजरा या मक्का की छाछ मे पकी राबडी

मैंदर = मौसी

मोघो = औंघा

मोडी = दान, जल्दी, पडाव आदि

मोघू = मूर्ख

य

याय = इसको

याही = इसी (मे)

योही = यही

र

रगतर = गहरी

रगत = राग

रडक = ईर्ष्या

रतवाई = गजल की प्रकार का लोकगीत

राड = झगडा

राची = हो गई, मच गई, रमण करने लगी

रानो = जगली

रावटी = मकान

रिहाड = जबर्दस्ती

रूसणो = रुष्ट होना

रोए = शोर

रोस = क्रोध

रौल = शोर, कुलांच

रोपो = गाड दिया

ल

लक्खी = लक्षपति

लगभात = मात्रा

लगवाल = पिछलग्गू

लटा = बाल, जटाए

लत्तो = कपडा

लार = साथ

लाव = चरस खेंचने की मोटी रस्सी

लाली = ननद

बडसी = बांटे का
बजमारो = वज्र का मारा
बटाऊ = राहगीर
बणेणी = बनियानी
बधाय = बढ़ाकर
बमी = सांप का बिल
बभेकी = विवेकी
बलावें = खेत मे पानी देना
बहीर = फौज
बाकली = उबले हुए गेहु-चने
बिचोलो = मध्यस्थ
बाढ = ईख
बाधाली = तलवार
बिगसी = सडने लगी
बिछट = बिलग
बिणजो = वाणिज्य
बिणजार = सांड
बिनह = विनय
बिरहली = विरहणी
बिसेरो = दुखदायी फोडा
बीजो = रकम
बीहमाता = विमाता
बेगा = शीघ्र
बैसुन्दर = वसुन्धरा (पृथ्वी)
बोहरा = व्यवहारी

बटला = मटर
बडेडा = बडेवाला
बड़नार = अच्छे कुल की स्त्री, सुन्दर नारी
बदलाव = उत्तर
बदी = अमावस्या, शैतानी
बवरो = घुसा
बरना = रंगीन
बेला = हाथ के कड़े
बाकरी = बकरी
बाखल = अन्दर की जगह
बाट = रास्ता, प्रतीक्षा
बाण = आदत, रस्सी
बालो = नादान, भोला, बालक
बिखातणा = बिकना
बिटौडो = गोबर से लिपा हुआ कण्डो का ढेर
बिधाया = कानो मे छिद्र करवाना
बिराणी = दूसरों की
बिरहा = भीगे हुए चने
बीजणो = पखा
बीणी = इकट्ठी
बूझणो = पूछना
बेसा = वेश्या
बोता = ऊंट का बच्चा
बोगा = छप्पर

भ

भकण = भक्षण
भरोटा = बण्डल
भहुगी = पत्थर ढोने की लकडी की टोकरी
भाटा = पत्थर
भीड = आपत्ति
भूगड़ा = भुने हुए चने

भके = कहता है
भलकतो = चमकता हुआ।
भिको = कुसमय
भूमल = गर्म राख
भेलो = इकट्ठा करना

भेला = गुड़ की गाड़

भौटिया = अनुजवधू, पुत्रवधू

भैयो = भोमिया, लोकदेव

म

मखनो = मस्त

मरोड़े = दबाना

मलूक = सुन्दर

महड़ = गृहस्वामी

महड़ी = छाछ गृहस्वामिनी

माऊ = तरफ

माजना = इज्जत

माड़े = लिखता है

मुक्तो = बहुत

मूंड = सिर

मैंजड़ा = भूमि समतल करने की लकड़ी

मैंदर = मौसी

मोंधो = औंधा

मोधू = मूर्ख

मसेना = बैलो की आंखो पर बांधी जाने वाली चमड़े की पट्टी

मसकलिया = चलाने वाला

ममला = मजाक

माजाई = सगी

माडो = लगाया, किया

म'रू = यार, दोस्त, मित्र

मिमरी = तलवार

मुखलाय = खोल देना

मूंडना = बाल कटाना, शिष्य बनाना

मैंमता = मस्त

मैहुरी = दले हुए जो, बाजरा या मक्का की छाछ मे पकी राबड़ी

मोडी = दान, जल्दी, पड़ाव आदि

य

याय = इसको

योही = यही

याही = इसी (मे)

र

रगतर = गहरी

रड़क = ईर्ष्या

राड़ = झगड़ा

रानो = जगली

रिहाड़ = जबर्दस्ती

रोण = शोर

रोल = शोर, कुलांच

रगत = राग

रतवाई = गजल की प्रकार का लोकगीत

राची = हो गई, मच गई, रमण करने लगी

रावटी = मकान

रूसणो = रुष्ट होना

रोस = क्रोध

रोपो = गाड़ दिया

ल

लक्खी = लक्षपति

लगवाल = पिछलग्गू

लत्तो = कपड़ा

लाव = चरस खेंचने की मोटी रस्सी

लगमात = मात्रा

लटा = बाल, जटाएं

लार = साथ

लाली = ननद

लावणी = फसल काटना
लोहका = लोमडी
लोथ = लास
लघण = व्रत
लेर = लेवर
लोढी = चटनी घिसने का पत्थर
लोही = खून

व

वाडी = मित्र
वाल = पर्वत की तलहटी
वोड = तरफ
वोट = आड ओट
विरते = हिम्मत
वैली = इधर, इस पार
वोछो = अधूरा, छोटा नीचा

स

सक्का = पानी भरने वाला
सखी = सत, दातार
सगलै = सारे
सटेटा = सारा
सम्मत = चौडे में, खुले मे
सरे = पूरा होना
सल्लूक = सम्बन्ध
सहेस = सहस्त्र
सहनाणी = पहचान, इशारा
साथण = सहेली
सारी = अच्छी
स्यान = शोभा, प्रकृति
स्यार-पासा = चौपड का खेल
सिकल = अगारी
सिरग = जादू टोना
सीर = हिस्सा, मिलकर
सीसो = गोली (बन्दूक की)
सुन्दरफी = सुनहरी
सुरंलो = अनाज का चीटी नुमा कीडा
सुलाकणा = सुलक्षण वाला
सेंकला = दीवार म लगे लोहे के कडे
सेला = बण्डल
सेसभाल = पता
सकालो = प्रात कल
सकराना = चावल
सटक = सीधा, चले जाना
सम्पँ = सम्पत्ति
सरीका = समान
सरा = बारी
सलीका = प्रबन्ध
सहेम्बर = स्वयवर
सातरो = बिस्तर
सामलात = शामिल
सारो = जैसा
स्यालू = मोती
सिन्हासी = सन्यासी
सीदो = आटा दाल घी आदि
सीलो = ठण्डा
सुवालो = जल्दी
सुरस्ती = सरस्वती
सूम = कजूस
सूझै = दिखाई देना, मालूम होना
संली = रस्सी
सैंटगा = मिल गये
सैंदाण = वाकिफ, पहचान वाला
सौकण = सौत

सैदक – सौदा
सोहोट – ओले एव तीव्र हवा-युक्त वर्षा
सडेसी – सदेश
संगवाई – सम्हालो

ह

हडहड – ठट्टा कर हँसना, ध्वन्यात्मक
हद – अच्छा, ठीक
हाली-मवाली – बच्चे-बूढे सभी
हाली – हल चलाने वाला
हीलू – इधर को
हेडा – गाठ
हतना – हस्तिनापुर
हमेल – चादी के रुपयो की माला जैसा गले का आभूषण
ह्यांव – ममता
हेरवो – देखा
हेलो – आवाज

☐

☐ संदर्भ संकेत—

1. भाषा, वाग्द्रियेज, (अनु० जगवश किशोर बलवीर) हि स. सू वि, उत्तर प्रदेश, पृ० 209 (2) सा. भा वि, पृ० 169
3. हि भा. इ, वर्मा, पृ० 69–७० (4) ग्रा हि. लें, पृ० 41–42
5. हि. भा, पृ० 45 (6) भा. आ. भा. हि.. परि० 2, पृ० 288–89
7 भा सा, वाराम्रिकाव, पृ० 3–4 (8) हि भा इ, वर्मा, पृ० 71

☐

☐ उपसंहार—

इस प्रकार भारतीय भाषा-परिवारो मे मेवाती की आर्य भाषा-परिवार से उत्पत्ति हुई है। भारतीय आर्य भाषा-परिवार प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय विकास-काल मे विभक्त किया जाता है। मेवाती बोली के बीज म. भा. आ. भा. से ही प्राप्त होते हैं। कारण कि, राजस्थान-मालवे की बोली का जिक्र ब्राह्मण-ग्रन्थो मे कही भी प्राप्त नही होता। किन्तु, सभवत शूरसेन अर्थात् मध्य देश के मथुरा प्रान्त से आर्यभाषा मत्स्यदेश (मेवात-प्रदेश) मे फैली थी, और वैसे ही मध्य देश की बोली अश्वक प्रदेश (उत्तर मालव) से अवन्ति (दक्षिण मालव) प्रदेश तक फैल रही थी। इस तरह मूलत अपभ्र श मारवाड, हरियाना, भादानक (बुन्देल खण्ड), सौराष्ट्र (काठियावाड) मे अधिक प्रचलित थी। हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, मेवाती आदि की माता अपभ्र श को भाषा के इतिहास मे नागर अपभ्र श, पश्चिमी या परिनिष्ठित अपभ्र श या अध्ययन सुविधा के लिए शौरसेनी अपभ्र श आदि नामो से जाना जाता है। और इस प्रकार 12 वी शती के उत्तरार्द्ध से आ. भा. आ भाषाएँ अपभ्र श से विकसित होकर प्रकाश में आई।

गौर्जर अपभ्र श से विकसित राजस्थानी के दो भेद किए जाते हैं-पूर्वी और पश्चिमी। पूर्व अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया है कि पूर्वी राजस्थानी, पश्चिमी राजस्थानी से प्रभावित होते हुए भी पश्चिमी शौरसेनी से व्युत्पन्न थी, जो 16 वी सदी तक स्पष्टतः बोलियो का रूप धारण कर चुकी थी। मेवाती के उद्‌गम मे ब्रजभाषा और पश्चिमी राजस्थानी के तत्व विद्यमान थे। अतः इन तत्वो के प्रभाव को मेवाती मे स्पष्ट देखा जा सकता है। अन्त मे भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि मेवाती निश्चित रूप से एक स्वतत्र एव सबसे पृथक बोली है, जिसे सधिस्थल की एक स्वतत्र बोली कहा जा सकता है। यह निश्चित है कि आज मेवाती का झुकाव अपनी पडोसी पश्चिमी हिन्दी और उसकी बोलियो की ओर राजस्थानी की अपेक्षा अधिक है।

☐

संक्षिप्त संकेत —

अ. पु.	=	अन्य पुरुष
आ. भा. आ. भा.	=	आधुनिक भारतीय आर्य भाषा
उ. पु.	=	उत्तम पुरुष
ए व.	=	एक वचन
न. भा. आ. भा.	=	नव्य भारतीय आर्य भाषा
प्रा. भा. आ. भा	=	प्राचीन भारतीय आर्य भाषा
प्रा०	=	प्राकृत
पु०	=	पुल्लिंग
पु रा.	=	पुरानी राजस्थानी
पु. वि	=	पुरातत्व विभाग
पूर्वो. रा. वि.	=	पूर्वोत्तरी राजस्थानी एवं उसकी विशेषताएँ
ब. व.	=	बहु वचन
म. भा. आ. भा.	=	मध्य भारतीय आर्य भाषा
म. पु	=	मध्यम पुरुष
मू पा.	=	मूलपाठ
मे०	=	मेवाती
सं०	=	संस्कृत
स्त्री०	=	स्त्रीलिंग
शि०	=	शिलालेख
हि०	=	हिन्दी
>	=	उद्गम-चिन्ह
<	=	विकास-चिन्ह

☐ उपसंहार—

इस प्रकार भारतीय भाषा-परिवारों मे मेवाती की आर्य भाषा-परिवार से उत्पत्ति हुई है। भारतीय आर्य भाषा-परिवार प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय विकास-काल में विभक्त किया जाता है। मेवाती बोली के बीज म. भा. आ. भा. से ही प्राप्त होते हैं। कारण कि, राजस्थान-मालवे की बोली का जिक्र ब्राह्मण-ग्रन्थो मे कहीं भी प्राप्त नहीं होता। किन्तु, सम्भवत शूरसेन अर्थात् मध्य देश के मथुरा प्रान्त से आर्यभाषा मत्स्यदेश (मेवात-प्रदेश) मे फैली थी, और वैसे ही मध्य देश की बोली अश्वक प्रदेश (उत्तर मालव) से अवन्ति (दक्षिण मालव) प्रदेश तक फैल रही थी। इस तरह मूलत अपभ्रंश मारवाड, हरियाना, भादानक (बुन्देलखण्ड), सौराष्ट्र (काठियावाड) मे अधिक प्रचलित थी। हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, मेवाती आदि की माता अपभ्रंश को भाषा के इतिहास मे नागर अपभ्रंश, पश्चिमी या परिनिष्ठित अपभ्रंश या अध्ययन सुविधा के लिए शौरसेनी अपभ्रंश आदि नामों से जाना जाता है। और इस प्रकार 12 वी शती के उत्तरार्द्ध से आ. भा. आ. भाषाएँ अपभ्रंश से विकसित होकर प्रकाश मे आईं।

गौर्जर अपभ्रंश से विकसित राजस्थानी के दो भेद किए जाते हैं-पूर्वी और पश्चिमी। पूर्व अध्ययन मे यह स्पष्ट हो गया है कि पूर्वी राजस्थानी, पश्चिमी राजस्थानी से प्रभावित होते हुए भी पश्चिमी शौरसेनी से व्युत्पन्न थी, जो 16 वी सदी तक स्पष्टतः बोलियो का रूप धारण कर चुकी थी। मेवाती के उद्गम मे ब्रजभाषा और पश्चिमी राजस्थानी के तत्व विद्यमान थे। अतः इन तत्वो के प्रभाव को मेवाती मे स्पष्ट देखा जा सकता है। अन्त मे भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि मेवाती निश्चित रूप से एक स्वतन्त्र एव सबसे पृथक बोली है, जिसे सधिस्थल की एक स्वतन्त्र बोली कहा जा सकता है। यह निश्चित है कि आज मेवाती का झुकाव अपनी पडोसी पश्चिमी हिन्दी और उसकी बोलियो की ओर राजस्थानी की अपेक्षा अधिक है।

☐

संक्षिप्त संकेत —

अ पु	=	अन्य पुरुष
आ. भा आ. भा.	=	आधुनिक भारतीय आर्य भाषा
उ. पु.	=	उत्तम पुरुष
ए व.	=	एक वचन
न. भा. आ. भा.	=	नव्य भारतीय आर्य भाषा
प्रा. भा. आ भा	=	प्राचीन भारतीय आर्य भाषा
प्रा०	=	प्राकृत
पु०	=	पुल्लिग
पु रा.	=	पुरानी राजस्थानी
पु. वि	=	पुरातत्व विभाग
पूर्वो. रा. वि	=	पूर्वात्तरी राजस्थानी एव उसकी विशेषताएँ
ब ब	=	बहु वचन
म भा आ. भा.	=	मध्य भारतीय आर्य भाषा
म. पु.	=	मध्यम पुरुष
मू पा.	=	मूलपाठ
मे०	=	मेवाती
स०	=	सस्कृत
स्त्री०	=	स्त्रीलिग
शि०	=	शिलालेख
हि०	=	हिन्दी
>	=	उद्गम-चिन्ह
<	=	विकास-चिन्ह

□

सहायक ग्रन्थानुक्रमणिका

शोध-प्रबन्ध मे प्रयुक्त ग्र थो के सक्षिप्त रूप एव ग्र थानुक्रमणिका

क्र०	सक्षिप्त रूप	रचना/प्रकाशन	रचनाकार
1	ग्र. ग्र	ग्रशोक के ग्रभिलेख, प्र स० 2022 वि वाराणसी ज्ञान मण्डल लि०	डा० राजवली पाण्डेय
2	ग्र भा सा	ग्रपभ्र श भाषा ग्रौर उसका साहित्य	डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव
3	ग्र व्या	ग्रपभ्र श व्याकरण, राजस्थान प्रकाशन	ग्राचार्य हेमचन्द्र
4	ग्र ब्रा	ग्रत्रे य ब्राह्मण	
5	ग्र नि	ग्र गुत्तर निकाय	
6	ग्रा ग्र	ग्राइने ग्रकवरी, प्रथम भाग महामना प्रकाशन मदिर, इलाहाबाद	ग्रबुल फजल
7	इ ग्राई न्यू	इण्डिया ऐज ग्राई न्यू इट, द्वि० सस्करण	सर माइकेल ग्रोडवायर
8.	इ पा	इण्डियाज् पास्ट, मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, 1959 ई०	डा० मैकडानेल
9	इ नो पा	इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनि	डा० वासुदेव शरण ग्रग्रवाल
10	इ प्रा	इन्ट्रोडक्शन टू प्राकृत	वुल्नर
11	ऋ०	ऋग्वेद	
12	ऋत०	ऋतम्भरा, द्वि सस्करण, साहित्य भवन, इलाहाबाद	*डा० सुनीति कुमार चटर्जी*
13	ए ग्रा हि लै	ए ग्रामर ग्राव हिन्दी लैंग्वेज	एस एच केलाग
14	ए सा लै,	एलीमेण्ट्स ग्रॉव द सायस ग्रॉव लैंग्वेज, (1951 ई०) कलकत्ता	डा० तारा पोरवाल
15	ए हि इ लि	ए हिस्ट्री ग्रॉव इण्डियन लिटरेचर ग्र थ 1 खण्ड 1, तृ० सस्करण, 1962 ई०	विण्टरनित्स
16	ए. ग्र	एवोलूशन ग्रॉव ग्रवधी	डा० बाबूराम सक्सेना
17	ग्रो. डै वै लै	ग्रॉरिजिन एण्ड डेवलपमैण्ट ग्रॉव बैंगाली लैंग्वेज	डा० सुनीतिकुमार चटर्जी
18	ग्रो नि स०	ग्रोझा निवन्ध सग्रह, प्र० भाग,	गौरीशकर हीराचन्द ग्रोझा

19 क ग्रा ग्रा	कम्परटिव ग्रामर ऑव आर्यन लैंग्वेज	जोन बीम्स
20 क ग्रा द्र	कम्पेरेटिव ग्रामर ऑव द्राविडियन लैंग्वेजज	काल्डवेल
21 का मी	काव्य मीमांसा	राजशेखर
22 कीर्ति०	कीर्तिलता	सम्पा० डा० बाबूराम सक्सेना
23 कु लो सा	कुमायु का लोक साहित्य (1962) अलमोड़ा बुक डिपो, आगरा	डा० त्रिलोचन पाण्डेय
24 कृ रु वे	कृष्ण रुकमणी री वेली	सम्पा० प्रो० नरोत्तम स्वामी
25 कौ उ.	कौसितकी उपनिषद्	
26 ग्रा ई हि	ग्रामर आव द ईस्टर्न हिन्दी	रुडल्फ हार्नले
27 ग्रा. गौ लैं	ग्रामर ऑव द गौडियन लैंग्वेज	रुडल्फ हार्नले
28 ग्रा हि बो	ग्रामीण हिन्दी बोलियाँ (1938)	डा० हरदेव बाहरी
29. गो ब्रा	गोपथ ब्राह्मण	
30 चौ०	चौबोली (1962 ई०) द स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी जयपुर	डा० कन्हैयालाल सहल एव श्री पतराम गौड
31 डिं मा	डिंगल साहित्य	डा० गोवर्धन शर्मा
32 ढो मा	ढोला मारू रा दूहा, ना प्र सभा, काशी	सम्पा० प्रो० नरोत्तम स्वामी
33 ता मे	तारीख मेवात (1919 ई०) फिरोजपुर (हरियाना)	मौलवी अबुल शकूर साहब, मेवाती, दँडवाल
34 द. ग्रा हि इ	द आक्सफोर्ड हिस्ट्री आव इण्डिया (1957 ई०)	
35 द के हि इ	द केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया (1937 ई०)	कर्नल हेग
36 द हि	दक्खिनी हिन्दी	डा० बाबूराम सक्सेना
37 द हि इ	द हिस्ट्री आव इण्डिया, ग्र थ 5	
38 द हि. उ वि	दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास	डा० श्रीराम शर्मा
39 दी. नि	दीघ निकाय	
40 ने हि लि व	नेजलाइजेशन इन हिन्दी लिटरेरी वर्क्स	डा० सिद्धेश्वर वर्मा
41 नो. ग्रा या वें रा	नोट्स ऑव द ग्रामर आव द वेस्टर्न राजस्थानी	डा० तेस्सितोरी
42 प इ हि	पर्सियन इन्फ्लूएंस आन हिन्दी	डा० हरदेव बाहरी
43 पा जा	पालि जातकावली	प० वटुकनाथ शर्मा
44 पा प्रा	पालि प्रबोध	आद्यादत ठाकुर
45 पा व्या	पालि व्याकरण	भिक्षु धर्मरक्षित

46 पा सा	पालि और उसका साहित्य, हिन्दी साहित्य ससार, दिल्ली (1961 ई०)	डा० सरनाम सिंह शर्मा
47 पा सा इ	पालि साहित्य का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	
48. पा लि. लें	पालि लिटरेचर एण्ड लैंग्वेज	गाइगर
59 प्रा सा	प्राकृत और उसका साहित्य	डा० हरदेव बाहरी
50 प्रा भा. सा. आ अ.	प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन (1966) तारा पब्लिकेशन वाराणसी	डा० नेमीचन्द शास्त्री
51 प्रा व्या	प्राकृत व्याकरण, पूना प्रकाशन	पी० एल० वैद्य
52 प्रा प्र	प्राकृत प्रकाश	वररुचि
53 पु रा	पुरानी राजस्थानी	डा० नामवर सिंह
54 पु हि	पुरानी हिन्दी (स० 2019) का ना प्र स, काशी	प० चन्द्रधर शर्मा
55 पृ रा रा	पृथ्वीराज रासो (2011 वि०) साहित्य सस्थान, राजस्थान-विश्व विद्यापीठ, उदयपुर	स० कविराय मोहनसिंह
56 ब्र भा	ब्रजभाषा	डा० धीरेन्द्र वर्मा
57 ब्र व्या	ब्रजभाषा व्याकरण	डा० धीरेन्द्र वर्मा
58 ब्र सा इ	ब्रज साहित्य का इतिहास (वि० 2024)	डा० सत्येन्द्र
59 ब्र सां, इ	ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास	श्री प्रभूदयाल मीत्तल
60 बा द्वि ख	बाइबिल द्वितीय खण्ड, श्री रामपुर प्रेस, कलकत्ता	
61 बा ना	बाबर नामा, ग्रथ 5	सम्पा० मु शीदेवी प्रसाद कायस्थ
62 भा आ भा	भारतीय आर्य भाषा	डा० ज्यूल ब्लाक (अनु० वार्ष्णेय)
63 भा. आ भा हि,	भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	डा० सुनीतिकुमार चटर्जी
64 भा भा वि,	भारतीय भाषा विज्ञान	आचार्य किशोरीदास वाजपेयी
65 भा भा स	भारतीय भाषा सर्वेक्षण	डा० ग्रियर्सन (अनु तिवारी)
66 भा वि	भाषा विज्ञान	डा० श्यामसुन्दर दास
67 भा. वि	भाषा विज्ञान, इण्डियन प्रेस, प्रयाग	डा० मगलदेव शास्त्री
68 भा वि भू	भाषा विज्ञान की भूमिका	डा० देवेन्द्रनाथ शर्मा
69 भा वि हि	भाषा विज्ञान और हिन्दी	सरयू प्रसाद अग्रवाल

70 भा स	भाषा और समाज (1961) पीपल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	डा० रामविलास शर्मा
71 भा सा	भाषा और साहित्य	डा० वारान्निकोव
72 भीक	भीक, नूह (गुड़गावा)	श्री किफायतुल्ला सिद्दीकी
73 भो भा सा	भोजपुरी भाषा और साहित्य	डा० उदयनारायण तिवारी
74 भो हि	भोजपुरी और हिन्दी,	डा० शुकदेव सिंह
75 म जि. बो	मथुरा जिले की बोलियाँ, (1967) हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद	डा० चन्द्रभान रावत
76 मनु०	मनुस्मृति	
77 म प्र हि सा	मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन	डा० मोतीलाल गुप्त
78 महा०	महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर	
79 म मी	महाभारत की मीमांसा	डा० चिन्तामणि विनायक वैद्य
80 मा भा अ	मालवी: एक भाषाशास्त्रीय अध्ययन	डा० चिन्तामणि उपाध्याय
81 मा सा	मालवी और उसका साहित्य	डा० श्याम परमार
82 मु अ	मुरक्का अलवर	मुंशी मुहम्मद मक्दूम साहब
83 मु मे	मुरक्का-ए-मेवात, (1935 ई०)	मुंशी शर्फुद्दीन अहमद
84 मु नैं ख्या	मुहणोत नैणसी की ख्यात (प्रथम भाग)	सम्पा० डा० गौरी शंकर हीराचन्द ओझा
85 मे मौ	मेव और मौलवी, आगरा	श्री देशराज,
86. मै पा	मैनुअल आफ पाली प्रथम संस्करण, पूना (1949 ई०)	डा० सी० वी० जोशी
87 रा	रामायण	महर्षि वाल्मीकि
88 राज इ	राजस्थान का इतिहास (1964 ई०)	कर्नल टाड (अनु० प० बल्देव प्रसाद मिश्र)
89 रा भा	राजस्थानी भाषा, उदयपुर	डा० सुनीतिकुमार चटर्जी
90 रा इ	राजपूताने का इतिहास, तृ० भा०,	श्री जगदीश सिंह गहलोत
91. रा. भा. सा	राजस्थानी भाषा और साहित्य साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	डा० मोतीलाल मैनारिया
92. रा भा सा	राजस्थानी भाषा और साहित्य, कलकत्ता	डा० हीरालाल माहेश्वरी
93. रा भा रू	राजस्थानी भाषा की रूपरेखा	डा० पुरुषोत्तम मेनारिया

94 रा स्व प्रा बा राजस्थान • स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहल व बाद अजमेर, 1966 ई०
95 रा सा म राजस्थानी साहित्य का महत्व सेठ रामदेव चौखानी
96. ला फा लै म ला फार्मेशन दे ला लैंग्वा मराथे ज्यूल ब्लाक
97 वि धा विचार धारा डा० धीरेन्द्र वर्मा
98 वि रा विकाया राजपूताना प० ज्वाला सहाय
99 वी वि वार विनोद
100 वृ वृहत् संहिता वराहमिहिर
101 वै इ वैदिक इण्डेक्स, चौ. वि भ, मैकडोनैल्ड एण्ड कीथ वाराणसी-1 प्र० स० 2019 वि० (अनु० रामकुमार राय)
102 श ब्रा शतपथ ब्राह्मण
103 शे बो अ शखावाटी बोली का एक अध्ययन डा० कैलाशचन्द्र अग्रवाल
104 स्पे डा स्पेसीमैन्स ऑव द डायलेक्टस स्पोकन इन द स्टेट ऑव जयपुर, 1898 ई० रेव० मैक्लिस्टर
105 स श सरल शब्दानुशासन आचाय किशोरीदास वाजपेयी
106 स० भा शा अ सस्कृत भाषा का भाषा शास्त्रीय अध्ययन प्रयाग, 1966 डा० भोलाशकर व्यास
107 स० व्या प्र सस्कृत व्याकरण प्रवेशिका डा० बाबूराम सक्सेना
108 सा भा वि सामान्य भाषा विज्ञ न डा० बाबूराम सक्सेना
109 सि ग्रा सिन्धी ग्रामर ट्रम्प
110 सू अ व्या० सूत्रशैली और अपभ्र श का व्याकरण, का ना प्र सभा काशी डा० परममित्र शास्त्री
111 श ब्रा शतपथ ब्राह्मण
112 ह प्र लो हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद डा० शकरलाल यादव
113 ह रा हम्मीर रासो, का ना प्र सभा काशी, स० 2006 (सम्पा० डा० श्यामसुन्दर दास) कवि जोधराज
114 हि उ. वि रू हिन्दी उद्भव, विकास और रूप डा० हरदेव बाहरी
115 हि वि अप हिन्दी के विकास म अपभ्र श का योग डा० नामवर सिंह
116 हि ग्रा अ हिस्टारिकल ग्रामर ऑव अपभ्र श, पूना, 1949 डा० तगारे
117 हि ग्रा प्रा हिस्टारिकल ग्रामर ऑव प्राकृत, पूना, 1948 डा० मेहण्डले
118 हि धा स हिन्दी धातु सग्रह, क मु विद्यापीठ, आगरा डा० हार्नले
119 हि प्र वि हिन्दी म प्रत्यय विचार, आगरा डा० मुरारीलाल उप्रैति

120 हि भा — हिन्दी भाषा — डा० श्यामसुन्दर दास
121 हि फो — हिन्दुस्तानी फोनेटिक्स — डा० जोर कादरी
122 हि भा — हिंदी भाषा 1966 — डा० भोलानाथ तिवारी
123 हि भा आ स — हिन्दी भाषा की आधुनिक समस्याएं — डा० सरनामसिंह शर्मा
124 हि भा इ — हिन्दी भाषा का इतिहास — डा० धीरेन्द्र वर्मा
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद 1961
125 हि भा उ वि — हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास — उ० ना० तिवाड़ी

कोश ग्रन्थ—

क्र० संक्षिप्त रूप	कोश-नाम
1 डि को	डिंगल कोश, सम्पा० नारायणसिंह भाटी, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर
2 ने डि	नेपाली डिक्शनरी, डा० टर्नर
3 पा स म	पाइअ सद्द महण्णवो, प० हरगोविन्द दास त्रिकम चंद सेठ
4 भा वि को	भाषा विज्ञान कोश डा० भोलानाथ तिवारी
5 मा हि को	मानक हिन्दी कोश डा० रामचन्द्र वर्मा
6 वै को	वैदिक कोष, डा० सूर्यकान्त, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, 1963
7 स डि	संस्कृत डिक्शनरी, मैक्डोनेल्ड
8 स. इ डि	संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, आप्टे
9 हि त श	हिन्दी की तद्भव शब्दावली, डा० सरनामसिंह शर्मा

गजट एवं रिपोर्टस—

क्र० संक्षिप्त रूप	नाम गजट, रिपोर्ट्स
1 अ ए रा	अनल्स एण्ड एंटीक्वीटीज आव राजस्थान, 1829, कर्नल टाड
2 अ ग	अलवर गजेटीयर मेजर पाउलट
3 अ. रा ग	अलवर राजकीय गजट
4 इ ए	इण्डियन एण्टीक्वेरी, जिल्द 40, (1911)
5 इ ग इ	इम्पीरियल गजेटीयर ऑव इण्डिया

6 क गा ग म्यु	कटेलाग एण्ड गाइड टु गवनमैन्ट म्युजियम, ग्रलवर
7 ग. गु डि	गजेटीयर ग्रॉव गुड़गांव डिस्ट्रिक्ट (पंजाब)
8 रा. रि	राजपूताना रिपोर्ट्‌स, मेजर कनिंघम
9 लि स इ	लिंग्विस्टिक सर्वे ग्राव इंडिया, डा० ग्रियर्सन
10 सैं इ	सैंसस ग्रॉव इण्डिया
11 सैं रि	सैंसस रिपोर्ट, 1881 ई०

पत्र-पत्रिकाएँ—

क्र० संक्षिप्त रूप	पत्र-पत्रिकाएं
1 ग्ररा	ग्ररावली (त्रैमासिक), ग्रलवर
2 क	कल्पना, हैदराबाद
3 का ना प्र. प	काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी
4 ग ज्यो.	गगन ज्योति (साप्ताहिक), ग्रलवर
5 तेज.	तेजप्रताप (साप्ताहिक), ग्रलवर
6 प प	परिषद् पत्रिका, पटना
7 भाषा	भाषा, दिल्ली,
8 म भा	मरु भारती (त्रैमासिक), पिलानी
9 राज	राजस्थानी (त्रैमासिक), कलकत्ता
10 रा भा	राजस्थान भारती, सम्पा० ग्रगरचन्द नाहटा
11 वि ज्यो	विश्व ज्योति, होशियारपुर, पंजाब
12 स क प	समाज कल्याण पत्रिका, जयपुर
13 स प	सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग
14. समि	समितिवाणी, भरतपुर
15 सप्त०	सप्तसिंधु, चण्डीगढ़
16 शो. प	शोध पत्रिका (त्रैमासिक), उदयपुर